प्रेमचंद के सभी अनुरागियों के लिए बड़ी खुशी की बात है कि प्रेमचंद का कथा-साहित्य अब 'हिन्द पॉकेट बुक्स' के माध्यम से भी उनके पास पहुँच रहा है। आपने जब से होश सँभाला आप प्रेमचंद को पढ़ते और प्यार करते आये हैं। बचपन से लेकर उम्र ढलने तक प्रेमचंद आपके संग-संग चलता रहा है। निश्चय ही आपमें से कितनों का ही प्रेमचंद साहित्य से गहरा परिचय भी होगा और मुझे विश्वास है कि प्रेमचंद के जीवन-परिचय की मोटी-मोटी बातें भी आप काफी कुछ जानते होंगे। जैसे यही कि उनका जन्म ३१ जुलाई, १८८० को बनारस शहर से चार मील दूर लमही नाम के एक गाँव में हुआ था और उनके पिता मुन्शी अजायब लाल एक डाकमुन्शी थे। घर पर साधारण खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने की मुहताजी तो न थी, पर इतना शायद कभी न हो पाया कि उधर से निश्चित हुआ जा सके।

मगर यह सब तो बड़े लोगों की चिंता थी, जहाँ तक इस लड़के नवाब या धनपत की बात थी—यही उनके असल नाम थे, 'प्रेमचंद' तो लेखकीय उपनाम था, ठीक-ठीक अर्थों में छद्म नाम, जो उन्होंने 'सोज़े वतन' नामक अपनी पुस्तिका के सरकार द्वारा ज़ब्त करके जला दिये जाने के बाद १९१० में अपनाया था, ताकि उस गोरी सरकार की नौकरी में रहते हुए भी वह पूर्ववत् लिखते रह सकें और उन्हें फिर राजकोप का शिकार न बनना पड़े—उसका बचपन भी गाँव के और सब बच्चों की तरह खेलकूद में बीता, जो बचपन का अपना वरदान है।

छः-सात साल की उम्र में, कायस्थ घरानों की पुरानी परम्परा के अनुसार उसे भी पास ही लालगंज नाम के एक गाँव में एक मौलवी साहब के पास, जो यों पेशे से दर्जी थे, फ़ारसी और उसी के साथ पलुए में उर्दू पढ़ने के लिए भेजा जाने लगा, पर उससे नवाब के खेल-तमाशे में कोई फ़र्क नहीं पड़ा, क्योंकि मौलवी साहब काफ़ी मौजी तबीयत के ढीलमढाल आदमी थे, जिनका क़िस्सा नवाब ने आगे चलकर अपनी कहानी 'चोरी' में खूब रस ले-लेकर सुनाया है, पर वह जैसे भी ढीलमढाल रहे हों, वह शायद पढ़ाते अच्छा ही थे, क्योंकि लोग कहते हैं, मुन्शी प्रेमचंद का फ़ारसी पर अच्छा अधिकार था। फ़ारसी भाषा का प्यार भी मौलवी साहब ने लड़के के मन में ज़रूर अच्छा जगाया होगा, क्योंकि बी. ए. तक

की परीक्षा में प्रेमचंद का एक विषय फ़ारसी रहा।
थोड़ी-सी पढ़ाई और ढेरों खिलवाड़ और गाँव की ज़िंदगी के अपने मज़ों के साथ माँ और दादी के लाड़-प्यार में लिपटे हुए दिन बड़ी मस्ती में बीत रहे थे कि गोया आसमान से इस बच्चे का इतना सुख न देखा गया और उसी साल माँ ने बिस्तर पकड़ लिया। मुन्शी अजायब लाल की ही तरह वह भी संग्रहणी की पुरानी मरीज थीं। इस बार का हमला जानलेवा साबित हुआ। नवाब तब सात साल का था और उसकी बड़ी बहन सुग्गी पन्द्रह की। उसी साल उसका ब्याह मिर्ज़ापुर के पास लहौली नाम के गाँव में हुआ था। गौना भी हो गया था। माँ के मरने के आठ-दस रोज पहले आयीं, बड़ी-बड़ी सेवा की। नवाब भी माँ के सिरहाने बैठा पंखा झलता रहता और उसके चचेरे बड़े भाई बलदेव लाल, जो बीस साल के नौजवान थे और एक अंग्रेज के यहाँ टेनिस की गेंद उठा-उठा कर खिलाड़ी को देने पर नौकर थे, दवा-दारू के इंतजाम में लगे रहते, लेकिन सब व्यर्थ हुआ।
सात साल के नवाब को अकेला छोड़कर माँ चल बसी और उसी दिन वह नवाब, जिसे माँ पान के पत्ते की तरह फेरती रहती थी, देखते-देखते सयाना हो गया। अब उसके सर पर तपता हुआ नीला आकाश था, नीचे जलती हुई भूरी धरती थी, पैरों में जूते न थे और न बदन पर साबित कपड़े, इसलिए नहीं कि यकबयक पैसे का टोटा पड़ गया था, बल्कि इसलिए कि इन सब पर नजर रखने वाली माँ की आँखें मुंद गई थीं। बाप यों भी कब माँ की जगह ले पाता है, उस पर से वह काम के बोझ से दबे रहते। तबादलों का चक्कर अलग से, कभी बाँदा तो कभी बस्ती, कभी गोरखपुर, तो कभी कानपुर, कभी इलाहाबाद तो कभी लखनऊ, कभी जीयनपुर तो कभी बड़हलगंज, किसी एक जगह जमकर न रहने पाते। बेटे को उनके संग-साथ की, दोस्ती की भी जरूरत हो सकती है, इसके लिये उनके पास न तो समझ थी और न समय। 'कजाकी' में मुंशीजी ने शायद अपनी ही बात बच्चे के मुँह से कहलवायी है :

> बाबूजी बड़े गुस्सेवर थे। उन्हें काम बहुत करना पड़ता था, इसी से बात-बात पर झुंझला पड़ते थे। मैं तो उनके सामने कभी आता ही न था, वह भी मुझे कभी प्यार न करते थे।

यानी कि प्यार, दोस्ती, संग-साथ नवाब को जो कुछ मिलता था, अपनी माँ से मिलता था। सो माँ अब नहीं रही। माँ जैसा ही प्यार कुछ-कुछ बड़ी बहन से मिलता था, सो वह अपने घर चली गई। नवाब की दुनिया घर के नाते सूनी हो गयी। यह कमी कितनी गहरी, कितनी

तड़ापनेवाली रही होगी, जो सारी जिन्दगी यह आदमी उससे उबर नहीं सका और उसने बार-बार ऐसे पात्रों की सृष्टि की, जिनकी माँ बचपन में ही मर गयी थी और फिर उनकी दुनिया सूनी हो गयी, 'कर्मभूमि' में अमरकान्त कहता है :

> ज़िंदगी की वह उम्र, जब इन्सान को मुहब्बत की सबसे ज़्यादा जरूरत होती है, बचपन है। उस वक़्त पौदे को तरी मिल जाये, तो ज़िंदगी-भर के लिए उसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं। उस वक़्त खूराक न पाकर उसकी ज़िंदगी खुश्क हो जाती है। मेरी माँ का उसी ज़माने में देहांत हुआ और तब से मेरी रूह को खूराक नहीं मिली। वही भूख मेरी ज़िंदगी है।

और फिर दूसरी माँ के आ जाने का भी शायद वह अपना ही अनुभव है, जिसे मुंशीजी ने उसी अमरकान्त की कहानी कहते हुए यों व्यक्त किया है :

> समरकान्त ने मित्रों के कहने-सुनने से दूसरा विवाह कर लिया था। उस सात साल के बालक ने नयी माँ का बड़े प्रेम से स्वागत किया, लेकिन उसे जल्द मालूम हो गया कि उसकी नयी माँ उसकी ज़िद और शरारतों को उस क्षमादृष्टि से नहीं देखती, जैसे उसकी माँ देखती थी। वह अपनी माँ का अकेला लाड़ला था, बड़ा ज़िद्दी, बड़ा नटखट। जो बात मुँह से निकल जाती, उसे पूरा करके ही छोड़ता। नयी माता जी बात-बात पर डाँटती थी। यहाँ तक कि उसे माता से द्वेष हो गया, जिस बात को वह मना करती, उसे वह अदबदाकर करता। पिता से भी ढीठ हो गया। पिता और पुत्र में स्नेह का बन्धन न रहा।

यह मनःस्थिति ठीक वह थी, जिसमें इस लड़के नवाब के बहक जाने का पूरा सामान था, लेकिन प्रकृति जैसे अपने और तमाम जंगली फूल-पौदों को, जिनकी सेवा-टहल के लिए कोई माली नहीं होता, नष्ट होने से बचाती है, उसी तरह इस आवारा छोकरे को भी बचाने का एक ढंग उसने निकाला, ऐसा ढंग जो उसकी नैसर्गिक प्रतिभा के अनुकूल था। आवारागर्दी को उसने बंद नहीं किया, बस एक हलका-सा मोड़ दे दिया, मोटी-मोटी तिलिस्म और ऐयारी की किताबों में, जिनका रस छन-छनकर उसके भीतर के क़िस्सागो को खूराक पहुँचाने लगा। इन किताबों में सबसे बढ़कर थी फ़ैज़ी की 'तिलिस्मे होशरुबा', दो-दो हज़ार पन्नों की अठारह जिल्दें। तेरह साल के इस लड़के ने उसको तो पढ़ ही डाला और भी बहुत कुछ पढ़ डाला, जैसे रेनाल्ड की 'मिस्ट्रीज ऑफ़ द कोर्ट ऑफ़ लण्डन' की पचीसों किताबों के उर्दू तर्जुमे, मौलाना सज्जाद हुसैन की हास्य-कृतियाँ,

मिर्जा रुसवा और रतननाथ सरशार के ढेरों क़िस्से। कोई पूछे कि इतनी सब किताबें इस लड़के को मिलती कहाँ थीं ?

रेती पर एक बुकसेलर बुद्धिलाल नाम का रहता था। मैं उसकी दूकान पर जा बैठता था और उसके स्टाक से उपन्यास ले-लेकर पढ़ता था। मगर दूकान पर सारे दिन तो बैठ न सकता था, इसलिए मैं उसकी दूकान से अंग्रेज़ी पुस्तकों की कुंजियाँ और नोट्स लेकर अपने स्कूल के लड़कों के हाथ बेचा करता था और उसके मुआवजे में दूकान से उपन्यास घर लाकर पढ़ता था। दो-तीन वर्षों में मैंने सैकड़ों ही उपन्यास पढ़ डाले होंगे।

यह गोरखपुर की बात है, जहाँ उन दिनों वह अपने पिता और दूसरी माँ के साथ रहता था और रावत पाठशाला में पढ़ता था, जहाँ उसने आठवीं कक्षा तक पढ़ाई की।

कहने की जरूरत नहीं थी कि जहाँ ऐसी अच्छी-अच्छी किताबों की पढ़ाई दिन-रात चल रही हो, वहाँ स्कूल की नीरस किताबों को कौन देखता होगा और क्यों देखे, पर हमारे कथा-साहित्य की दृष्टि से जो हुआ, अच्छा हुआ, क्योंकि सच्चे अर्थों में इन्हीं दिनों, इन्हीं सब तैयारियों में से होकर उस अमर कथाकार प्रेमचंद का जन्म हुआ, जो आगे चलकर उर्दू और हिन्दी दोनों ही भाषाओं में आधुनिक कहानी का जन्मदाता बना और आज दुनिया से चले जाने के पचास बरस बाद भी अपने उसी सर्वोच्च शिखर पर बैठा है और जिसने दुनिया को ऐसी लगभग तीन सौ कहानियाँ और चौदह छोटे-बड़े उपन्यास दिये, जिन्हें एक बार उठा लेने पर फिर छोड़ा नहीं जा सकता, जैसा कि आप सभी उनके असंख्य पाठकों का नित्य का अनुभव है। स्वाभाविक ही है कि प्रेमचंद की गिनती आज दुनिया के महान लेखकों में होती है और उनके साहित्य का अनुवाद भारत की सभी भाषाओं में ही नहीं दुनिया की और भी पचासों भाषाओं में किया जा चुका है, रूसी, चीनी जैसी किन्हीं-किन्हीं भाषाओं में तो शायद सम्पूर्ण प्रेमचन्द साहित्य।

लेकिन वह लेखक कितना भी बड़ा क्यों न हो, आदमी बहुत ही सीधा-सादा था, नितान्त सरल, निश्छल, विनयशील और वैसी ही सीधी-सादी उसकी जीवन-शैली थी। सोलहों आने वैसी ही, जैसी किसी भी दफ़्तर के बाबू या स्कूल के मास्टर की होती है। सवेरे नौ-दस बजे घर से सीधे अपने काम पर और शाम को पाँच बजे सीधे अपने घर। अपने ही जैसे दो-चार संगी-साथियों और अपने परिवार की छोटी-सी दुनिया ही उसकी कुल दुनिया है, जिसमें घर का बाजार-हाट भी है,

बच्चों की सर्दी-खांसी भी है और परिवार की दाँताकिलकिल भी है और फिर उन सबके बीच समर्पित भाव से किया गया इतना सब अजस्र लेखन है, जो सचमुच आश्चर्यजनक लगता है, जब इस बात की ओर ध्यान जाता है कि इतना सब जो लिखा गया है, वह लगभग सारी उम्र सात-आठ घण्टे की एक-न-एक नौकरी करते हुए लिखा गया है। मज़े से पूरे समय लिख सके, इतनी भी सुविधा बेचारे को न जुट पायी। शुरू से लेकर आख़ीर तक अभाव और जीवन-संघर्ष की एक ही गाथा।

वह अभी मुशकिल से पंद्रह का था कि घरवालों ने उसका विवाह कर दिया, जो बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण रहा। सोलह का होते-होते पिताजी गिरस्ती का सब बोझ लड़के पर डालकर परलोक सिधारे। फलतः उस वर्ष वह मैट्रिक की परीक्षा भी नहीं दे पाया। अगले साल परीक्षा में बैठा। द्वितीय श्रेणी में पास तो हो गया, लेकिन कालेज में प्रवेश न मिल पाया, पर हाँ, संयोग से बनारस के पास ही चुनार के एक स्कूल में मास्टरी मिल गयी और १८९९ से स्कूल की मास्टरी का जो सिलसिला चला वह पूरे बाईस साल यानी १९२१ तक चला, जब कि मुंशीजी ने गांधीजी के आवाहन पर गोरखपुर के सरकारी स्कूल से इस्तीफ़ा दिया। नौकरी करते हुए ही उन्होंने इंटर और बी. ए. पास किया।

स्कूलमास्टरी के इस लंबे सिलसिले में प्रेमचंद को घाट-घाट का पानी पीना पड़ा। कुछ-कुछ बरस में यहाँ से वहाँ तबादले होते रहे। प्रताप गढ़ से इलाहाबाद से कानपुर से हमीरपुर से बस्ती से गोरखपुर। इन सब स्थान-परिवर्तनों में शरीर को कष्ट तो हुआ ही होगा और सच तो यह है कि इसी जगह-जगह के पानी ने उन्हें पेचिश की दायमी बीमारी दे दी, जिससे उन्हें फिर कभी छुटकारा नहीं मिला, लेकिन कभी कभी लगता है कि ये कुछ-कुछ बरसों में हवा-पानी का बदलना, नये-नये लोगों के संपर्क में आना, नयी-नयी जीवन-स्थितियों में से होकर गुजरना, कभी घोड़े और कभी बैलगाड़ी पर गाँव-गाँव घूमते हुए प्राइमरी स्कूलों का मुआयना करने के सिलसिले में अपने देश के जनजीवन को गहराई में पैठकर देखना, नयी-नयी सामाजिक समस्याओं और उनके नये-नये रूपों से रूबरू होना उनके लिए रचनाकार के नाते एक बहुत बड़ा वरदान भी था। दूसरे किसी आदमी को यह दर-दर का भटकना शायद भटका भी सकता था, बिखेर भी सकता था, पर मुंशीजी का अपनी साहित्य-सर्जना के प्रति जैसा अनुशासित एकचित्त समर्पण आरम्भ से ही था, यह अनुभव संपदा निश्चय ही उनके लिए अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध हुई होगी।

जीवन-परिचय के संदर्भ में एक बात जो यथास्थान नहीं आ पायी

वह यह कि प्रेमचंद ने शिवरात्रि के दिन १९०६ में, लगभग उन्हीं दिनों जब वह शायद अपना छोटा उपन्यास 'प्रेमा' (उर्दू में 'हमखुर्मा ओ हम सवाब') हिन्दी में लिख रहे होंगे (उसका प्रकाशन १९०७ में हुआ) जिनका नायक एक विधवा लड़की से विवाह करता है, उन्होंने स्वयं एक विधवा लड़की शिवरानी देवी से विवाह किया, जो कालान्तर में उन के छः बच्चों की माँ बनी, जिनमें से तीन अभी जीवित हैं।
शिवरानी देवी बहुत सच्ची, अक्खड़, निडर, अहंकार की सीमा तक स्वाभिमानी, दबंग, शासनप्रिय महिला थी। प्रेमचंद खुद जैसे कोमल स्वभाव के आदमी थे, उन्हें शायद ऐसी ही जीवन-सहचरी की जरूरत थी और शायद इसीलिए प्रेमचंद के जीवन में उनकी बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। जब जितना मिला उतने में घर चलाया, पारिवारिक चिन्ताओं और रगड़ों-झगड़ों से उन्हें मुक्त किया—जिसका ही नतीजा था कि सब अभावों के बीच भी वह शान्ति से अपना काम कर सके— और बराबर उनके साथ कंधे-से-कंधा लगाकर उनकी शक्ति के एक स्तंभ के रूप में खड़ी रहीं। ८ फरवरी, १९२१ को गांधीजी ने गोरखपुर की एक सभा में, जिसमें प्रेमचंद भी उपस्थित थे, सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा देने के लिए लोगों का आवाहन किया। प्रेमचंद के मन में भी कुछ संकल्प बना। घर आये, पत्नी से कहा। पाँच दिन संशय में गुज़रे। इक्कीस साल की जमी-जमाई नौकरी छोड़ने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। मुंशीजी की सेहत खराब, घर में दो छोटे-छोटे बच्चे और तीसरा होने वाला, आगे परिवार कैसे पलेगा इसका कुछ ठौर-ठिकाना नहीं, पर छठे दिन शिवरानी ने हिम्मत बटोरकर हरी झंडी दिखा दी, अगले दिन मुंशीजी ने इस्तीफ़ा दाखिल कर दिया और आठवें दिन, १६ फ़रवरी १९२१ को मुंशीजी अपनी इतनी पुरानी सरकारी नौकरी को लात मारकर बाहर आ गये।
उसी रोज़ मुंशीजी ने अपना सरकारी क्वार्टर छोड़ दिया। कुछ रोज बाद यह योजना बनी कि महावीर प्रसाद के साझे में एक चर्खे की दूकान शहर में खोली जाये। आख़िर दूकान खुली, दस कर्घे लगाये गये लेकिन दूकान चलाना, भले वह चर्खे की दूकान हो, मुंशीजी के बस का रोग न था। उस तरह की देश-सेवा के लिए मुंशीजी बने ही न थे। उनका माध्यम तो साहित्य है, सो लिखाई ज़ोर-शोर से चल रही है। स्वराज्य के संदेश का प्रचार करने वाले लेख और सीधी-सादी देश-प्रेम की कहानियाँ, जिनमें किसी तरह का बनाव-सिंगार नहीं है और न उनको लिखते समय मुंशीजी को इस बात की ही चिन्ता है कि उन-

की गिनती स्थायी साहित्य में होगी या नहीं।
गांधीजी ने स्वराज्य की लड़ाई छेड़ रखी है। हर वह आदमी जिसे अपने देश से प्यार है, इस समय स्वराज्य का सिपाही है। कोई मैदान में जाकर लाठी खाता है, कोई जेल की राह पकड़ता है, मुंशीजी अपना क़लम लेकर मैदान में उतरते हैं। इसी ख़्याल से उन्होंने गोरखपुर से निकलने वाले एक उर्दू अखबार 'तहक़ीक़' और एक हिन्दी अखबार 'स्वदेश' से बाक़ायदा जुड़ने और उनमें नियमित रूप से बराबर लिखने की शक्ल बनानी चाही, पर वह नहीं बनी, तो मुंशीजी बनारस आ गये, फिर कुछ ऐसा संयोग बना कि सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा देने के चार महीने बाद मुंशीजी मारवाड़ी विद्यालय कानपुर पहुँच गये लेकिन अपने यहाँ प्राइवेट स्कूलों का जो हाल है, स्कूल के हेडमास्टर प्रेमचंद की स्कूल के मैनेजर महाशय काशीनाथ से नहीं बनी और साल पूरा नहीं होने पाया कि मुंशीजी ने 'बहुत तंग आकर' २२ फ़रवरी, १९२२ को वहाँ से भी इस्तीफ़ा दे दिया और फिर बनारस पहुँच गये। बनारस में उन्होंने संपूर्णानन्दजी के जेल चले जाने पर कुछ महीने 'मर्यादा' पत्रिका का संपादन-भार सँभाला, फिर वहाँ से अलग होकर काशी विद्यापीठ पहुँच गये, जहाँ उन्हें स्कूल का हेडमास्टर बना दिया गया। अपना प्रेस खोलने की धुन बरसों से मन में समायी थी, उसकी भी तैयारी साथ-साथ चलती रही। कुछ ही महीनों बाद जब स्कूल बंद कर दिया गया, तो मुंशीजी पूरे मन-प्राण से प्रेस की तैयारी में लग गये, जो अन्ततः खुला तो, मगर गले का ढोल बनकर रह गया, जो न तो बजाये बजता था और न गले से निकालकर फेंका जाता था।
आखिर लखनऊ से 'माधुरी' पत्रिका के संपादक की कुर्सी सँभालने का प्रस्ताव मिलने पर उसे स्वीकार करने के सिवा गति न थी, क्योंकि अपना प्रेस रोज़ी-रोटी देना तो दूर रहा बराबर घाटे पर घाटा दिये जा रहा था। फिर छः बरस लखनऊ रह गये और वहीं रहते-रहते १९३० में बनारस से अपना मासिक पत्र 'हंस' शुरू किया। उसके कुछ महीने पहले उन्होंने अपनी बेटी की शादी मध्य प्रदेश के सागर जिले की तहसील देवरी के एक अच्छे खाते-पीते देशसेवी घराने में कर दी थी। १९३२ के आरम्भ में लखनऊ का आबादाना खत्म हुआ और मुंशीजी फिर बनारस आ गये। 'हंस' तो निकल ही रहा था 'जागरण' नामक एक साप्ताहिक और निकाला। वह भी बहुत अच्छा पत्र था, लेकिन अच्छा पत्र निकालना और उसे चला पाना दो बिल्कुल अलग बातें हैं। दोनों पत्रों के कारण जब काफ़ी क़र्ज़ा सिर पर हो गया, तब उसे

सिर से उतारने के लिए मोहन भवनानी के निमंत्रण पर उनके अजंता सिनेटोन में कहानी-लेखक की नौकरी करने बंबई पहुँचे। 'मिल' या 'मजदूर' के नाम से उन्होंने एक फ़िल्म की कथा लिखी और कंट्रेक्ट की साल-भर की अवधि पूरी किये बिना दो महीने का वेतन छोड़कर बनारस भाग आये, क्योंकि बंबई का और उससे भी ज़्यादा वहाँ की फ़िल्मी दुनिया का हवा-पानी उन्हें रास नहीं आया। बंबई टाकीज़ तब हिमांशु राय ने शुरू ही की थी। उन्होंने मुंशीजी को बहुत रोकना चाहा पर मुंशी जी किसी तरह नहीं रुके। यहाँ तक कि बनारस से ही फ़िल्म की कहानियाँ भेजते रहने का प्रस्ताव भी नहीं स्वीकार किया।

बंबई में सेहत और भी काफ़ी टूट चुकी थी, बनारस लौटने के कुछ ही महीने बाद बीमार पड़े और काफ़ी दिन बीमारी भुगतने के बाद ८ अक्तूबर १९३६ को चल बसे। यही उनका कुल जीवन-परिचय है। जिस में नाटकीय तत्त्व तो छोड़ ही दीजिए, कोई विशेष कथा-तत्त्व भी नहीं है। जभी तो उन्होंने अपने बारे में लिखा था:

> मेरा जीवन एक सपाट, समतल मैदान है, जिसमें कहीं-कहीं गढ़े तो हैं, पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौक़ीन हैं, उन्हें तो यहाँ निराशा ही होगी।

और सच तो यह है कि अगर ऐसी कुछ बात ही न आ पड़ती, तो शायद उस व्यक्ति ने अपने बारे में इतना भी न लिखा होता। कोई पूछता, तो वह शायद कह देता: मेरी जिन्दगी में ऐसा है ही क्या, जो मैं किसी को सुनाऊँ। बिल्कुल सीधी-सपाट जिन्दगी है, जैसी देश के और करोड़ों लोग जीते हैं। एक सीधा-सादा, गृहस्थी के पचड़ों में फंसा हुआ तंगदस्त मुदर्रिस, जो सारी जिन्दगी क़लम घिसता रहा, इस उम्मीद में कि कुछ आसूदा हो सकेगा मगर न हो सका। उसमें है ही क्या, जो मैं किसी को सुनाऊँ। मैं तो नदी किनारे खड़ा हुआ नरकुल हूँ। हवा के थपेड़ों से मेरे अन्दर भी आवाज पैदा हो जाती हैं, बस इतनी-सी बात है। मेरे पास अपना कुछ नहीं है, जो कुछ है, उन हवाओं का है, जो मेरे भीतर बजीं। और जो हवाएँ उनके भीतर बजीं वही उनका साहित्य है, भारतीय जनता के दुख-सुख का साहित्य, हमारे-आपके दुख-सुख का साहित्य, जिसे आप इसी कारण इतना प्यार करते हैं।

मुझे बड़ी खुशी है कि प्रेमचन्द का कथा-साहित्य अब शुद्ध प्रामाणिक पाठ और सुन्दर साज-सज्जा के साथ 'हिन्द पॉकेट बुक्स' के माध्यम से भी लाखों-करोड़ों पाठकों तक पहुँच सकेगा।

धूप छांह,
इलाहाबाद

(अमृत राय)

भूमिका

प्रायः सभी जातियों के इतिहास में कुछ ऐसी महत्त्व-पूर्ण घटनाएँ होती हैं, जो साहित्यिक कल्पना को अनंत काल तक उत्तेजित करती रहती हैं। साहित्यिक समाज नित नए रूप में उनका उल्लेख किया करता है, छंदों में, गीतों में, निबंधों में, लोकोक्तियों में, व्याख्यानों में बारंबार उनकी आवृत्ति होती रहती है, फिर भी नए लेखकों के लिए गुंजाइश रहती है। हिंदू-इतिहास में रामायण और महाभारत की कथाएँ ऐसी ही घटनाएँ हैं। मुसलमानों के इतिहास में कर्बला के संग्राम को भी वही स्थान प्राप्त है। उर्दू-फ़ारसी के साहित्य में इस संग्राम पर दफ्तर-के-दफ्तर भरे पड़े हैं, यहां तक कि जैसे हिंदी-साहित्य के कितने ही कवियों ने राम और कृष्ण की महिमा गाने में अपना जीवन व्यतीत कर दिया, उसी तरह उर्दू और फ़ारसी में कितने ही कवियों ने केवल मर्सिया कहने ही में जीवन समाप्त कर दिया। किंतु जहां तक हमारा ज्ञान है, अब तक, किसी भाषा में, इस विषय पर नाटक की रचना शायद नहीं हुई। हमने हिंदी में यह ड्रामा लिखने का साहस किया है।

कितने खेद और लज्जा की बात है कि कई शताब्दियों से मुसलमानों के साथ रहने पर भी अभी तक हम लोग प्रायः उनके इतिहास से अनभिज्ञ हैं। हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य का एक कारण यह भी है कि हम हिंदुओं को मुस्लिम-महापुरुषों के सच्चरित्रों का ज्ञान नहीं। जहां किसी मुसलमान बादशाह का जिक्र आया कि हमारे सामने औरंगजेब की तस्वीर खिंच गई। लेकिन अच्छे और बुरे चरित्र सभी समाजों में सदैव होते आए हैं, और होते रहेंगे। मुसलमानों में भी बड़े-बड़े दानी, बड़े-बड़े धर्मात्मा और बड़े-बड़े

न्यायप्रिय बादशाह हुए हैं। किसी जाति के महान् पुरुषों के चरित्रों का अध्ययन उस जाति के साथ आत्मीयता के संबंध का प्रवर्तक होता है, इसमें संदेह नहीं।

नाटक दृश्य होते हैं, और पाठ्य भी। पर, हमारा विचार है, दोनों प्रकार के नाटकों में कोई रेखा नहीं खींची जा सकती। अच्छे अभिनेताओं द्वारा खेले जाने पर प्रत्येक नाटक मनोरंजक और उपदेशप्रद हो सकता है। नाटक का मुख्य अंग उसकी भाव-प्रधानता है, और सभी बातें गौण हैं। जनता की वर्तमान रुचि से किसी नाटक के अच्छे या बुरे होने का निश्चय करना न्याय-संगत नहीं। नौटंकी और धनुष-यज्ञ देखने के लिए लाखों की संख्या में जनता टूट पड़ती है, पर यह उसकी सुरुचि आदर्श नहीं कही जा सकती। हमने यह नाटक खेले जाने के लिए नहीं लिखा, मगर हमारा विश्वास है, यदि कोई इसे खेलना चाहें, तो बहुत थोड़ी कांट-छांट से खेल भी सकते हैं।

यह ऐतिहासिक और धार्मिक नाटक है। ऐतिहासिक नाटकों में कल्पना के लिए बहुत संकुचित क्षेत्र रहता है। घटना जितनी ही प्रसिद्ध होती है, उतनी ही कल्पना-क्षेत्र की संकीर्णता भी बढ़ जाती है। यह घटना इतनी प्रसिद्ध है कि इसकी एक-एक बात, इसके चरित्रों का एक-एक शब्द हजारों बार लिखा जा चुका है। आप उस वृत्तांत से जौ-भर आगे-पीछे नहीं जा सकते। हमने ऐतिहासिक आधार को कहीं नहीं छोड़ा है। हाँ, जहाँ किसी रस की पूर्ति के लिए कल्पना की आवश्यकता पड़ी है, वहाँ अप्रसिद्ध और गौण चरित्रों द्वारा उसे व्यक्त किया है। पाठक इसमें हिंदुओं को प्रवेश करते देखकर चकित होंगे, परंतु वह हमारी कल्पना नहीं है, ऐतिहासिक घटना है। आर्य लोग वहाँ कैसे और कब पहुँचे, यह विवादग्रस्त है। कुछ लोगों का खयाल है, महाभारत के बाद अश्वत्थामा के वंशधर वहाँ जा बसे थे। कुछ लोगों का यह भी मत है, ये लोग उन हिंदुओं की संतान थे, जिन्हें सिकंदर यहाँ से क़ैद कर ले गया। कुछ हो, इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण हैं कि कुछ हिंदू भी हुसैन के साथ कर्बला के संग्राम में सम्मिलित होकर वीर-गति को प्राप्त हुए थे।

इस नाटक में स्त्रियों के अभिनय बहुत कम मिलेंगे। महाशय डी० एल्० राय ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में स्त्री-चरित्र की कमी को कल्पना से पूरा

किया है। उनके नाटक पूर्ण रूप से ऐतिहासिक हैं। कर्बला ऐतिहासिक ही नहीं, धार्मिक भी है, इसलिए इसमें किसी स्त्री-चरित्र की सृष्टि नही की जा सकी। भय था, ऐसा करने से सम्भवतः हमारे मुसलमान-बंधुओं को आपत्ति होगी।

यह नाटक दुःखांत (Tragedy) है। दुःखांत नाटकों के लिए आवश्यक है कि उनके नायक कोई वीरात्मा हों, और उनका शोकजनक अंत उनके धर्म और न्याय-पूर्ण विचारों और सिद्धांतों का फलस्वरूप हो। नायक की दारुण कथा दुःखांत नाटकों के लिए पर्याप्त नहीं। उसकी विपत्ति पर हम शोक नहीं करते, वरन् उसकी नैतिक विजय पर हम आनंदित होते हैं, क्योंकि वहाँ नायक की प्रत्यक्ष हार वस्तुतः उसकी विजय होती है। दुःखांत नाटकों में शोक और हर्ष के भावों का विचित्र रूप से समावेश हो जाता है। हम नायक को प्राण त्यागते देखकर आँसू बहाते हैं, किंतु वह आँसू करुणा के नहीं विजय के होते हैं। दुःखांत नाटक आत्मबलिदान की कथा है, और आत्मबलिदान केवल करुणा की वस्तु नहीं, गौरव की भी वस्तु है। हाँ, नायक का वीरात्मा होना परम आवश्यक है, जिससे हमें उसके अविचल सिद्धांत-प्रियता और अदम्य सत्साहस पर गौरव और अभिमान हो सके।

नाटक में संगीत का अंश होना आवश्यक है, किंतु इतना नहीं, जो अस्वाभाविक हो जाय। हम महान् विपत्ति और महान् सुख, दोनों ही दशाओं में रोते और गाते हैं। हमने ऐसे ही अवसरों पर गान की आयोजना की है। मुस्लिम पात्रों के मुख से ध्रुपद और विहाग कुछ बेजोड़-सा मालूम होता है, इसलिए हमने उर्दू-कवियों की गजलें दे दी हैं। कहीं-कहीं अनीस के मर्सियों में से दो-चार बंद उद्धृत कर लिए हैं। इसके लिए हम उन महानुभावों के ऋणी हैं। कविवर श्रीधरजी पाठक की एक भारत-स्तुति भी ली गई है। अतएव हम उन्हें भी धन्यवाद देते हैं।

इस नाटक की भाषा के विषय में भी कुछ निवेदन करना आवश्यक है। इसकी भाषा हिंदी-साहित्य की भाषा नहीं है। मुसलमान-पात्रों से शुद्ध हिंदी-भाषा का प्रयोग कराना कुछ स्वाभाविक न होता, इसलिए हमने वही भाषा रक्खी है, जो साधारणतः सभ्य समाज में प्रयोग की जाती है। जिसे हिंदू और मुसलमान, दोनों ही बोलते और समझते हैं।

—प्रेमचन्द

□

कथा-सार

हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के बाद कुछ ऐसी परिस्थिति हुई कि खिलाफ़त का पद उनके चचेरे भाई और दामाद हज़रत अली को न मिलकर उमर फ़ारूक को मिला। हज़रत मुहम्मद ने स्वयं ही व्यवस्था की थी कि खलीफ़ा सर्व-सम्मति से चुना जाया करे, और सर्व-सम्मति से उमर फ़ारूक़ चुने गए। उनके बाद अबूबकर चुने गए। अबूबकर के बाद यह पद उसमान को मिला। उसमान अपने कुटुंबवालों के साथ पक्षपात करते थे, और उच्च राजकीय पद उन्हीं को दे रक्खे थे। उनकी इस अनीति से बिगड़कर कुछ लोगों ने उनकी हत्या कर डाली। उसमान के सम्बन्धियों को सन्देह हुआ कि यह हत्या हज़रत अली की ही प्रेरणा से हुई है। अतएव उसमान के बाद अली खलीफ़ा तो हुए, किंतु उसमान के एक आत्मीय सम्बन्धी ने, जिसका नाम मुआबिया था, और जो शाम-प्रांत का सूबेदार था, अली के हाथों पर बैयत न की, अर्थात् अली को खलीफ़ा नहीं स्वीकार किया। अली ने मुआबिया को दंड देने के लिए सेना नियुक्त की। लड़ाइयाँ हुईं, किंतु पाँच वर्ष की लगातार लड़ाई के बाद अंत को मुआबिया की ही विजय हुई। हज़रत अली अपने प्रतिद्वंद्वी के समान कूटनीतिज्ञ न थे। वह अभी मुआबिया को दबाने के लिए एक नई सेना संगठित करने की चिंता में ही थे कि एक हत्यारे ने उनका वध कर डाला।

मुआबिया ने घोषणा की थी कि अपने बाद मैं अपने पुत्र को खलीफा नामज़द न करूँगा, वरन् हज़रत अली के ज्येष्ठ पुत्र हसन को खलीफ़ा बनाऊँगा। किंतु जब इसका अंत-काल निकट आया, तो उसने अपने पुत्र

यज़ीद को खलीफ़ा बना दिया। हसन इसके पहले ही मर चुके थे। उनके छोटे भाई हजरत हुसैन खिलाफ़त के उम्मेदवार थे, किंतु मुआविया ने यज़ीद को अपना उत्तराधिकारी बनाकर हुसैन को निराश कर दिया।

खलीफ़ा हो जाने के बाद यज़ीद को सबसे अधिक भय हुसैन का था, क्योंकि वह हजरत अली के बेटे और हजरत मुहम्मद के नवासे (दौहित्र) थे। उनकी माता का नाम फ़ातिमा ज़ोहरा था, जो मुस्लिम विदुषियों में सबसे श्रेष्ठ थीं। हुसैन बड़े बिद्वान्, सच्चरित्र, शांत-प्रकृति, नम्र, सहिष्णु, ज्ञानी, उदार और धार्मिक पुरुष थे। वह वीर थे, ऐसे वीर कि अरब में कोई उनकी समता का न था। किंतु वह राजनीतिक छल-प्रपंच और कुत्सित व्यवहारों से अपरिचित थे। यज़ीद इन सब बातों में निपुण था। उसने अपने पिता अमीर मुआविया से कूटनीति की शिक्षा पाई थी। उसके गोत्र (क़बीले) के सब लोग कूटनीति के पंडित थे। धर्म को वे केवल स्वार्थ का एक साधन समझते थे। भोग-विलास और ऐश्वर्य का उनको चस्का पड़ चुका था। ऐसे भोग-लिप्सु प्राणियों के सामने सत्यव्रती हुसैन की भला कब चल सकती थी, और चली भी नहीं।

यज़ीद ने मदीने के सूबेदार को लिखा कि तुम हुसैन से मेरे नाम पर बैयत, अर्थात् उनसे मेरे ख़लीफ़ा होने की शपथ लो। मतलब यह कि वह गुप्त रीति से उन्हें क़त्ल करने का षड्यन्त्र रचने लगा। हुसैन ने बैयत लेने से इनकार किया। यज़ीद ने समझ लिया कि हुसैन बग़ावत करना चाहते हैं, अतएव वह उनसे लड़ने के लिए शक्ति-संचय करने लगा। कूफ़ा-प्रांत के लोगों को हुसैन से प्रेम था। वे उन्हीं को अपना ख़लीफ़ा बनाने के पक्ष में थे। यज़ीद को जब यह बात मालूम हुई, तो उसने कूफ़ा के नेताओं को धमकाना और नाना प्रकार के कष्ट देना आरंभ किया। कूफ़ा-निवासियों ने हुसैन के पास, जो उस समय मदीने से मक्के चले गए थे, सन्देशा भेजा कि आप आकर हमें इस संकट से मुक्त कीजिए। हुसैन ने इस सन्देश का कुछ उत्तर न दिया, क्योंकि वह राज्य के लिए ख़ून बहाना नहीं चाहते थे। इधर क़ूफ़ा में हुसैन के प्रेमियों की संख्या बढ़ने लगी। लोग उनके नाम पर बैयत करने लगे। थोड़े हीं दिनों में इन लोगों की संख्या बीस हज़ार तक पहुंच गई। इस बीच में इन्होंने हुसैन की सेवा में दो सन्देश भेजे, किंतु हुसैन ने

उसका भी कुछ उत्तर नहीं दिया। अंत को कूफ़ा वालों ने एक अत्यंत आग्रह-पूर्ण पत्र लिखा, जिसमें हुसैन को हज़रत मुहम्मद और दीन-इस्लाम के निहोरे अपनी सहायता करने को बुलाया। उन्होंने बहुत अनुनय-विनय के बाद लिखा था—"अगर आप न आए, तो कल क़यामत के दिन अल्लाह-ताला के हुज़ूर में हम आप पर दावा करेंगे कि या इलाही, हुसैन ने हमारे ऊपर अत्याचार किया था, क्योंकि हमारे ऊपर अत्याचार होते देखकर वह ख़ामोश बैठे रहे। और, सब लोग फ़र्याद करेंगे कि ऐ ख़ुदा हुसैन से हमारा बदला दिला दे। उस समय आप क्या जवाब देंगे, और ख़ुदा को क्या मुँह दिखाएँगे ?"

धर्म-प्राण हुसैन ने जब यह पत्र पढ़ा, तो उसके रोएँ खड़े हो गए, और उनका हृदय जल के समान तरल हो गया। उनके गालों पर धर्मानुराग के आँसू बहने लगे। उन्होंने तत्काल उन लोगों के नाम एक आश्वासन-पत्र लिखा—"मैं शीघ्र ही तुम्हारी सहायता को आऊँगा।" और अपने चचेरे भाई मुसलिम के हाथ उन्होंने यह पत्र कूफ़ावालों के पास भेज दिया।

मुसलिम मार्ग की कठिनाइयाँ झेलते हुए कूफ़ा पहुँचे। उस समय कूफ़ा का सूबेदार एक शांत पुरुष था। उसने लोगों को समझाया—"नगर में कोई उपद्रव न होने पावे। मैं उस समय तक किसी से न बोलूँगा, जब तक कोई मुझे क्लेश न पहुँचावेगा।"

जिस समय यज़ीद को मुसलिम के कूफ़ा पहुँचने का समाचार मिला, तो उसने एक दूसरे सूबेदार को कूफ़ा में नियुक्त किया जिसका नाम 'ओबैद बिन-ज़ियाद' था। यह बड़ा निठुर और कुटिल प्रकृति का मनुष्य था। इसने आते-ही-आते कूफ़ा में एक सभा की, जिसमें घोषणा की गई कि "जो लोग यज़ीद के नाम पर बैयत लेंगे, उन पर ख़लीफ़ा की कृपादृष्टि होगी, परंतु जो लोग हुसैन के नाम पर बैयत लेंगे, उनके साथ किसी तरह की रियायत न की जायगी। हम उसे सूली पर चढ़ा देंगे और उनकी जागीर या वृत्ति जब्त कर लेंगे।" इस घोषणा ने यथेष्ट प्रभाव डाला। कूफ़ावालों के हृदय काँप उठे। ज़ियाद को वे भली भाँति जानते थे। उस दिन जब मुसलिम भी मसजिद में नमाज़ पढ़ाने के लिये खड़े हुए, तो किसी ने उसका साथ न दिया।

जिन लोगों ने पहले हुसैन की सेवा में आवेदन-पत्र भेजा था, उनका कहीं पता न था। सभी के साहस छूट गए थे। मुसलिम ने एक बार कुछ लोगों की सहायता से ज़ियाद को घेर लिया। किंतु ज़ियाद ने अपने एक विश्वास-पात्र सेवक के मकान की छत पर चढ़कर लोगों को यह संदेसा दिया कि 'जो लोग यज़ीद की मदद करेंगे उन्हें जागीर दी जायगी, और जो लोग बग़ावत करेंगे, उन्हें ऐसा दंड दिया जायगा कि कोई उनके नाम को रोने वाला भी न रहेगा।', नेतागण यह धमकी सुनकर दहल उठे और मुसलिम को छोड़-छोड़कर दस-दस, बीस-बीस आदमी बिदा होने लगे। यहाँ तक कि मुसलिम वहाँ अकेला रह गया। विवश हो उसने एक वृद्धा के घर में शरण लेकर अपनी जान बचाई। दूसरे दिन जब ओबैदुल्लाह को मालूम हुआ कि मुसलिम अमुक वृद्धा के घर में छिपा है, तो उसने ३०० सिपाहियों को उसे गिरफ्तार करने के लिये भेजा। असहाय मुसलिम ने तलवार खींच ली, और शत्रुओं पर टूट पड़े। पर अकेले कर ही क्या सकते थे। थोड़ी देर में ज़ख्मी होकर गिर पड़े। उस समय सूबेदार से उनकी जो बातें हुईं, उनसे विदित होता है कि वह कैसे वीर पुरुष थे। गर्वनर उनकी भय-शून्य बातों से और भी गरम हो गया। उसने उन्हें तुरंत क़त्ल करा दिया।

हुसैन, अपने पूज्य पिता की भाँति, साधुओं का-सा सरल जीवन व्यतीत करने के लिये बनाए गए थे। कोई चतुर मनुष्य होता, तो उस समय दुर्गम पहाड़ियों में जा छिपता, और यमन के प्राकृतिक दुर्गों में बैठकर चारों ओर से सेना एकत्र करता। देश में उनका जितना मान था, और लोगों को उन पर जितनी भक्ति थी, उसके देखते २०-२५ हज़ार सेना एकत्र कर लेना उनके लिये कठिन न था। किंतु वह अपने को पहले ही से हारा हुआ समझने लगे। यह सोचकर वह कहीं भागते न थे। उन्हें भय था कि शत्रु मुझे अवश्य खोज लेगा। वह सेना जमा करने का भी प्रयत्न न करते थे। यहाँ तक कि जो लोग उनके साथ थे, उन्हें भी अपने पास से चले जाने की सलाह देते थे। इतना ही नहीं, उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि मैं ख़लीफ़ा बनना चाहता हूँ। वह सदैव यही कहते रहे कि मुझे लौट जाने दो, मैं किसी से लड़ाई नहीं करना चाहता। उनकी आत्मा इतनी उच्च थी कि वह सांसारिक राज्य-भोग के लिये संग्राम-क्षेत्र में उतरकर उसे कलुषित नहीं करना चाहते थे। उनके

जीवन का उद्देश्य आत्म-शुद्धि और धार्मिक जीवन था। वह कूफ़ा में जाने को इसलिये सहमत नहीं हुए थे कि वहाँ ख़िलाफ़त स्थापित करें बल्कि इसलिये कि वह अपने सहधर्मियों की विपत्ति को देख न सकते थे। वह कूफ़ा जाते समय अपने सब संबंधियों से स्पष्ट शब्दों में कह गये थे कि मैं शहीद होने जा रहा हूँ। यहाँ तक कि वह एक स्वप्न का भी उल्लेख करते थे, जिसमें उनके नाना ने उनको स्वर्ग आने का निमंत्रण दिया था, और वह उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी टेक केवल यह थी कि मैं यज़ीद के नाम पर बैयत न करूँगा। इसका कारण यही था कि यज़ीद मद्यप, व्यभिचारी और इसलाम-धर्म के नियमों का पालन न करनेवाला था। यदि यज़ीम ने उनकी हत्या कराने की चेष्टा न की होती, तो वह शांति-पूर्वक मदीने में जीवन-भर पड़े रहते। पर समस्या यह थी कि उनके जीवित रहते हुए यज़ीद को अपना स्थान सुरक्षित नहीं मालूम हो सकता था। उसके निष्कंटक राज्य-भोग के लिये हुसैन का उसके मार्ग से सदा के लिये हट जाना परम आवश्यक था। और, इस हेतु कि ख़िलाफ़त एक धर्म-प्रधान संस्था थी, अतः यज़ीद को हुसैन के रण-क्षेत्र में आने का उतना भय न था, जितना उनके शांति-सेवन का। क्योंकि शांति-सेवन से जनता पर उनका प्रभाव बढ़ता जाता था। इसीलिये यज़ीद ने यह भी कहा था कि हुसैन का केवल उसके नाम पर बैयत लेना ही पर्याप्त नहीं है, उन्हें उसके दरबार में भी आना चाहिए। यज़ीद को उनकी बैयत पर विश्वास न था। वह उन्हें किसी भाँति अपने दरबार में बुलाकर उनकी जीवन-लीला को समाप्त कर देना चाहता था। इसलिये यह धारणा कि हुसैन अपनी ख़िलाफ़त क़ायम करने के लिये कूफ़ा गए, निर्मूल सिद्ध होती है। वह कूफ़ा इसलिये गए कि अत्याचार-पीड़ित कूफ़ा-निवासियों की सहायता करें। उन्हें प्राण-रक्षा के लिये कोई जगह दिखाई न देती थी। यदि वह ख़िलाफ़त के उद्देश्य से कूफ़ा जाते, तो अपने कुटुंब के केवल ७२ प्राणियों के साथ न जाते, जिनमें बाल-वृद्ध सभी थे। कूफ़ावालों पर कितना ही विश्वास होने पर भी वह अपने साथ अधिक मनुष्यों को लाने का प्रयत्न करते। इसके सिवा उन्हें यह बात पहले से ज्ञात थी कि कूफ़ा के लोग अपने वचनों पर दृढ़ रहने वाले नहीं हैं। उन्हें कई बार इसका प्रमाण भी मिल चुका था कि थोड़े-से प्रलोभन पर भी

वे अपने वचनों से विमुख हो जाते हैं। हुसैन के इष्ट-मित्रों ने उनका ध्यान कूफ़ावालों की इस दुर्बलता की ओर खींचा भी, पर हुसैन ने उनकी सलाह न मानी। वह सहादत का प्याला पीने के लिये, अपने को धर्म की वेदी पर बलि देने के लिये, विकल हो रहे थे। इससे हितैषियों के मना करने पर भी वह कूफ़ा चले गए। दैव-संयोग से यह तिथि वही थी, जिस दिन कूफ़ा में मुसलिम शहीद हुए थे। १८ दिन की कठिन यात्रा के बाद वह 'नाहनेवा' के समीप, कर्बला के मैदान में पहुँचे, जो फ़रात नदी के किनारे था। इस मैदान में न कोई बस्ती थी, न कोई वृक्ष। कूफ़ा के गवर्नर की आज्ञा से वह इसी निर्जन और निर्जल स्थान में डेरे डालने को विवश किए गए।

शत्रुओं की सेना हुसैन के पीछे-पीछे मक्के से ही आ रही थी। और सेनाएँ भी चारों ओर फैला दी गई थीं कि हुसैन किसी गुप्त मार्ग से कूफ़ा न पहुँच जाएँ। कर्बला पहुँचने के एक दिन पहले उन्हें हुर की सेना मिली। हुसैन ने हुर को बुलाकर पूछा—"तुम मेरे पक्ष में हो, या विपक्ष में ?" हुर ने कहा—"मैं आपसे लड़ने के लिये भेजा गया हूँ।" जब तीसरा पहर हुआ, तो हुसैन नमाज़ पढ़ने के लिये खड़े हुए, और उन्होंने हुर से पूछा—"तू क्या मेरे पीछे खड़ा होकर नमाज़ पढ़ेगा ?" हुर ने हुसैन के पीछे खड़े होकर नमाज पढ़ना स्वीकार किया। हुसैन ने अपने साथियों के साथ हुर की सेना को भी नमाज पढ़ाई। हुर ने यज़ीद की बैयत ली थी। पर वह सद्विचारशील पुरुष था। हज़रत मुहम्मद के नवासे से लड़ने में उसे संकोच होता था। वह बड़े धर्म-संकट में पड़ा। वह सच्चे हृदय से चाहता था कि हुसैन मक्का लौट जायँ। प्रकट रूप से तो हुसैन को ओबैदुल्लाह के पास ले चलने की धमकी देता था, पर हृदय से उन्हें अपने हाथों कोई हानि नहीं पहुँचाना चाहता था। उसने खुले हुए शब्दों में हुसैन ने कहा—"यदि मुझसे कोई ऐसा अनुचित कार्य हो गया, जिससे आपको कोई कष्ट पहुँचा, तो मेरे लोक और परलोक, दोनों ही बिगड़ जायँगे। और, यदि मैं आपको ओबैदुल्लाह के पास न ले जाऊँ, तो कूफ़ा में नहीं घुस सकता। हाँ, संसार विस्तृत है, कयामत के दिन आपके नाना की कृपादृष्टि से वंचित होने की अपेक्षा यही कहीं अच्छा है कि किसी दूसरी ओर निकल जाऊँ। आप मुख्य मार्ग को छोड़कर किसी अज्ञात मार्ग से कहीं और चले जायँ। मैं क़ूफ़ा के गवर्नर [अर्थात्

'आमिल'] को लिख दूंगा कि हुसैन से मेरी भेंट नहीं हुई, वह किसी दूसरी ओर चले गए। मैं आपको क़सम दिलाता हूँ कि अपने ऊपर दया कीजिए, और कूफ़ा न जाइए।" पर हुसैन ने कहा—"तुम मुझे मौत से डराते हो? मैं तो शहीद होने के लिये ही चला हूँ।" उस समय यदि हुसैन हुर की सेना पर आक्रमण करते, तो संभव था, उसे परास्त कर देते, पर अपने इष्ट-मित्रों के अनुरोध करने पर भी उन्होंने यही कहा—"हम लड़ाई के मैदान में अग्रसर न होंगे, यह हमारी नीति के विरुद्ध है।" इससे भी यही बात सिद्ध होती है कि हुसैन को अब अपनी आत्मरक्षा का कोई उपाय न सूझता था। उनमें साधुओं का-सा संतोष था, पर योद्धाओं का-सा धैर्य न था, जो कठिन-से-कठिन समय पर भी कष्ट-निवारण का उपाय निकाल लेते हैं। उनमें महात्मा गांधी का-सा आत्मसमर्पण था, किंतु शिवाजी की दूरदर्शिता न थी।

इधर हुसैन और उनके आत्मीय तथा सहायकगण तो अपने-अपने ख़ीमे गाड़ रहे थे, और उधर ओबैदुल्लाह—कूफ़ा का गवर्नर—लड़ाई की तैयारी कर रहा था। उसने 'उमर-बिन-साद' नाम के एक योद्धा को बुलाकर हुसैन की हत्या करने के लिये नियुक्त किया, और इसके बदले में 'रै' सूबे के आमिल का उच्च पद देने को कहा। उमर-बिन-साद विवेक-हीन प्राणी न था। वह भली भाँति जानता था कि 'हुसैन की हत्या करने से मेरे मुख पर ऐसी कालिमा लग जायगी, किंतु 'रै' सूबे का उच्च पद उसे असमंजस में डाले हुए था। उसके संबंधियों ने समझाया—"तुम हुसैन की हत्या करने का बीड़ा न उठाओ, इसका परिणाम अच्छा न होगा।" उमर ने जाकर ओबैदुल्लाह से कहा—"मेरे सिर पर हुसैन के वध का भार न रखिए।" परंतु 'रै' की गवर्नरी छोड़ने को वह तैयार न हो सका। अतएव अब ओबैदुल्लाह ने साफ़-साफ़ कह दिया कि 'रै' का उच्च पद हुसैन की हत्या किए बिना नहीं मिल सकता। यदि तुम्हें यह सौदा महँगा जँचता हो, तो कोई जबरदस्ती नहीं है। किसी और को यह पद दिया जायगा।" तो उमर का आसन डोल गया। वह इस निषिद्ध कार्य के लिये तैयार हो गया। उसने अपनी आत्मा को ऐश्वर्य-लालसा के हाथ बेच दिया। ओबैदुल्लाह ने प्रसन्न होकर उसे बहुत कुछ इनामइक़राम दिया, और चार हज़ार सैनिक उसके साथ नियुक्त कर दिए।

उमर-बिन-साद की आत्मा अब भी उसे क्षुब्ध करती रही। वह सारी रात पड़ा अपनी अवस्था या दुरावस्था पर विचार करता रहा। वह जिस विचार से देखता, उसी से अपना यह कर्म घृणित जान पड़ता था। प्रातःकाल वह फिर कूफ़ा के गर्वनर के पास गया। उसने फिर अपनी लाचारी दिखाई। परंतु 'रै' की सूबेदारी ने उस पर फिर विजय पाई। जब वह चलने लगा, तो ओबैदुल्लाह ने उसे कड़ी ताक़ीद कर दी कि हुसैन और उनके साथी फ़रात-नदी के समीप किसी तरह न आने पावें, और एक घूंट पानी भी न पी सकें। हुर की १००० सेना भी उमर के साथ आ मिली। इस प्रकार उमर के साथ पाँच हजार सैनिक हो गए। उमर अब भी यही चाहता था कि हुसैन के साथ लड़ना न पड़े। उसने एक दूत उनके पास भेजकर पूछा—"आप अब क्या निश्चय करते हैं?" हुसैन ने कहा—"कूफ़ावालों ने मुझसे दग़ा की है। उन्होंने अपने कष्ट की कथा कहकर मुझे यहाँ बुलाया, और अब वह मेरे शत्रु हो गए हैं। ऐसी दशा में मैं मक्के लौट जाना चाहता हूँ, यदि मुझे ज़बरदस्ती रोका न जाय।" उमर मन मे प्रसन्न हुआ कि शायद अब कलक से बच जाऊँ। उसने यह समाचार तुरंत ओबैदुल्लाह को लिख भेजा। किंतु वहाँ तो हुसैन की हत्या करने का निश्चय हो चुका था। उसने उमर को उत्तर दिया—"हुसैन से बैयत लो, और यदि वह इस पर राजी न हों, तो मेरे पास लाओ।"

शत्रुओं को, इतनी सेना जमा कर लेने पर भी, सहसा हुसैन पर आक्रमण करते डर लगता था कि कही जनता मे उपद्रव न मच जाय। इसलिये इधर तो उमर-बिन-साद कर्बला को चला, और उधर ओबैदुल्लाह ने कूफ़ा की जामा मसजिद में लोगों को जमा किया। उसने एक व्याख्यान देकर उन्हें समझाया—"यज़ीद के ख़ानदान ने तुम लोगों पर कितना न्याय-युक्त शासन किया है, और वे तुम्हारे साथ कितनी उदारता से पेश आए हैं! यज़ीद ने अपने सुशासन से देश को कितना समृद्धि-पूर्ण बना दिया है! रास्ते में अब चोरों और लुटेरों का कोई खटका नहीं है। न्यायालयों में सच्चा, निष्पक्ष न्याय होता है। उसने कर्मचारियों के वेतन बढ़ा दिए हैं। राज भक्तों की जागीरें बढ़ा दी गई हैं। विद्रोहियों के कोट तहस-नहस कर दिए गए हैं, जिसमें वे तुम्हारी शांति में बाधक न हो सकें। तुम्हारे जीवन-निर्वाह

के लिये उसने चिरस्थायी सुविधाएँ दे रक्खी हैं। ये सब उनकी दयाशीलता और उदारता के प्रमाण हैं। यज़ीद ने मेरे नाम फ़रमान भेजा है कि मैं तुम्हारे ऊपर विशेष कृपादृष्टि करूँ, और जिसे एक दीनार वृत्ति मिलती है, उनकी वृत्ति सौ दीनार कर दूं। इसी तरह वेतन में भी वृद्धि कर दूं। और तुम्हें उसके शत्रु हुसैन से लड़ने के लिये भेजूं। यदि तुम अपनी उन्नति और वृद्धि चाहते हो तो तुरंत तैयार हो जाओ। विलंब से काम बिगड़ जायगा।''

यह व्याख्यान सुनते ही स्वार्थ के मतवाले नेता लोग, धर्माधर्म के विचार को तिलांजलि देकर, समर-भूमि में चलने की तैयारी करने लगे। 'शिमर' ने चार हज़ार सवार जमा किए, और वह बिन-साद से जा मिला। रिकाव ने दो हज़ार, हसीन ने चार हज़ार, मसायर ने तीन हज़ार और अन्य एक सरदार ने दो हज़ार योद्धा जमा किए। सब-के-सब दल-बल साजकर कर्बला को चले। उमर-बिन-साद के पास अब पूरे २२ सहस्र सैनिक हो गए। कैसी दिल्लगी है कि ७२ आदमियों को परास्त करने के लिये इतनी बड़ी सेना खड़ी हो जाय! उन बहत्तर आदमियों में भी कितने ही बालक और कितने ही वृद्ध थे। फिर प्यास ने सभी को अधमरा कर रक्खा था।

किंतु शत्रुओं ने अवस्था को भली-भाँति समझकर यह तैयारी की थी। हुसैन की शक्ति न्याय और सत्य की शक्ति थी। यह यजीद और हुसैन का संग्राम न था। यह इस्लाम धार्मिक जन-सत्ता का पूर्व इस्लाम की राज-सत्ता से संघर्ष था। हुसैन उन सब व्यवस्थाओं के पक्ष में थे, जिनका हजरत मोहम्मद द्वारा प्रादुर्भाव हुआ था। मगर यजीद उन सभी बातों का प्रति-पक्षी था। दैवयोग से इस समय अधर्म ने धर्म को पैरों-तले दबा लिया था; पर यह अवस्था एक क्षण में परिवर्तित हो सकती थी, और इनके लक्षण भी प्रकट होने लगे थे। बहुतेरे सैनिक जाने को तो चले जाते थे, परंतु अधर्म के विचार से सेना से भाग आते थे। जब ओबैदुल्लाह को यह बात मालूम हुई, तो उसने कई निरीक्षक नियुक्त किए। उनका काम यही था कि भागने वालों का पता लगावें। कई सिपाही इस प्रकार जान से मार डाले गए। यह चाल ठीक पड़ी। भगोड़े भयभीत होकर फिर सेना में जा मिले।

इस संग्राम में सबसे घोर निर्दयता जो शत्रुओं ने हुसैन के साथ की, वह

पानी का बंद कर देना था। ओबैदुल्लाह ने उमर को कड़ी ताक़ीद कर दी थी कि हुसैन के आदमी नदी के समीप न जाने पावें। यहां तक कि वे कुएँ खोदकर भी पानी न निकालने पावें। एक सेना फ़रात-नदी की रक्षा करने के लिये भेज दी गई। उसने हुसैन की सेना और नदी के बीच में डेरा जमाया। नदी की ओर जाने का कोई रास्ता न रहा। थोड़े नहीं, छः हज़ार सिपाही नदी का पहरा दे रहे थे। हुसैन ने यह ढंग देखा, तो स्वयं इन सिपाहियों के सामने गए, और उन पर प्रभाव डालने की कोशिश की, पर उन पर कुछ असर न हुआ। लाचार होकर वह लौट आए। उस समय प्यास के मारे इनका कंठ सूखा जाता था, स्त्रियाँ और बच्चे बिलख रहे थे; किंतु उन पाषाण-हृदय पिशाचों को इन पर दया न आती थी।

शहीद होने के तीन दिन पहले हुसैन और अन्य प्राणी प्यास के मारे बेहोश हो गए। तब हुसैन ने अपने प्रिय बंधु अब्बास को बुलाकर, उन्हें बीस सवार तथा तीस पैदल देकर, उनसे कहा—"अपने साथ बीस मश्कें ले जाओ, और पानी से भर लाओ।" अब्बास ने सहर्ष इस आदेश को स्वीकार किया। वह नदी के किनारे पहुँचे। पहरेदार ने पुकारा—"कौन है?" इधर उस पहरेदार का एक भाई भी था। वह बोला—"मैं हूँ, तेरे चाचा का बेटा पानी पीने आया हूँ।" पहरेदार ने कहा—"पी ले।" भाई ने उत्तर दिया—"कैसे पी लूं? जब हुसैन और उनके बाल-बच्चे प्यासे मर रहे हैं, तो मैं किस मुंह से पी लूं?" पहरेदार ने कहा—"यह तो जानता हूँ, पर करूँ क्या, हुक्म से मजबूर हूँ!" अब्बास के आदमी मश्कें लेकर नदी की ओर गए, और पानी भर लिया। रक्षक-दल ने इनको रोकने की चेष्टा की, पर ये लोग पानी लिए हुए बच निकले।

हुसैन ने अंतिम बार संधि करने का प्रयास किया। उन्होंने उमर-बिन साद को सन्देशा भेजा कि "आज मुझसे रात को, दोनों सेनाओं के बीच में, मिलना।" उमर निश्चित समय पर आया। हुसैन से उसकी बहुत देर तक एकांत में बातें हुईं। हुसैन ने संधि की तीन शर्तें बताईं—(१) या तो हम लोगों को मक्के वापस जाने दिया जाय, (२) या सीमा प्रांत की ओर शांतिपूर्वक चले जाने की अनुमति मिले, (३) या मैं यज़ीद के पास भेज दिया जाऊँ। उमर ने ओबैदुल्लाह को यह शुभ सूचना सुनाई, और वह उसे मानने

के लिये तैयार भी मालूम होता था, किंतु शिमर ने ज़ोर दिया कि दुश्मन चंगुल में आ फँसा है, तो इसे निकलने न दो, नहीं तो उसकी शक्ति इतनी बढ़ जायगी कि तुम उसका सामना न कर सकोगे। उमर मजबूर हो गया।

मोहर्रम की ९वीं तारीख को, अर्थात् हुसैन की शहादत से एक दिन पहले, कूफ़ा के दिहातों से कुछ लोग हुसैन की सहायता करने आए। ओबैदुल्लाह को यह बात मालूम हुई, तो उसने उन आदमियों को भगा दिया, और उमर को लिखा—"अब तुरंत हुसैन पर आक्रमण करो, नहीं तो इस टालमटोल की तुम्हें सज़ा दी जायगी।" फिर क्या था; प्रातःकाल बाइस हज़ार योद्धाओं की सेना हुसैन से लड़ने चली। जुगुनू की चमक को बुझाने के लिए मेघ-मंडल का प्रकोप हुआ।

हुसैन को मालूम हुआ, तो वे घबराए। उन्हें यह अन्याय मालूम हुआ कि अपने साथ अपने साथियों और सहायकों के भी प्राणों की आहुति दें। उन्होंने इन लोगों को इसका एक अवसर देना उचित समझा कि वे चाहें, तो अपनी जान बचावें, क्योंकि यज़ीद को उन लोगों से कोई शत्रुता न थी। इसलिए उन्होंने उमर बिन-साद को पैग़ाम भेजा कि हमें एक रात के लिए मोहलत दो। उमर ने अन्य सेना-नायकों से परामर्श करके मोहलत दे दी। तब हज़रत हुसैन ने अपने समस्त सहायकों तथा परिवारवालों को बुलाकर कहा—"कल ज़रूर यह भूमि मेरे खून से लाल हो जायगी। मैं तुम लोगों का हृदय से अनुगृहीत हूँ कि तुमने मेरा साथ दिया। मैं अल्लाहताला से दुआ करता हूँ कि वह तुम्हें इस नेकी का सवाब दे। तुमसे अधिक वीरात्मा और पवित्र हृदय वाले मनुष्य संसार में न होंगे। मैं तुम लोगों को सहर्ष आज्ञा देता हूं कि तुममें से जिसकी जहाँ इच्छा हो, चला जाय, मैं किसी को दबाना नहीं चाहता, न किसी को मजबूर करता हूँ। किंतु इतना अनुरोध अवश्य करूँगा कि तुममें से प्रत्येक मनुष्य मेरे आत्मीय जनों में से एक-एक को अपने साथ ले ले। संभव है, ख़ुदा तुम्हें तबाही से बचा ले, क्योंकि शत्रु मेरे रुधिर का प्यासा है। मुझे पा जाने पर उसको और किसी की तलाश न होगी।"

यह कहकर उन्होंने इसलिए चिराग़ बुझा दिया कि जाने वालों को संकोच-वश वहाँ न रहना पड़े। कितना महान्, पवित्र और निस्स्वार्थ

आत्मसमर्पण है !

किंतु इस वाक्य का समाप्त होना था कि सब लोग चिल्ला उठे— "हम ऐसा नहीं कर सकते। खुदा वह दिन न दिखावे कि हम आपके बाद जीते रहें। हम दूसरों को क्या मुँह दिखावेंगे ? उनसे क्या यह कहेंगे कि हम अपने स्वामी, अपने बंधु तथा अपने इष्ट-मित्र को शत्रुओं के बीच में छोड़ आए, उनके साथ एक भाला भी न चलाया, एक तलवार भी न चलाई ! हम आपको अकेला छोड़कर कदापि नहीं जा सकते, हम अपने को, अपने धन को और अपने कुल को आपके चरणों पर न्योछावर कर देंगे।"

इस तरह ९वीं तारीख, मोहर्रम की रात, आधी कटी। शेष रात्रि लोगों ने ईश्वर-प्रार्थना में काटी। हुसैन ने एक रात की मोहलत इसलिए नही ली थी कि समर की रही-सही तैयारी पूरी कर लें। प्रातःकाल तक सब लोग सिजदे करते और अपनी मुक्ति के लिए दुआएँ माँगते रहे।

प्रभात हुआ—वह प्रभात, जिस की संसार के इतिहास में उपमा नहीं है ! किसकी आँखों ने यह अलौकिक दृश्य देखा होगा कि ७२ आदमी बाइस हज़ार योद्धाओं के सम्मुख खड़े हुसैन के पीछे सुबह की नमाज़ इसलिए पढ़ रहे हैं कि अपने इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ने का शायद यह अंतिम सौभाग्य है। वे कैसे रणधीर पुरुष हैं, जो जानते हैं कि एक क्षण में हम सब-के-सब इस आंधी में उड़ जाएंगे, लेकिन फिर भी पर्वत की भांति अचल खड़े हैं; मानो संसार में कोई ऐसी शक्ति नही है, जो उन्हें भयभीत कर सके। किसी के मुख पर चिंता नहीं है, कोई निराश और हताश नही है ! युद्ध के उन्माद ने, अपने सच्चे स्वामी के प्रति अटल विश्वास ने, उनके मुख को तेजस्वी बना दिया है। किसी के हृदय में कोई अभिलाषा नहीं है। अगर कोई अभिलाषा है, तो यही कि कैसे अपने स्वामी की रक्षा करें। इसे सेना कौन कहेगा, जिसके दमन को बाइस हजार योद्धा एकत्र किए गए थे। इन बहत्तर प्राणियों में एक भी ऐसा न था, जो सर्वथा लड़ाई के योग्य हो। सब-के-सब भूख-प्यास से तड़प रहे थे। कितनों के शरीर पर तो मांस का नाम तक नहीं था, और उन्हें बिना ठोकर खाए दो पग चलना भी कठिन था। इस प्राण-पीड़ा के समय ये लोग उस सेना से लड़ने को तैयार थे, जिसमें अरब-देश के वे चुने हुए जवान थे, जिन पर अरब को गर्व हो सकता था।

उन दिनों समर की दो पद्धतियाँ थीं—एक तो सम्मिलित, जिसमें समस्त सेना मिलकर लड़ती थी, और दूसरी व्यक्तिगत, जिसमें दोनों दलों से एक-एक योद्धा निकलकर लड़ते थे। हुसैन के साथ इतने कम आदमी थे कि सम्मिलित संग्राम में शायद वह एक क्षण भी न ठहर सकते। अतः उनके लिए दूसरी शैली ही उपयुक्त थी। एक-एक करके योद्धागण समर-क्षेत्र में आने और शहीद होने लगे। लेकिन इसके पहले अंतिम बार हुसैन ने शत्रुओं से बड़ी ओजस्विनी भाषा में अपनी निर्दोषिता सिद्ध की। उनके अंतिम शब्द ये थे—

"ख़ुदा की क़सम, मैं पद-दलित और अपमानित होकर तुम्हारी शरण न जाऊँगा, और न मैं दासों की भाँति लाचार होकर यज़ीद की ख़िलाफ़त को स्वीकार करूँगा। ऐ ख़ुदा के बंदो! मैं ख़ुदा से शांति का प्रार्थी हूँ। और उन प्राणियों से, जिन्हें ख़ुदा पर विश्वास नहीं है, जो ग़रूर में अंधे हो रहे हैं, पनाह माँगता हूँ।"

शेष कथा आत्म-त्याग, प्राण-समर्पण, विशाल धैर्य और अविचल वीरता की अलौकिक और स्मरणीय गाथा है, जिसके कहने और सुनने से आँखों में आँसू उमड़ आते हैं, जिस पर रोते हुए लोगों को १३ शताब्दियाँ बीत गईं, और अभी अनंत शताब्दियाँ रोते बीतेंगी।

हुर का ज़िक्र पहले आ चुका है। यह वही पुरुष है, जो एक हज़ार सिपाहियों के साथ हुसैन के साथ-साथ आया था, और जिसने उन्हें इस निर्जल मरुभूमि पर ठहरने को मजबूर किया था। उसे अभी तक आशा थी कि शायद ओबैदुल्लाह हुसैन के साथ न्याय करे। किंतु जब उसने देखा कि लड़ाई छिड़ गई, और अब समझौते की कोई आशा नहीं है, तो अपने कृत्य पर लज्जित होकर वह हुसैन की सेना से आ मिला। जब वह अनिश्चित भाव से अपने मोरचे से निकल कर हुसैन की सेना की ओर चला, तब उसी सेना के एक सिपाही ने कहा—"तुमको मैंने किसी लड़ाई में इस तरह काँपते हुए चलते नहीं देखा।"

हुर ने उत्तर दिया—"मैं स्वर्ग और नरक की दुविधा में पड़ा हुआ हूँ, और सच यह है कि मैं स्वर्ग के सामने किसी चीज़ की हस्ती नहीं समझता, चाहे कोई मुझे मार डाले।"

यह कहकर उसने घोड़े के एड़ लगाई, और हुसैन के पास आ पहुँचा। हुसैन ने उसका अपराध क्षमा कर दिया, और उसे गले से लगाया। तब हुर ने अपनी सेना को संबोधित करके कहा—"तुम लोग हुसैन की शर्तें क्यों नहीं मानते ? कितने खेद की बात है कि तुमने स्वयं उन्हें बुलाया, और जब वह तुम्हारी सहायता करने आए, तो तुम उन्हीं को मारने पर उद्यत हो गए। वह अपनी जान लेकर चले भी जाना चाहते हैं, किंतु तुम लोग उन्हें कहीं जाने भी नहीं देते ? सबसे बड़ा अन्याय यह कर रहे हो कि उन्हें नदी से पानी नहीं लेने देते ! जिस पानी को पशु और पक्षी तक पी सकते हैं, वह भी उन्हें मयस्सर नहीं !"

इस पर शत्रुओं ने उन पर तीरों की वर्षा कर दी, और हुर भी लड़ते हुए वीर-गति को प्राप्त हुए। उन्हीं के साथ उनका पुत्र भी शहीद हुआ।

आश्चर्य होता है और दुःख भी कि इतना सब कुछ हो जाने पर भी हुसैन को इन नर-पिशाचों से कुछ कल्याण की आशा बनी हुई थी। वह जब अवसर पाते थे, तभी अपनी निर्दोषिता प्रकट करते हुए उनसे आत्मरक्षा की प्रार्थना करते थे। दूराशा में भी यह आशा इसलिए थी कि वह हज़रत मोहम्मद के नवासे थे, और उन्हें आशा होती थी कि शायद अब भी मैं उनके नाम पर इस कष्ट से मुक्त हो जाऊँ। उनके इन सभी संभाषणों में आत्म-रक्षा की इतनी विषद चिंता व्याप्त है, जो दीन चाहे न हो, पर करुण अवश्य है, और एक आत्मदर्शी पुरुष के लिए, जो स्वर्ग में इससे कहीं उत्तम जीवन का स्वप्न देख रहा हो, जिसको अटल विश्वास हो कि स्वर्ग में हमारे लिए अकथनीय सुख उपस्थित है, शोभा नहीं देती। हुर के शहीद होने के पश्चात् हुसैन ने फिर शत्रु-सेना के सम्मुख खड़े होकर कहा—

"मैं तुमसे निवेदन करता हूँ कि मेरी इन तीन बातों में से एक को मान लो—

(१) "मुझे यज़ीद के पास जाने दो कि उससे बहस करूँ। यदि मुझे निश्चय हो जाएगा कि वह सत्य पर है, तो मैं उसकी बैयत कर लूँगा।"

इस पर किसी पाषाण-हृदय ने कहा—"तुम्हें यज़ीद के पास न जाने देंगे। तुम मधुरभाषी हो, अपनी बातों में उसे फंसा लोगे, और इस समय मुक्त होकर देश में विद्रोह फ़ैला दोगे।"

(२) "जब यह नहीं मानते, तो छोड़ दो कि मैं अपने नाना के रोजे की मुजाविरी करूँ।"

(इस पर भी किसी ने उपर्युक्त शंका प्रकट की)

(३) "अगर ये दोनों बातें तुम्हें अस्वीकार हैं, तो मुझे और मेरे साथियों को पानी दो; क्योंकि प्राणि-मात्र को पानी लेने का हक़ है।"

(इसका भी वैसा ही कठोर और निराशाजनक उत्तर मिला)

इस प्रश्नोत्तर के बाद हुसैन की ओर से बुरीर मैदान में आए। उधर से मुअक्कल निकला। बुरीर ने अपने प्रतिपक्षी को मार लिया, और फिर खुद सेना के हाथों मारे गए। बुरीर के बाद अब्दुल्लाह निकले और दस-बीस शत्रुओं को मारकर काम आए।

अब्दुल्लाह के बाद उनका पुत्र, जिसका नाम वहब था, मैदान में आया। उसकी वीर-गाथा अत्यंत मर्मस्पर्शी है, और राजपूताने के अमर वीर-वृत्तांत की याद दिलाती है। वहब का विवाह हुए अभी केवल सत्रह दिन हुए थे। हाथ की मेहँदी तक न छूटी थी। जब उसके पिता शहीद हो गए, तो उसकी माता उससे बोलीं—

"मीख्वाहम कि मरा अज़ खूने-खुद शरबते दिही ताशीरे कि अज-पिस्ताने मन खुरदई बर तो हलाल गरदद।"

कितने सुन्दर शब्द हैं, जो शायद ही किसी वीर-माता के मुँह से निकले होंगे। भावार्थ यह है—

"मेरी इच्छा है कि तू अपने रक्त का एक घूँट मुझे दे, जिसमें कि यह दूध, जो तूने मेरे स्तन से पिया है, तुझ पर हलाल हो जाय।"

वहब के शहीद हो जाने के बाद क्रम से कई योद्धा निकले, और मारे गए। इस्लामी पुस्तकों में तो उनकी वीरता का बड़ा प्रशंसात्मक वर्णन किया गया है। उनमें से प्रत्येक ने कई-कई सौ शत्रुओं को परास्त किया। ये भक्तों के मानने की बातें हैं। जो लोग प्यास से तड़प रहे थे, भूख से आँखों तले अँधेरा छा जाता था, उनमें इतनी असाधारण शक्ति और वीरता कहाँ से आ गई? उमर-बिन-साद की सेना में 'शिमर' बड़ा क्रूर और दुष्ट आदमी था। इस समर में हुसैन और उनके साथियों के साथ जिस अपमान-मिश्रित निर्दयता का व्यवहार किया गया, उसका दायित्व इसी शिमर के सिर है।

यह धार्मिक संग्राम था, और इतिहास साक्षी है कि धार्मिक संग्राम में पाशविक प्रवृत्तियां अत्यंत प्रचंड रूप धारण कर लेती हैं। पर इस संग्राम में ऐसे प्रतिष्ठित प्राणी के साथ जितनी घोर दुष्टता और दुर्जनता दिखाई गई, उसकी उपमा संसार के धार्मिक संग्रामों में भी मुश्किल से मिलेगी, हुसैन के जितने साथी शहीद हुए, प्रायः उन सभी की लाशों को पैरों-तले रौंदा गया, उनके सिर काटकर भालों पर उछाले और पैरों से ठुकराए गए। पर कोई भी अपमान और बड़ी-से-बड़ी निर्दयता उनकी उस कीर्ति को नहीं मिटा सकती, जो इस्लाम के इतिहास का आज भी गौरव बढ़ा रही है। इस्लाम के साहित्य और इतिहास में उन्हें वह स्थान प्राप्त है, जो हिंदू-साहित्य में अंगद, जामवंत, अर्जुन, भीम, आदि को प्राप्त है। सूर्यास्त होते-होते सहायकों में कोई भी नहीं बचा।

अब निज कुटुंब के योद्धाओं की बारी आई। इस वंश के पूर्वज हाशिम नाम के एक पुरुष थे। इसीलिए हज़रत मोहम्मद का वंश हाशिमी कहलाता है। इस संग्राम में पहला हाशिमी जो क्षेत्र में आया, वह अब्दुल्लाह था। यह उसी मुसलिम साम के वीर का बालक था, जो पहले शहीद हो चुका था। उसके बाद कुटुंब के और वीर निकले। जाफ़र इमाम हसन के तीन बेटे, अब्बास के कई भाई, हज़रत अली के कई बेटे और सब बारी-बारी से लड़कर शहीद हुए। हज़रत अब्बास से हुसैन ने कहा—"मैं बहुत प्यासा हूँ।" संध्या हो गई थी। अब्बास पानी लाने चले, पर रास्ते में घिर गए। वह असाधारण वीर पुरुष थे। हाशिमी लोगों में इतनी वीरता से कोई नहीं लड़ा। एक हाथ कट गया, तो दूसरे हाथ से लड़े। जब वह हाथ भी कट गया तो ज़मीन पर गिर पड़े। उनके मरने का हुसैन को अत्यंत शोक हुआ। बोले—"अब मेरी कमर टूट गई।" अब्बास के बाद हुसैन के नौजवान बेटे अकबर मैदान में उतरे। हुसैन ने अपने हाथों उन्हें शस्त्रों से सुसज्जित किया। आह ! कितना हृदय-विदारक दृश्य है। बेटे ने खड़े होकर हुसैन से जाने की आज्ञा माँगी, पिता का वीर हृदय अधीर हो गया। हुसैन ने निराशा और शोक से अली अकबर को देखा, फिर आँखें नीची कर लीं और रो दिए। जब वह शहीद हो गया, तो शोक-विह्वल पिता ने जाकर लाश के मुंह पर अपना मुँह रख दिया, और कहा—"बेटा, तुम्हारे बाद अब जीवन को

धिक्कार है।" पुत्र-प्रेम की इहलोक की ममता के आदर्श पर, धर्म पर, गौरव पर कितनी बड़ी विजय है ?

अब हुसैन अकेले रह गए। केवल एक सात वर्ष का भतीजा और हसन का एक दुधमुँहाँ पोता बाक़ी था। हुसैन घोड़े पर सवार महिलाओं के ख़ीमों की ओर आए, और बोले—"बच्चे को लाओ, क्योंकि अब उसे कोई प्यार करने वाला न रहेगा।" स्त्रियों ने शिशु को उनकी गोद में रख दिया। वह अभी उसे प्यार कर रहे थे कि अकस्मात् एक तीर उसकी छाती में लगा, और वह हुसैन की गोदी में ही चल बसा। उन्होंने तुरंत तलवार से गढ़ा खोदा और बच्चे की लाश वहीं गाड़ दी। फिर अपने भतीजे को शत्रुओं के सामने खड़ा करके बोले—"ऐ अत्याचारियो, तुम्हारी निगाह में मैं पापी हूँ, पर इस बालक ने तो कोई अपराध नहीं किया, इसे क्यों प्यासों मारते हो ?" यह सुनकर किसी नर-पिशाच ने एक तीर चलाया, जो बालक के गले को छेदता हुआ हुसैन की बांह में गड़ गया। तीर के निकलते ही बालक की क्रीड़ाओं का अंत हो गया।

हुसैन अब रण-क्षेत्र की ओर चले। अब तक रण में जानेवालों को वह अपने ख़ीमे के द्वार तक पहुँचाने आया करते थे। उन्हें पहुँचानेवाला अब कोई मर्द न था। अब आपकी बहन जैनब ने आपको रोकर बिदा किया। हुसैन अपनी पुत्री सकीना को बहुत प्यार करते थे। जब वह रोने लगी, तो आपने उसे छाती से लगाया, और तत्काल शोक के आवेग में कई शेर पढ़े, जिनका एक-एक शब्द करुण-रस में डूबा हुआ है। उनके रण-क्षेत्र में आते ही शत्रुओं में खलबली पड़ गई, जैसे गीदड़ों में कोई शेर आ गया। हुसैन तलवार चलाने लगे, और इतनी वीरता से लड़े कि दुश्मनों के छक्के छूट गए। जिधर उनका घोड़ा बिजली की तरह कड़ककर जाता था, लोग काई की भाँति फट जाते थे। कोई सामने आने की हिम्मत न कर सकता था। इस भाँति सिपाहियों के दलों को चीरते-फाड़ते वह फ़रात के किनारे पहुँच गए, और पानी पीना चाहते थे कि किसी ने कपट भाव से कहा—"तुम यहाँ पानी पी रहे हो, उधर सेना स्त्रियों के ख़ीमों में घुसी जा रही है।" इतना सुनते ही लपककर इधर आए, तो ज्ञात हुआ कि किसी ने छल किया है। फिर मैदान में पहुँचे, और शत्रु-दल का संहार करने लगे। यहाँ तक कि

शिमर ने तीन सेनाओं को मिलाकर उन पर हमला करने की आज्ञा दी। इतना ही नहीं, बग़ल से और पीछे से भी उन पर तीरों की बौछार होने लगी। यहाँ तक कि ज़ख्मों से चूर होकर वह ज़मीन पर गिर पड़े, और शिमिर की आज्ञा से एक सैनिक ने उनका सिर काट लिया। कहते हैं, जैनब यह दृश्य देखने के लिए खीमे से बाहर निकल आई थी। उसी समय उमर-बिन-साद से उसका सामना हो गया। तब वह बोलीं—"क्यों उमर, हुसैन इस बेकसी से मारे जायँ, और तुम देखते रहो!" उमर का दिल भर आया, आँखें सजल हो गईं और कई बूँदें डाढ़ी पर गिर पड़ीं।

हुसैन की शहादत के बाद शत्रुओं ने उनकी लाश की जो दुर्गति की, वह इतिहास की अत्यंत लज्जाजनक घटना है। उससे यह भली भाँति प्रकट हो जाता है कि मानव-हृदय कितना नीचे गिर सकता है। गुरु गोविंदसिंह के बच्चे की कथा भी यहाँ मात हो जाती है, क्योंकि ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि किसी धर्म-संचालक के नवासों को अपने नाना के अनुयायियों के हाथों यह बुरा दिन देखना पड़ा हो।

□

कर्बला

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

हुसैन : हज़रत अली के बेटे और हज़रत मुहम्मद के नवासे। इन्हें फ़र्ज़ंदे रसूल, शब्बीर भी कहा गया है।

अब्बास : हज़रत हुसैन के चचेरे भाई

अली अकबर : हजरत हुसैन के बड़े बेटे

अली असग़र : हज़रत हुसैन के छोटे बेटे

मुसलिम : हज़रत हुसैन के चचेरे भाई

जुबेर : मक्का का एक रईस

वलीद : मदीना का नाज़िम

मरवान : वलीद का सहायक अधिकारी

हानी : कूफ़ा का एक रईस

यज़ीद : खलीफ़ा

जुहाक, शम्स, सरजोन रूमी : यजीद के मुसाहिब

जियाद : बसरे और कूफ़े का नाज़िम

साद : यजीद की सेना का सेनापति

अब्दुल्लाह, वहब, कसीर, मुख्तार, हुर, जहीर, हबीब आदि हजरत हुसैन के सहायक।

हज्जाज, हारिस, अशअस, कीस, बलाल आदि यज़ीद के सहायक।

साहसराय : अरब-निवासी एक हिंदू

मुआबिया : यज़ीद का पिता

स्त्री पात्र

जैनब :	हुसैन की बहन
शहरबानू :	हुसैन की स्त्री
सकीना :	हुसैन की बेटी
क़मर :	अब्दुल्लाह की स्त्री
तौआ :	कूफ़ा की वृद्धा स्त्री
हिंदा :	यजीद की बेगम
कासिद :	सिपाही, जल्लाद आदि

□

पहला अंक

पहला दृश्य

[समय—नौ बजे रात्रि। यज़ीद, ज़ुहाक, शम्स कई दरबारी बैठे हुए हैं। शराब की सुराही और प्याला रक्खा हुआ है।]

यज़ीद—नगर में मेरी ख़िलाफ़त का ढिंढोरा पीट दिया गया?

ज़ुहाक—कोई गली, कूचा, नाका, सड़क, मस्जिद, बाज़ार, ख़ानक़ाह ऐसा नहीं है, जहाँ हमारे ढिंढोरे की आवाज़ न पहुँची हो। यह आवाज़ वायु-मंडल को चीरती हुई हिजाज़, यमन, इराक़, मक्का-मदीना में गूँज रही है। और उसे सुनकर शत्रुओं के दिल दहल उठे हैं।

यज़ीद—नक्क़ार्ची को ख़िलअत दिया जाय।

ज़ुहाक—बहुत ख़ूब अमीर!

यज़ीद—मेरी बैयत लेने के लिए सबको हुक्म दे दिया गया?

ज़ुहाक—अमीर के हुक्म देने की ज़रूरत न थी। कल सूर्योदय से पहले सारा शाम बैयत लेने को हाज़िर हो जायगा।

यज़ीद—(**शराब का प्याला पीकर**) नबी ने शराब को हराम कहा है। यह इस अमृत-रस के साथ कितना घोर अन्याय है! उस समय के लिये यह निषेध सर्वथा उचित था, क्योंकि उन दिनों किसी को यह आनंद भोगने का अवकाश न था। पर अब वह हालत नहीं है। तख़्त पर बैठे हुए ख़लीफ़ा के लिए ऐसी नियामत हराम समझने से तो यह कहीं अच्छा है कि वह ख़लीफ़ा ही न रहे। क्यों ज़ुहाक, कोई क़ासिद मदीने भेजा गया?

ज़ुहाक—अमीर के हुक्म का इंतज़ार था।

यजीद—जुहाक, क़सम है अल्लाह की; मैं इस विलंब को कभी क्षमा नहीं कर सकता। फ़ौरन् क़ासिद भेजो, और वलीद को सख्त ताकीद लिखो कि वह हुसैन से मेरे नाम पर बैयत ले। अगर वह इनकार करें, तो उन्हें क़त्ल कर दे। इसमें ज़रा भी देर न होनी चाहिए।

जुहाक—या मौला! मेरी तो अर्ज़ है कि हुसन क़बूल भी कर लें, तो भी उनका ज़िंदा रहना अबूसिफ़ियान के खानदान के लिए उतना ही घातक है, जितना किसी सर्प को मारकर उसके बच्चे को पालना। हुसैन ज़रूर दावा करेंगे।

यजीद—जुहाक, क्या तुम समझते हो कि हुसैन कभी मेरी बैयत क़बूल कर सकते हैं? यह मुहाल है, असम्भव है। हुसैन कभी मेरी बैयत न लेगा, चाहे उसकी बोटियाँ काट-काटकर कौवों को खिला दी जायँ। अगर तक़दीर पलट सकती है, अगर दरिया का बहाव उलट सकता है, अगर समय की गति रुक सकती है, तो हुसैन भी मेरे नाम पर बैयत ले सकता है। मगर बैयत ले चुकने के बाद मुमकिन है, तक़दीर पलट जाय, दरिया का बहाव उलट जाय, समय की गति रुक जाय, पर हुसैन दावा नहीं कर सकता। उससे बैयत लेने का मतलब ही यही है कि उसे इस जहान से रुखसत कर दिया जाय। हुसैन ही मेरा दुश्मन है। मुझे और किसी का खौफ़ नहीं, मैं सारी दुनिया की फ़ौजों से नहीं डरता, मैं डरता हूँ इसी निहत्थे हुसैन से। (**प्याला भरकर पी जाता है।**) इसी हुसैन ने मेरी नींद, मेरा आराम हराम कर रक्खा है। अबूसिफ़ियान की सन्तान हाशिम के बेटों के सामने सिर न झुकाएगी। खिलाफ़त को मुल्लाओं के हाथों में फिर न जाने देंगे। इन्होंने छोटे-बड़े की तमीज़ उठा दी। हरएक दहकान समझता है कि मैं खिलाफ़त की मसनद पर बैठने लायक़ हूँ, और अमीरों के दस्तरख़ान पर खाने का मुझे हक़ है। मेरे मरहूम बाप ने इस भ्राँति को बहुत कुछ मिटाया, और आज खलीफ़ा शान व शौकत में दुनिया के किसी ताजदार से शर्मिंदा नहीं हो सकता। जूते सीनेवाले और रूखी रोटियाँ खाकर खुदा का शुक्रिया अदा करनेवाले खलीफ़ों के दिन गए।

जुहाक—ख़ुदा न करे, वह दिन फिर आए।

अब्दुलशम्स—इन हाशिमियों से हमें उस्मान के ख़ून का बदला लेना है।

यज़ीद—ख़ज़ाना खोल दो, और रियाया का दिल अपनी मुट्ठी में कर लो। रुपया खुदा के खौफ़ को दिल से दूर कर देता है। सारे शहर की दावत करो। कोइ मुज़ायक़ा नहीं, अगर ख़ज़ाना ख़ाली हो जाय। हरएक सिपाही को निहाल कर दो। और, अगर इतनी रियायतें करने पर भी कोई तुमसे खिंचा रहे, तो उसे क़त्ल कर दो। मुझे इस वक्त रुपए की ताक़त से धर्म और भक्ति को जीतना है।

[हिंदा का प्रवेश।]

यजीद—हिंदा, तुमने इस वक्त कैसे तकलीफ़ की?

हिंदा—या अमीर! मैं आपकी ख़िदमत में सिर्फ़ इसलिए हाज़िर हुई हूँ कि आपको इस इरादे से बाज़ रक्खूँ। आपको अमीर मुआविया की क़सम, अपने दीन को, अपनी नजात को, अपने ईमान को यों न ख़राब कीजिए। जिस नबी से आपने इस्लाम की रोशनी पाई, जिसकी ज़ात से आपको यह रुतबा मिला, जिसने आपकी आत्मा को अपने उपदेशों से जगाया, जिसने आपको अज्ञान के गढ़े से निकालकर आफ़ताब के पहलू में बिठा दिया, उसी खुदा के भेजे हुए बुज़ुर्ग के नवासे का ख़ून बहाने के लिए आप आमादा हैं!

यज़ीद—हिंदा, ख़ामोश रहो।

हिंदा—कैसे ख़ामोश रहूँ। आपको अपनी आंखों से जहन्नुम के ग़ार में गिरते देखकर ख़ामोश नहीं रह सकती। आपको मालूम नहीं कि रसूल की आत्मा स्वर्ग में बैठी हुई आपके इस अन्याय को देखकर आपको लानत दे रही होगी। और, हिसाब के दिन आप अपना मुँह उन्हें न दिखा सकेंगे। क्या आप नहीं जानते, आप अपनी नजात का दरवाजा बंद कर रहे हैं।

यज़ीद—हिंदा, ये मज़हब की बातें मज़हब के लिए हैं, दुनिया के लिये नहीं। मेरे दादा ने इस्लाम इसलिये क़बूल किया था कि इससे उन्हें दौलत और इज़्ज़त हाथ आती थी। नजात के लिए वह इस्लाम पर ईमान नहीं लाए थे, और न मैं ही इस्लाम को नजात का जामिन समझने को तैयार हूँ।

हिंदा—अमीर, खुदा के लिये यह कुवाक्य मुँह से न निकालो। आपको मालूम है, इस्लाम ने अरब से अधर्म के अँधेरे को कितनी असानी से दूर कर दिया। अकेले एक आदमी ने काफ़िरों का निशान मिटा दिया। क्या

ख़ुदा की मरज़ी बिना यह बात हो सकती थी ? कभी नहीं। तुम्हें मालूम है कि रसूल हुसैन को कितना प्यार करते थे ? हुसैन को वह कंधों पर बिठाते और अपनी नूरानी डाढ़ी को उनके हाथों से नुचवाते थे। जिस माथे को तुम अपने पैरों पर झुकाना चाहते हो, उनके रसूल बोसे लेते थे। हुसैन से दुश्मनी करके तुम अपने हक़ में काँटे बो रहे हो। ख़िलाफ़त उसकी है, जिसे पंच दे; यह किसी की मीरास नहीं है। तुम खुद मदीने जाओ, और देखो, क़ौम किस पर ख़िलाफ़त का बार रखती है। उसके हाथों पर बैयत लो। अगर क़ौम तुमको इस रुतबे पर बैठा दे, तो मदीने में रहकर शौक़ से इस्लाम की ख़िदमत करो। मगर ख़ुदा के वास्ते यह हंगामा न उठाओ।

[जाती है।]

यजीद—सरजून रूमी को बुला लो।

[सरजून आकर आदाब बजा लाता है।]

यज़ीद—आपने वालिद मरहूम की ख़िदमत जितनी वफ़ादारी के साथ की, उसके लिये मैं आपका शुक्रगुंजार हूँ। मगर इस वक्त मुझे आपकी पहले से कहीं ज्यादा ज़रूरत है। बसरे की सूबेदारी के लिये आप किसे तजवीज़ करते हैं?

रूमी—खुदा अमीर को सलामत रक्खे। मेरे ख़याल में अब्दुल्लाह बिन ज़ियाद से ज्यादा लायक़ आदमी आपको मुश्किल से मिलेगा। ज़ियाद ने अमीर मुआबिया की जो खिदमत की, वह मिटाई नही जा सकती। अब्दुल्लाह उसी बाप का बेटा और ख़ानदान का उतना ही सच्चा ग़ुलाम है। उसके पास फ़ौरन् क़ासिद भेज दीजिए।

यज़ीद—मुझे ज़ियाद के बेटे से शिकायत है कि उसने बसरेवालों के इरादों की मुझे इत्तिला नहीं दी। और, मुझे यक़ीन है कि बसरेवाले मुझसे बग़ावत कर जायँगे।

रूमी—या अमीर, आपका ज़ियाद पर शक करना बेजा है। आपके मददगार आपके पास ख़ुद-ब-ख़ुद न आएँगे। वह तलाश करने से, मिन्नत करने से, रियायत करने से आएँगे। आप-ही-आप वे लोग आएँगे, जो आपकी ज़ात से खुद फ़ायदा उठाना चाहते हैं। इस मंसब के लिये ज़ियाद से बेहतर आदमी आपको न मिलेगा।

यज़ीद—सोचूँगा। (**शराब का प्याला उठाता है।**) ज़ुहाक! कोई गीत तो सुनाओ। जिसकी मिठास उस फ़िक्र को मिटा दे, जो इस वक्त मेरे दिल और जिगर पर पत्थर की चट्टान की तरह रक्खी हुई है।

ज़ुहाक—जैसा हुक्म।

[दफ़बजाकर गाता है।]

गाना

सफ़ी थक के बैठे दवा करनेवाले,
उठे हाथ उठाकर दुआ करनेवाले।
वफ़ा पर हैं मरते वफ़ा करनेवाले,
जफ़ा कर रहे हैं जफ़ा करनेवाले।
बचाकर चले खाक से अपना दामन,
लहद पर जो गुज़रीं हवा करने वाले।
किसी बात पर भी तो क़ायम नहीं है,
ये ज़ालिम, सितमगर, दग़ा करनेवाले।
तअज्जुब नहीं है, जो अब जह्र दे दें,
ये ज़िच हो गए हैं दबा करनेवाले।
समझ लें कि दुश्वार है राज़दारी,
किसी का किसी से गिला करनेवाले।
अभी है बुतों को ख़ुदाई का दावा,
खुदा जाने, हैं और क्या करनेवाले।

□
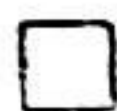
दूसरा दृश्य

[रात का समय—मदीने का गवर्नर वलीद अपने दरबार में बैठा हुआ है।]

वलीद—(**स्वगत**) मरवान कितना ख़ुदग़रज आदमी है। मेरा मातहत होकर भी मुझ पर रोब जमाना चाहता है। उसकी मरजी पर चलता, तो आज सारा मदीना मेरा दुश्मन होता। उसने रसूल के ख़ानदान से हमेशा दुश्मनी की है।

[क़ासिद का प्रवेश।]

क़ासिद—या अमीर, यह ख़लीफ़ा यज़ीद का ख़त है।

वलीद—(**घबराकर**) ख़लीफ़ा यज़ीद ! अमीर मुआबिया को क्या हुआ ?

क़ासिद—आपको पूरी क़ैफियत इस ख़त से मालूम होगी।

[ख़त वलीद के हाथ में देता है।]

वलीद—(**ख़त पढ़कर**) अमीर मुआबिया की रूह को ख़ुदा जन्नत में दाख़िल करे। मगर समझ में नहीं आता कि यज़ीद क्योंकर ख़लीफ़ा हुए। क़ौम के नेताओं की कोई मजलिस नहीं हुई, और किसी ने उनके हाथ पर बैयत नहीं ली। मदीने-भर में यह ख़बर फैलेगी, तो ग़ज़ब हो जाएगा। हुसैन यज़ीद को कभी ख़लीफ़ा न मानेंगे।

क़ासिद—(**दूसरा ख़त देकर**) हुज़ूर, इसे भी देख लें।

वलीद—(**ख़त लेकर पढ़ता है।**) "वलीद, हाकिम मदीना को ताक़ीद की जाती है कि इस ख़त को देखते ही हुसैन मेरे नाम पर बैयत न लें, तो उन्हें क़त्ल कर दें, और उनका सिर मेरे पास भेज दें।"

[सर्द साँस लेकर फ़र्श पर लेट जाता है।]

क़ासिद—मुझे क्या हुक्म होता है ?

वलीद—तुम जाकर बाहर ठहरो। (**दिल में**) ख़ुदा वह दिन न लाए कि मुझे रसूल के नवासे के साथ यह घृणित व्यवहार करना पड़े। वलीद इतना बेदीन नहीं है। ख़ुदा रसूल को इतना नहीं भूला है। मेरे हाथ गिर पड़ें इसके पहले कि मेरी तलवार हुसैन की गरदन पर पड़े। काश, मुझे मालूम होता कि अमीर मुआबिया की मौत इतनी नज़दीक है, और उसकी आँखे बंद होते ही मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा, तो पहले ही इस्तीफ़ा देकर चला जाता। मरवान की सूरत देखने को जी नहीं चाहता, मगर इस वक्त उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ काम करना अपनी मौत को बुलाना है। वह रत्ती-रत्ती ख़बर यज़ीद के पास भेजेगा। उसके सामने मेरी कुछ भी न सुनी जायगी। ऐसा अफ़सर, जो मातहतों से डरे, मातहत से भी बदतर है। जिस वज़ीर का ग़ुलाम बादशाह का विश्वास-पात्र हो, उसके लिए जंगल में ऊँट चराना उससे हज़ार दर्जे बेहतर है कि वह वज़ीर की मसनद पर बैठे।

[ग़ुलाम को बुलाता है।]

ग़ुलाम—अमीर क्या हुक्म फ़र्माते हैं ?

वलीद—जाकर मरवान को बुला ला।

ग़ुलाम—जो हुक्म।

[जाता है।]

वलीद—(**दिल में**) हुसैन कितना नेक आदमी है। उसकी ज़बान से कभी किसी की बुराई नहीं सुनी। उसने कभी किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाया। उससे मैं क्योंकर बैयत लूंगा।

[मरवान का प्रवेश।]

मरवान—इतनी रात गए मुझे आप न बुलाया करें। मेरी जान इतनी सस्ती नहीं है कि बाग़ियों को इस पर छिपकर हमला करने का मौक़ा दिया जाय।

वलीद—तुम्हारा बर्ताव ही क्यों ऐसा हो कि तुम्हारे ऊपर किसी क़ातिल की तलवार उठे। अभी-अभी क़ासिद मुआबिया की मौत की खबर लाया है, और यज़ीद का यह ख़त भी आया है। मुझे तुमसे इसकी बाबत सलाह लेनी है।

[ख़त देता है।]

मरवान—(**ख़त पढ़कर**) आह ! मुआबिया, तुमने बेवक्त वफ़ात पाई। तुम्हारा नाम तारीख़ में हमेशा रौशन रहेगा। तुम्हारी नेकियों को याद करके लोग बहुत दिनों तक रोएँगे। यज़ीद ने ख़िलाफ़त अपने हाथ में ले ली, यह बहुत ही मुनासिब हुआ। मेरे ख़याल में हुसैन को इसी वक्त बुलाना चाहिए।

वलीद—तुम्हारे ख़याल में बैयत ले लेंगे ?

मरवान—ग़ैरमुमकिन। उनसे बैयत लेना उन्हें क़त्ल करने को कहना है। मगर अभी मुआबिया के मरने की ख़बर मशहूर न होनी चाहिए।

वलीद—इस मामले पर ग़ौर करो।

मरवान—ग़ौर की ज़रूरत नहीं, मैं आपकी जगह होता, तो बैयत का ज़िक्र ही न करता। फ़ौरन् क़त्ल कर डालता। हुसैन के ज़िंदा रहते हुए यज़ीद को कभी इत्मीनान नहीं हो सकता। यह भी याद रखिए कि मुआबिया

के मरने की ख़बर फैल गई, तो न हमारी जान सलामत रहेगी, न आपकी। हुसैन से आपका कितना ही दोस्ताना हो, लेकिन वही हुसैन आपका जानी दुश्मन हो जायगा।

वलीद—तुम्हें उम्मीद है कि वह इस वक्त यहाँ आएँगे। उन्हें शुबहा हो जायगा।

मरवान—आपके ऊपर हुसैन को इतना भरोसा है, तो इस वक्त भी चले आएँगे। मगर आपकी तलवार तेज और ख़ून गर्म रहना चाहिए। यही कारगुजारी का मौक़ा है। अगर हम लोगों ने इस मौक़े पर यज़ीद की मदद की, तो कोई शक नहीं कि हमारे इक़बाल का सितारा रोशन हो जायगा।

वलीद—मरवान, मैं यज़ीद का गुलाम नहीं, ख़लीफ़ा का नौकर हूँ, और ख़लीफ़ा वही है, जिसे क़ौम चुनकर मसनद पर बिठा दे। मैं अपने दीन और ईमान का खून करने से यह कहीं बेहतर समझता हूँ कि क़ुरान पाक की नक़ल करके ज़िंदगी बसर करूँ।

मारवान—या अमीर, मैं आपको यज़ीद के गुस्से से होशियार किए देता हूँ। मेरी और आपकी भलाई इसी में है कि यजीद का हुक्म बजा लाएँ। हमारा काम उनकी बंदगी करना है, आप दुविधा में न पड़ें। इसी वक्त हुसैन को बुला भेजें।

[ग़ुलाम को पुकारता है।]

गुलाम—या अमीर, क्या हुक्म है?

मरवान—जाकर हुसैन बिन अली को बुला ला। दौड़ते जाना, और कहना कि अमीर आपके इंतजार में बैठे हैं।

[गुलाम चला जाता है।]

□

तीसरा दृश्य

[रात का वक्त—हुसेन और अब्बास मस्जिद में बैठे बातें कर रहे हैं। एक दीपक जल रहा है।]

हुसैन—मैं जब ख़याल करता हूँ कि नाना मरहूम नें तनहा बड़-बड़े

सरकश बादशाहों को पस्त कर दिया, और इतनी शानदार खिलाफ़त क़ायम कर दी, तो मुझे यक़ीन हो जाता है कि उन पर ख़ुदा का साया था। ख़ुदा की मदद के बग़ैर कोई इंसान यह काम न कर सकता था। सिकंदर की बादशाहत उसके मरते ही मिट गई, क़ैसर की बादशाहत उसकी जिंदगी के बाद बहुत थोड़े दिनों तक क़ायम रही, उन पर ख़ुदा का साया न था। वह अपनी हवस की धुन में क़ौमों को फ़तह करते हैं। नाना ने इस्लाम के लिए झंडा बुलंद किया, इसी से वह कामयाब हुए।

अब्बास—इसमें किसको शक हो सकता है कि वह ख़ुदा के भेजे हुए थे। ख़ुदा की पनाह, जिस वक्त हजरत ने इस्लाम की आवाज़ उठाई थी, इस मुल्क में अज्ञान का कितना गहरा अंधकार छाया हुआ था। वह ख़ुदा की ही आवाज़ थी, जो उनके दिल में बैठी हुई बोल रही थी, जो कानों में पड़ते ही दिलों में उतर जाती थी। दूसरे मज़हबवाले कहते हैं, इस्लाम ने तलवार की ताक़त से अपना प्रचार किया। काश, उन्होंने हज़रत की आवाज़ सुनी होती! मेरा तो दावा है कि क़ुरान में एक आयत भी ऐसी नहीं है, जिसकी मंशा तलवार से इस्लाम का फैलाना हो।

हुसैन—मगर कितने अफ़सोस की बात है कि अभी से क़ौम ने उनकी नसीहतों को भूलना शुरू किया, और वह नापाक, जो उनकी मसनद पर बैठा हुआ है, आज खुले बंदों शराब पीता है।

[ग़ुलाम का प्रवेश]

ग़ुलाम—नबी के बेटे पर खुदा की रहमत हो। अमीर ने आपको किसी बहुत ज़रूरी काम के लिये तलब किया है।

अब्बास—यह वक्त वलीद के दरबार का नहीं है।

ग़ुलाम—हुजूर, कोइ खास काम है।

हुसैन—अच्छा, तू जा। हम घर जाने लगेंगे, तो उधर से होते हुए जायँगे।

[ग़ुलाम चला जाता है]

अब्बास—भाई जान! मुझे तो इस बेवक्त की तलबी से घबराहट हो गई है। यह वक्त वलीद के इजलास का नहीं है। मुझे दाल में कुछ काला नजर आता है। आप कुछ क़यास कर सकते हैं कि किसलिये बुलाया होगा।

हुसैन—मेरा दिल तो गवाही देता है कि मुआविए ने वफ़ात पाई।

अब्बास—तो वलीद ने आपको इसलिये बुलाया होगा कि आपसे यज़ीद की बैयत ले।

हुसैन—मैं यज़ीद की बैयत क्यों करने लगा। मुआबिया ने भैया इमाम हसन के साथ क़सम खाकर शर्त की थी कि वह अपने मरने के बाद अपनी औलाद में किसी को खलीफ़ा न बनावेगा। हसन के बाद खिलाफ़त पर मेरा हक़ है। अगर मुआबिया मर गया है,और यज़ीद को ख़लीफ़ा बनाया गया है, तो उसने मेरे साथ और इस्लाम के साथ दग़ा की है। यज़ीद शराबी है, बदकार है, झूठा है, बेदीन है, कुत्तों को गोद में लेकर बैठता है। मेरी जान भी जाय , तो क्या, पर मैं उसकी बैयत न अख़्तियार करूँगा।

अब्बास—मामला नाज़ुक है। यज़ीद की जात से कोई बात बईद नहीं। काश, हमें मुआबिया की बीमारी और मौत की ख़बर पहले ही मिल गई होती !

[गुलाम का फिर प्रवेश]

गुलाम—हुज़ूर तशरीफ़ नहीं लाए, अमीर आपके इंतज़ार में बैठे हुए हैं।

हुसैन—तुफ है तुझ पर ! तू वहां पर गया भी कि रास्ते से ही लौट आया ? चल, मैं अभी आता हूँ। तू फिर न आना।

गुलाम—हुज़ूर, अमीर से जाकर जब मैंने कहा कि वह अभी आते हैं, तो वह चुप हो गए, लेकिन मरवान ने कहा कि वह कभी न आएँगे, आपसे दावा कर रहे हैं। इस पर अमीर उनसे बहुत नाराज़ हुए, और कहा—हुसैन क़ौल के पक्के हैं, जो कहते हैं, उसे पूरा करते हैं।

हुसैन—वलीद शरीफ़ आदमी है। तुम जाओ, हम अभी आते हैं।

[गुलाम चला जाता है]

अब्बास—आप जाएँगे ?

हुसैन—जब तक कोई सबब न हो, किसी की नीयत पर शुबहा करना मुनासिब नहीं।

अब्बास—भैया, मेरी जान आप पर फ़िदा हो। मुझे डर है कि कहीं वह आपको क़ैद न कर ले।

हुसैन—वलीद पर मुझे पूरा एतबार है। आबूसिफ़ियान की औलाद होने पर भी वह शरीफ़ और दीनदार है।

अब्बास—आप एतबार करें, लेकिन मैं आपको वहां जाने की हरगिज सलाह न दूँगा। इस सन्नाटे में अगर उसने कोई दग़ा की, तो कोई फ़र्याद भी न सुनेगा। आपको मालूम है कि मरवान कितना दग़ाबाज और हराम-कार है। मैं उसके साए से भी भागता हूँ। जब तक आप मुझे यह इतमीनान न दिला दीजिएगा कि दुश्मन यहाँ आपका बाल बाँका न कर सकेगा, मैं दामन न छोड़ूँगा।

हुसैन—अब्बास, तुम मेरी तरफ से बेफ़िक्र रहो, मुझे हक़ पर इतना यक़ीन है, और मुझमें हक़ की इतनी ताक़त है कि मेरी बात और वलीद तो क्या, यज़ीद की सारी फ़ौज भी मुझे कुछ नुकसान नहीं पहुँचा सकती। यक़ीन है कि मेरी एक आवाज़ पर हज़ारों ख़ुदा के बंदे और रसूल के नाम पर मिटने वाले दौड़ पड़ेंगे। और अगर कोई मेरी आवाज़ न सुने, तो भी मेरे बाजओं में इतना बल है कि मैं अकेले उनमें से एक सौ को ज़मीन पर सुला सकता हूँ। हैदर का बेटा ऐसे गीदड़ों से नहीं डर सकता। आओ, ज़रा नाना की क़ब्र की ज़ियारत कर लें।

[दोनों हज़रत मुहम्मद की क़ब्र के सामने खड़े हो जाते हैं, हाथ बाँधकर दुआ पढ़ते हैं, और मसजिद से निकलकर घर की तरफ़ चलते हैं]

□

चौथा दृश्य

[समय—रात। वलीद का दरबार। वलीद और मरवान बैठे हुए हैं]

मरवान—अब तक नहीं आए! मैंने आपसे कहा कि वह हरगिज़ न आएँगे।

वलीद—आएँगे, और जरूर आएँगे। मुझे उनके क़ौल पर पूरा भरोसा है।

मरवान—कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि उन्हें अमीर की वफ़ात की ख़बर लग गई हो, और वह अपने साथियों को जमा करके हमसे जंग करने आ रहे हों।

[हुसैन का प्रवेश। वलीद सम्मान के भाव से खड़ा हो जाता है, और दरवाज़े पर आकर हाथ मिलाता है। मरवान अपनी जगह पर बैठा रहता है]

हुसैन—ख़ुदा की तुम पर रहमत हो। (मरवान को बैठे देखकर) मेल फूट से और प्रेम द्वेष से बहुत अच्छा है। मुझे क्यों याद किया है?

वलीद—इस तकलीफ़ के लिए माफ़ कीजिए, आपको यह सुनकर अफ़सोस होगा कि अमीर मुआबिया ने वफ़ात पाई।

मरवान—और ख़लीफ़ा यज़ीद ने हुक्म दिया है कि आपसे उनके नाम की बैयत ली जाय।

हुसैन—मेरे नज़दीक यह मुनासिब नहीं है कि मुझ-जैसा आदमी छुपे-छुपे बैयत ले। यह न मेरे लिए मुनासिब है, और न यज़ीद के लिए काफ़ी। बेहतर है, आप एक आम जलसा करें, और शहर के सब रईसों और आलिमों को बुलाकर यज़ीद की बैयत का सवाल पेश करें। मैं भी उन लोगों के साथ रहूँगा, और उस वक्त सबके पहले जवाब देनेवाला मैं हूँगा।

वलीद—मुझे आपकी सलाह माक़ूल मालूम होती है। बेशक, आपके बैयत लेने से वह नतीजा न निकलेगा, जो यज़ीद की मंशा है। कोई कहेगा कि आपने बैयत ली, और कोई कहेगा कि नहीं। और, इसकी तसदीक़ करने में बहुत वक्त लगेगा। तो जलसा करूँ?

मरवान—अमीर, मैं आपको ख़बरदार किए देता हूँ कि इनकी बातों में न आइए। बग़ैर बैयत लिए इन्हें यहाँ से न जाने दीजिए, वरना इनसे उस वक्त तक बैयत न ले सकेंगे, जब तक ख़ून की नदी न बहेगी। यह चिनगारी की तरह उड़कर सारी ख़िलाफ़त में आग लगा देंगे।

वलीद—मरवान, मैं तुमसे मिन्नत करता हूँ, चुप रहो।

मरवान—हुसैन, मैं ख़ुदा को गवाह करके कहता हूँ कि मैं आपका दुश्मन नहीं हूँ। मेरी दोस्ताना सलाह यह है कि आप यज़ीद की बैयत मंज़ूर कर लीजिए, ताकि आपको कोई नुक़सान न पहुँचे। आपस का फ़साद मिट जाय, और हज़ारों ख़ुदा के बंदों की जानें बच जायँ। ख़लीफ़ा आपके बैयत की ख़बर सुनकर बेहद ख़ुश होंगे, और आपके साथ ऐसे सलूक करेंगे कि ख़िलाफ़त में कोई आदमी आपकी बराबरी न कर सकेगा। मैं आपको यक़ीन

दिलाता हूँ कि आपकी जागीरें और वज़ीफ़े दोचंद करा दूँगा, और आप मदीने में इज़्ज़त के साथ रसूल के क़दमों में लगे हुए दीन और दुनिया में सुर्ख़रू होकर ज़िंदगी बसर करेंगे।

हुसैन—बस करो मरवान, मैं तुम्हारी दोस्ताना सलाह सुनने के लिए नहीं आया हूँ। तुमने कभी अपनी दोस्ती का सबूत नहीं दिया, और इस मौक़े पर मैं तुम्हारी सलाह को दोस्ताना न समझ कर दग़ा समझूँ, तो मेरा दिल और मेरा ख़ुदा मुझसे नाख़ुश न होगा। आज इस्लाम इतना कमजोर हो गया है कि रसूल का बेटा यज़ीद की बैयत लेने के लिए मजबूर हो!

मरवान—उनकी बैयत से आपको क्या एतराज है?

हुसैन—इसलिए कि वह शराबी, झूठा, दग़ाबाज़, हरामकार और ज़ालिम है। वह दीन के आलिमों की तौहीन करता है। जहाँ जाता है, एक गधे पर एक बंदर को आलिमों के कपड़े पहनाकर साथ ले जाता है। मैं ऐसे आदमी की बैयत अख़्तियार नहीं कर सकता।

मरवान—या अमीर, आप इनसे बैयत लेंगे या नहीं?

हुसैन—मेरी बैयत किसी के अख़्तियार में नही है।

मरवान—क़सम खुदा की, आप बैयत क़बूल किए बिना नहीं जा सकते। मैं तुम्हें यहीं क़त्ल कर डालूँगा।

[तलवार खींचकर बढ़ता है।]

हुसैन—(**डपटकर**) तू मुझे क़त्ल करेगा, तुझमें इतनी हिम्मत नहीं है! दूर रह। एक क़दम भी आगे रक्खा, तो तेरा नापाक सिर ज़मीन पर होगा।

[अब्बास तीस सशस्त्र आदमियों के साथ तलवार खींचे हुए घुस आते हैं।]

अब्बास—(**मरवान की तरफ झपटकर**) मलऊन, यह ले; तेरे लिए दोज़ख़ का दरवाज़ा खुला हुआ है।

हुसैन—(**मरवान के सामने खड़े होकर**) अब्बास, तलवार म्यान में करो। मेरी लड़ाई मरवान से नहीं, यज़ीद से है। मैं खुश हूँ कि यह अपने आक़ा का ऐसा वफ़ादार ख़ादिम है।

अब्बास—इस मरदूद की इतनी हिम्मत कि आपके मुबारक जिस्म पर

मुहम्मद—हुसैन, तुमने क्या फ़ैसला किया ?

हुसैन—ख़ुदा की मरज़ी है कि मैं क़त्ल किया जाऊँ।

मुहम्मद—ख़ुदा की मरज़ी ख़ुदा ही जानता है। मेरी सलाह तो यह है कि तुम किसी दूसरे शहर चले जाओ, और वहाँ से अपने क़ासिदों को उस जवार में भेजो। अगर लोग तुम्हारी बैयत मंज़ूर कर लें, तो ख़ुदा का शुक्र करना, वरना यों भी तुम्हारी आबरू क़ायम रहेगी। मुझे ख़ौफ़ यही है कि कहीं तुम ऐसी जगह न जा फँसो, जहाँ कुछ लोग तुम्हारे दोस्त हों, और कुछ तुम्हारे दुश्मन। कोई चोट बग़ली घूँसों की तरह नहीं होती, कोई साँप इतना क़ातिल नहीं होता, जितना आस्तीन का। कोई कान इतना तेज़ नहीं होता, जितना दीवार का। और कोई दुश्मन इतना ख़ौफ़नाक नहीं होता, जितनी दग़ा। इससे हमेशा बचते रहना।

हुसैन—आप मुझे कहाँ जाने की सलाह देते हैं ?

मुहम्मद—मेरे ख़याल में मक्का से बेहतर कोई जगह नहीं है। अगर क़ौम ने तुम्हारी बैयत मंज़ूर की, तो पूछना ही क्या ? वरना पहाड़ियों की घाटियाँ तुम्हारे लिए क़िलों का काम देंगी, और थोड़े से मददगारों के साथ तुम आज़ादी से ज़िन्दगी बसर करोगे। ख़ुदा चाहेगा तो लोग बहुत जल्द यज़ीद से बेज़ार होकर तुम्हारी पनाह में आएँगे।

हुसैन—अजीजों को यहाँ छोड़ दूँ ?

मुहम्मद—हरगिज नहीं। सबको अपने साथ ले जाओ।

हुसैन—यहाँ की हालत से मुझे जल्द-जल्द इत्तिला देते रहिएगा।

मुहम्मद—इसका इतमीनान रक्खो।

[मुहम्मद हुसैन से गले मिलकर चले जाते हैं।]

अब्बास—भैया, अब तो घर चलिए, क्या सारी रात जागते रहिएगा।

हुसैन—अब्बास, मैं पहले ही कह चुका कि लौटकर घर न जाऊँगा।

अब्बास—अगर आपकी इजाज़त हो, तो मैं भी कुछ अर्ज करूँ। आप मुझे अपना सच्चा दोस्त समझते हैं या नहीं ?

हुसैन—ख़ुदा पाक की क़सम, तुमसे ज़्यादा सच्चा दोस्त दुनिया में नहीं है।

अब्बास—क्यों न आप इस वक्त यज़ीद की बैयत मंजूर कर लीजिए ? ख़ुदा कारसाज़ है, मुमकिन है, थोड़े दिनों में यजीद खुद ही मर जाय, तो आपको खिलाफ़त आप-ही-आप मिल जाएगी। जिस तरह आपने मुआबिया के ज़माने में सब्र किया, उसी तरह यज़ीद के ज़माने को भी सब्र के साथ काट दीजिए। यह भी मुमकिन है कि थोड़े ही दिनों में यज़ीद के जुल्म से तंग आकर लोग बग़ाबत कर बैठे, और आपके लिए मौका निकल आए। सब्र सारी मुश्किलों को आसान कर देता है।

हुसैन—अब्बास, यह क्या कहते हो ? अगर मैं खौफ़ से यजीद की बैयत क़बूल कर लूँ, तो इस्लाम का मुझसे बड़ा दुश्मन और कोई न होगा। मैं रसूल को, वालिद को, भैया हसन को क्या मुँह दिखाऊँगा। अब्बाजान ने शहीद होना क़बूल किया, पर मुआबिया की बैयत न मंज़ूर की। भैया ने भी मुआबिया की बैयत को हराम समझा, तो मैं क्यों खानदान में दाग़ लगाऊँ? इज्जत की मौत बेइज्जती की ज़िंदगी से कहीं अच्छी है।

अब्बास—**(विस्मित होकर)** खुदा की क़सम, यह हुसैन की आवाज़ नहीं, रसूल की आवाज़ है, और ये बातें हुसैन की नहीं, अली की हैं। भैया! आपको ख़ुदा ने अक्ल दी है, मैं तो आपका खादिम हूँ, मेरी बातें आपको नागवार हुई हों, तो माफ़ करना।

हुसैन—(अब्बास को छाती से लगाकर) अब्बास, मेरा ख़ुदा मुझसे नाराज़ हो जाय, अगर मैं तुमसे ज़रा भी मलाल रक्खूं। तुमने मुझे जो सलाह दी, वह मेरी भलाई के लिए दी। इसमें मुझे ज़रा भी शक नहीं। मगर तुम इस मुग़ालते में हो कि यज़ीद के दिल की आग मेरे बैयत ही से ठंडी हो जाएगी, हालांकि यज़ीद ने मुझे क़त्ल करने का यह हीला निकाला है। अगर वह जानता कि मैं बैयत ले लूंगा, तो वह कोई और तदबीर सोचता।

अब्बास—अगर उसकी यह नीयत है, तो कलाम पाक की क़सम, मैं पसीने की जगह अपना ख़ून बहा दूंगा, और आपसे आगे बढ़कर इतनी तलवारें चलाऊंगा कि मेरे दोनों हाथ कटकर गिर जाएँ।

[जैनब, शहरबानू और घर के अन्य लोग आते है।]

जैनब—अब्बास, बातें न करो। **(हुसैन से)** भैया, मैं आपके पैरों पड़ती

हाथ उठाए ! क़सम खुदा की, इसका ख़ून पी जाऊँगा।

हुसैन—मेरे देखते ही नहीं, मुसलमान पर मुसलमान का ख़ून हराम है।

वलीद—(**हुसैन से**) मैं सख्त नादिम हूँ कि मेरे सामने आपकी तौहीन हुई। खुदा इसका अजाब मुझे दे।

हुसैन—वलीद, मेरी तक़दीर में अभी बड़ी-बड़ी सख्तियाँ झेलनी बदी हैं। यह उस मार्के की तमहीद है, जो पेश आने वाला है। हम और तुम शायद फिर न मिलें, इसलिए रुखसत। मैं तुम्हारी मुरौवत और भलमनसी को कभी न भूलूँगा। मेरी तुमसे सिर्फ़ इतनी अर्ज है कि मेरे यहाँ से जाने में ज़रा भी रोक-टोक न करना।

[दोनों गले मिलकर विदा होते हैं। अब्बास और तीसों आदमी बाहर चले जाते है।]

मरवान—वलीद, तुम्हारी बदौलत मुझे यह ज़िल्लत हुई।

वलीद—तुम नाशुक्रे हो। मेरी बदौलत तुम्हारी जान बच गई; वरना तुम्हारी लाश फ़र्श पर तड़पती नज़र आती।

मरवान—तुमने यज़ीद की ख़िलाफ़त यज़ीद से छीनकर हुसैन को दे दीं। तुमने आबूसिफ़ियान की औलाद होकर उसके ख़ानदान से दुश्मनी की। तुम ख़ुदा की दरगाह में उस क़त्ल और ख़ून के ज़िम्मेदार होगे, जो आज की ग़फ़लत या नरमी का नतीजा होगा।

[मरवान चला जाता है।]

□

पाँचवाँ दृश्य

[समय आधी रात। हुसैन और अब्बास मसजिद के सहन में बैठे हुए हैं।]

अब्बास—बड़ी ख़ैरियत हुई, वरना मलऊन ने दुश्मनों का काम ही तमाम कर दिया था।

हुसैन—तुम लोगों की जतन बड़े मौके पर काम आई। मुझे गुमान न

था कि ये सब मेरे साथ इतनी दग़ा करेंगे। मगर यह जो कुछ हुआ, आगे चलकर इससे भी ज्यादा होगा। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि हमें चैन से बैठना भी नसीब न होगा। मेरा भी वही हाल होनेवाला, है, जो भैया इमाम हसन का हुआ।

अब्बास—ख़ुदा न करे, ख़ुदा न करे।

हुसैन—अब मदीने में हम लोगों का रहना काँटे पर पांव रखना है। भैया, शायद नबियों की औलाद शहीद होने ही के लिए पैदा होती है। शायद नबियों को भी होनहार की ख़बर नहीं होती; नहीं तो क्या नाना की मसनद पर वे लोग बैठते, जो इस्लाम के दुश्मन हैं, और जिन्होंने सिर्फ़ अपनी ग़रज़ पूरी करने के लिए इस्लाम का स्वाँग भरा है। मैं रसूल ही से पूछता हूँ कि वह मुझे क्या हुक्म देते हैं? मदीने में ही रहूँ या कहीं और चला जाऊँ? (**हज़रत मुहम्मद की क़ब्र पर जाकर**) ऐ ख़ुदा, यह तेरे रसूल मुहम्मद की खाक है, और मैं उनकी बेटी का बेटा हूँ। तू मेरे दिल का हाल जानता है। मैंने तेरी और तेरे रसूल की मर्ज़ी पर हमेशा चलने की कोशिश की है। मुझ पर रहम कर और उस पाक नबी के नाते, जो इस क़ब्र में सोया हुआ है, मुझे हिदायत कर कि इस वक्त मैं क्या करूँ?

[रोते हैं, और क़ब्र पर सिर रखकर बैठ जाते हैं। एक क्षण में चौंककर उठ बैठते हैं।]

अब्बास—भैया, अब यहाँ से चलो। घर के लोग घबरा रहे होंगे।

हुसैन—नहीं अब्बास, अब मैं लौटकर घर न जाऊँगा। अभी मैंने ख्वाब देखा कि नाना आए हैं, और मुझे छाती से लगाकर कहते हैं—"बहुत थोड़े दिनों में तू ऐसे आदमियों के हाथों में शहीद होगा, जो अपने को मुसलमान कहते होंगे, और मुसलमान न होंगे। मैंने तेरी शहादत के लिए कर्बला का मैदान चुना है, उस वक्त तू प्यासा होगा, पर तेरे दुश्मन तुझे एक बूंद पानी भी न देंगे। तेरे लिए यहाँ बहुत ऊँचा रुतबा रखा गया है, पर वह रुतबा शहादत के बग़ैर हासिल नहीं हो सकता।" यह कहकर नाना ग़ायब हो गए।

अब्बास—(**रोकर**) भैया, हाय भैया, यह ख्वाब या पेशीनगोई?

[मुहम्मद हँफ़िया का प्रवेश]

हूँ। आप यह इरादा तर्क कर दीजिए, और मदीने में रसूल की कब्र से लगे हुए ज़िंदगी बसर कीजिए, और अपनी गर्दन पर इस्लाम की तबाही का इल्ज़ाम न लीजिए।

हुसैन—जैनब, ऐसी बातों पर तुफ़ है! जब तक ज़मीन और आसमान क़ायम है, मैं यज़ीद की बैयत नहीं मंजूर कर सकता। क्या तुम समझती हो कि मैं ग़लती पर हूँ?

जैनब—नहीं भैया, आप ग़लती पर नहीं हैं। अल्लाहताला अपने रसूल के बेटे को ग़लत रास्ते पर नहीं ले जा सकता, मगर आप जानते हैं कि जमाने का रंग बदला हुआ है। ऐसा न हो, लोग आपके ख़िलाफ़ उठ खड़े हों।

हुसैन—बहन, इंसान सारी दुनिया के ताने बरदाश्त कर सकता है, पर अपने ईमान का नहीं। अगर तुम्हारा यह ख़याल है कि मेरे बैयत न लेने से इस्लाम में तफ़र्क़ा पड़ जाएगा, तो यह समझ लो कि इतिफ़ाक़ कितनी ही अच्छी चीज़ हो, लेकिन रास्ती उससे कहीं अच्छी है। रास्ती को छोड़कर मेल को क़ायम रखना वैसा ही है, जैसे जान निकल जाने के बाद ज़िस्म क़ायम रखना। रास्ती क़ौम की जान है, उसे छोड़कर कोई क़ौम बहुत दिनों तक ज़िंदा नहीं रह सकती। इस बारे में मैं अपनी राय क़ायम कर चुका, अब तुम लोग मुझे रुख़सत करो। जिस तरह मेरी बैयत से इस्लाम का बक़ार मिट जायगा, उसी तरह मेरी शहादत से उसका वक़ार क़ायम रहेगा। मैं इस्लाम की हुरमत पर निसार हो जाऊँगा।

शहरबानू—(रोकर) क्या आप हमें अपने क़दमों से जुदा करना चाहते हैं?

अली अकबर—अब्बाजान, अगर शहीद ही होना है, तो हम भी वह दर्जा क्यों न हासिल करें?

मुसलिम—या अमीर, हम आपके क़दमों पर निसार होना ही अपनी जिन्दगी का हासिल समझते हैं। आप न ले जायँगे तो हम जबरन् आपके साथ चलेंगे।

अली असग़र—अब्बा, मैं आपके पीछे खड़े होकर नमाज़ पढ़ता था। आप यहाँ छोड़ देंगे, तो मैं नमाज़ कैसे पढ़ूंगा?

जैनब—भैया, क्या कोई उम्मीद नहीं ? क्या मदीने में रसूल के बेटे पर हाथ रखनेवाला, रसूल की बेटियों की हुरमत पर जान देनेवाला, हक़ पर सिर कटानेवाला कोई नहीं है ? इसी शहर से वह नूर फैला, जिससे सारा जहान रोशन हो गया। क्या वह हक़ की रोशनी इतनी जल्द ग़ायब हो गई? आप यहीं से हिजाज़ और यमन की तरफ़ कासिदों को क्यों नहीं रवाना फरमाते ?

हुसैन—अफ़सोस है जैनब, ख़ुदा को कुछ और ही मंज़ूर है। मदीने में हमारे लिये अब अमन नहीं है। यहां अगर हम आज़ादी से खड़े हैं, तो यह वलीद की शराफ़त है; वरना यज़ीद की फ़ौजों ने हमको घेर लिया होता। आज मुझे सुबह होते-होते निकल जाना चाहिए। यज़ीद को मेरे अज़ीज़ों से दुश्मनी नहीं, उसे खौफ़ सिर्फ़ मेरा है। तुम लोग मुझे यहाँ से रुख़सत करो। मुझे यक़ीन है कि यज़ीद तुम लोगों को तंग न करेगा। उसके दिल में चाहे न हो, मगर मुसलमान के दिल में ग़ैरत बाक़ी है। वह रसूल की बहू-बेटियों की आबरू लुटते देखेंगे, तो उनका ख़ून ज़रूर गर्म हो जायगा।

जैनब—भैया, यह हरगिज़ न होगा। हम भी आपके साथ चलेंगी। अगर इस्लाम का बेटा अपनी दिलेरी से इस्लाम का वक़ार क़ायम रक्खेगा, तो हम अपने सब्र से, ज़ब्त से और बरदाश्त से उसकी शान निभाएँगे। हम पर जिहाद हराम है, लेकिन हम मौक़ा पड़ने पर मरना जानती हैं। रसूल पाक की क़सम, आप हमारी आँखों में आँसू न देखेंगे, हमारे लबों से फ़रियाद न सुनेंगे, और हमारे दिलों से आह न निकलेगी। आप हक़ पर जान देकर इस्लाम की आबरू रखना चाहते हैं, तो हम भी एक बेदीन और बदकार की हिमायत में रहकर इस्लाम के नाम पर दाग़ लगाना नहीं चाहतीं।

[सिपाहियों का एक दस्ता सड़क पर आता दिखाई पड़ता है।]

हुसैन—अब्बास, यज़ीद के आदमी हैं। वलीद ने भी दग़ा दी। आह ! हमारे हाथों में तलवार भी नहीं। ऐ ख़ुदा मदद !

अब्बास—कलाम पाक की क़सम, ये मरदूद आपके क़रीब न आने पाएँगे।

जैनब—भैया, तुम सामने से हट जाओ।

हुसैन—जैनब, घबराओ मत, आज मैं दिखा दूँगा कि अली का बेटा कितनी दिलेरी से जान देता है।

[अब्बास बाहर निकलकर फ़ौज के सरदार से।]

अब्बास—ऐ सरदार, किसकी बदनसीबी है कि तू उसके नज़दीक जा रहा है ?

सरदार—या हज़रत, हमें शहर में गश्त लगाने का हुक्म हुआ है कि कहीं बाग़ी तो जमा नहीं हो रहे हैं।

हुसैन—अब देर करने का मौक़ा नहीं है। चलूँ, अम्माजान से रुख़सत हो लूँ। (**फ़ातिमा की क़ब्र पर जाकर**) ऐ मादरेजहान, तेरा बदनसीब बेटा—जिसे तूने गोद में प्यार से खिलाया था, जिसे तूने सीने से दूध पिलाया था—आज तुझसे रुख़सत हो रहा है, और फिर शायद उसे तेरी जियारत नसीब न हो। (रोते हैं।)

[मदीने के सब नगरवासियों का प्रवेश।]

सब०—ऐ अमीर, आप हमें अपने क़दमों से क्यों जुदा करते हैं ? हम आपका दामन न छोड़ेंगे। आपके क़दमों से लगे हुए ग़ुरबत की ख़ाक छानना इससे कहीं अच्छा है कि एक बदकार और ज़ालिम ख़लीफ़ा की सख़्तियां झेलें। आप नबी के ख़ानदान के आफ़ताब हैं। उसकी रोशनी से दूर होकर हम अंधेरे में ख़ौफ़नाक जानवरों से क्योंकर अपनी जान बचा सकेंगे ? कौन हमें हक़ और दीन की राह सुझाएगा ? कौन हमें अपनी नसीहतों का अमृत पिलाएगा ? हमें अपने क़दमों से जुदा न कीजिए (**रोते हैं।**)

हुसैन—मेरे प्यारे दोस्तो, मैं यहाँ से ख़ुद नहीं जा रहा हूँ। मुझे तकदीर लिए जा रही है। मुझे वह दर्दनाक नज़ारा देखने की ताब नहीं है कि मदीने की गलियाँ इस्लाम और रसूल के दोस्तों के ख़ून से रंगी जायँ। मैं प्यारे मदीने को उस तबाही और ख़ून से बचाना चाहता हूँ। तुम्हें मेरी यही आख़िरी सलाह है कि इस्लाम की हुरमत क़ायम रखना, माल और ज़र के लिये अपनी क़ौम और अपनी मिल्लत से बेवफ़ाई न करना, ख़ुदा के नज़दीक इससे बड़ा गुनाह नहीं है। शायद हमें फिर मदीने के दर्शन न हों, शायद हम फिर इन सूरतों को न देख सकें। हाँ, शायद फिर हमें उन बुज़ुर्गों की सूरत देखनी नसीब न हो, जो हमारे नाना के शरीक और हमदर्द रहे, जिनमें से कितनों ही ने

मुझे गोद में खेलाया है। भाइयो, मेरी ज़बान में इतनी ताक़त नहीं है कि उस रंज और ग़म को ज़ाहिर कर सकूं, जो मेरे सीने में दरिया की लहरों की तरह उठ रहा है। मदीने की ख़ाक से जुदा होते हुए जिगर के टुकड़े हुए जाते हैं। आपसे जुदा होते आँखों में अँधेरा छा जाता है, मगर मजबूर हूँ। ख़ुदा की और रसूल की यही मंशा है कि इस्लाम का पौदा मेरे ख़ून से सींचा जाए, रसूल की खेती रसूल की औलाद के ख़ून से हरी हो, और मुझे उनके सामने सिर झुकाने के सिवा और कोई चारा नहीं।

नागरिक—या अमीर, हमें अपने क़दमों से जुदा न कीजिए। हाय अमीर हाय रसूल के बेटे, हम किसका मुँह देखकर जिएँगे। हम क्योंकर सब्र करें, अगर आज न रोएँ, तो फिर किस दिन के लिये आँसुओं को उठा रक्खें? आज से ज्यादा मातम का और कौन दिन होगा?

हुसैन—(**मुहम्मद की क़ब्र पर जाकर**) ऐ रसूल-ख़ुदा, रुख़सत। आपका नवासा मुसीबत में गिरफ्तार है। उसका बेड़ा पार कीजिए।

सब लोग मुझे छोड़के पहले ही सिधारे,
मिलता नहीं आराम नवासे को तुम्हारे।
ख़ादिम को कोई अमन की अब जा नही मिलती,
राहत कोई साइत मेरे मौला, नहीं मिलती।
दुख कौन-सा और कौन-सी ईज़ा नहीं मिलती,
हैं आप जहाँ, राह वह मुझको नहीं मिलती।
दुनिया में मुझे कोई नहीं और ठिकाना,
आज आख़िरी रुख़सत को गुलाम आया है नाना!
बच जाऊँ जो, पास अपने बुला लीजिए नाना,
तुरबत में नवासे को छिपा लीजिए नाना।

(भाई की क़ब्र पर जाकर)

सुन लीजिए शब्बीर की रुख़सत है बिरादर,
हज़रत को तो पहलू हुआ अम्मा का मयस्सर।
क़ब्रें भी जुदा होंगी यहाँ अब तो हमारी,
देखें हमें ले जाय कहाँ ख़ाक हमारी!

मैं नहीं चाहता कि मेरे साथ एक चिउँटी की भी जान खतरे में पड़े। अपने

अजीजों से, अपनी मस्तूरात से, अपने दोस्तों से यही सवाल है कि मेरे लिए ज़रा भी ग़म न करो, मैं वहीं जाता हूँ, जहाँ ख़ुदा की मर्जी लिए जाती है।

अब्बास—या हज़रत, ख़ुदा के लिए हमारे ऊपर यह सितम न कीजिए। हम जीते-जी कभी आपसे जुदा न होंगे।

जैनब—भैया, मेरी जान तुम पर फिदा हो। अगर औरतों को तुमने छोड़ दिया, तो लौटकर उन्हें जीता न पाओगे। तुम्हारी तीनों फूल-सी बेटियाँ ग़म से मुरझाई जा रही हैं। शहरबानू का हाल देख ही रहे हो। तुम्हारे बग़ैर मदीना सूना हो जायगा, और घर की दीवारें हमें फाड़ खायँगी। हमारे ऊपर इस बदनामी का दाग़ न लगाओ कि मुसीबत में रसूल की बेटियों ने अपने सरदार से बेवफ़ाई की। तुम्हारे साथ के फ़ाके यहाँ के मीठे लुक़मों से ज़्यादा मीठे मालूम होंगे। जिस्म को तकलीफ़ होगी, पर दिल को तो इतमीनान रहेगा।

अली अकबर—अब्बा, मैं इस मुसीबत का सारा मजा आपको अकेले न उठाने दूँगा। इसमें मेरा भी हिस्सा है। कौन हमारे नेजों की चमक देखेगा? किसे हम अपनी दिलेरी के जौहर दिखाएँगे? नहीं, हम यह ग़म की दावत आपको अकेले न खाने देंगे।

अली असगर—अब्बा, मुझे अपने आगे घोड़े पर बिठाकर रास मेरे हाथों में दे दीजिएगा। मैं उसे ऐसा दौड़ाऊँगा कि हवा भी हमारी गर्द को न पहुँचेगी।

हुसैन—हाय, अगर मेरी तक़दीर की मंशा है कि मेरे जिगर के टुकड़े मेरी आँखों के सामने तड़पें, तो मेरा क्या बस है। अगर ख़ुदा को यही मंजूर है कि मेरा बाग़ मेरी नज़रों के सामने उजाड़ा जाय, तो मेरा क्या चारा है। ख़ुदा गवाह रहना कि इस्लाम की इज्जत पर रसूल की औलाद कितनी बेदरदी से क़ुरबान की जा रही है!

□
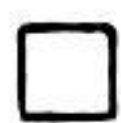
छठा दृश्य

[समय—संध्या। कूफ़ा शहर का एक मकान। अब्दुल्लाह, क़मर, वहब बातें कर रहे हैं।]

अब्दुल्लाह—बड़ा ग़ज़ब हो रहा है। शामी फ़ौज के सिपाही शहरवालों को पकड़-पकड़ ज़ियाद के पास ले जा रहे हैं, और वहाँ जबरन् उनसे बैयत ली जा रही है।

क़मर—तो लोग क्यों उसकी बैयत क़बूल करते हैं ?

अब्दुल्लाह—न करें, तो क्या करें। अमीरों और रईसों को तो जागीर और मंसब की हवस ने फोड़ लिया। बेचारे ग़रीब क्या करें। नहीं बैयत लेते, तो मारे जाते हैं, शहरबदर किए जाते हैं। जिन गिने-गिनाए रईसों ने बैयत नहीं ली, उन पर भी सख्ती करने की तैयरियाँ हो रही हैं। मगर ज़ियाद चाहता है कि कूफ़ावाले आपस ही में लड़ जायँ। इसीलिये उसने अब तक कोई सख्ती नहीं की है।

क़मर—यज़ीद को खिलाफ़त का कोई हक़ तो है नहीं, महज़ तलवार का जोर है। शरा के मुताबिक़ हमारे खलीफ़ा हुसैन हैं।

अब्दुल्लाह—वह तो ज़ाहिर ही है, मगर यहाँ के लोगों को तो जानते हो न। पहले तो ऐसा शोर मचाएँगे, गोया जान देने पर आमादा हैं, पर ज़रा किसी ने लालच दिखलाया, और सारा शोर ठंडा हो गया ! गिने हुए आदमियों को छोड़कर सभी बैयत ले रहे हैं।

क़मर—तो फिर हमारे ऊपर भी तो वही मुसीबत आनी है।

अब्दुल्लाह—इसी फ़िक्र में तो पड़ा हूँ। कुछ सूझता ही नहीं।

क़मर—सूझना ही क्या है। यज़ीद की बैयत हर्गिज मत क़बूल करो।

अब्दुल्लाह—अपनी खुशी की बात नहीं है।

क़मर—क्या होगा ?

अब्दुल्लाह—वजीफ़ा बंद हो जायगा।

क़मर—ईमान के सामने वजीफ़े की कोई हस्ती नहीं।

अब्दुल्लाह—जागीर ज्यादा नहीं, तो परवरिश तो हो ही जाती है। वह फ़ौरन् छिन जायगी। कितनी मेहनत से हमने मेवों का बाग़ लगाया है। यह कब गवारा होगा कि हमारी मेहनत का फल दूसरे खाएँ। कलाम पाक की क़सम, मेरे बाग़ पर बड़ों-बड़ों को रश्क है।

क़मर—बाग़ के लिए ईमान बेचना पड़े, तो बाग़ की तरफ़ आँख उठाकर देखना भी गुनाह है।

अब्दुल्लाह—क़मर, मामला इतना आसान नहीं है, जितना तुमने समझ रक्खा है। जायदाद के लिए इंसान अपनी जान देता है, भाई-भाई दुश्मन हो जाते हैं, बाप-बेटों में, मियाँ-बीबी में तिफ़ाक़ पड़ जाता है। अगर उसे लोग इतनी आसानी से छोड़ सकते, तो दुनिया जन्नत बन जाती।

क़मर—यह सही है, मगर ईमान के मुक़ाबले जायदाद ही की नहीं, ज़िंदगी की भी कोई हस्ती नहीं। दुनिया की चीज़ें एक दिन छूट जाएँगी, मगर ईमान तो हमेशा साथ रहेगा।

अब्दुल्लाह—शहरबदर होना पड़ा, तो यह मकान हाथ से निकल जायगा। अभी पिछले साल बनकर तैयार हुआ है। देहातों में, जंगल में बद्दुओं की तरह मारे-मारे घूमना पड़ेगा। क्या जला-वतनी कोई मामूली चीज़ है?

क़मर—दीन के लिए लोगों ने सल्तनतें तर्क कर दी हैं, सिर कटाए हैं, और हँसते-हँसते सूलियों पर चढ़ गए हैं। दीन की दुनिया पर हमेशा जीत रही है, और रहेगी।

अब्दुल्लाह—वहब, अपनी अम्माजान की बातें सुन रहे हो?

वहब—जी हाँ, सुन रहा हूँ, और दिल मे फ़ख्र कर रहा हूँ कि मैं ऐसी दीन-परवर माँ का बेटा हूँ। मैं आपसे सच अर्ज़ करता हूँ कि कीस, हज्जाज, हुर, अशअस-जैसे रऊसा को बैयत क़बूल करते देखकर मैं भी नीम राज़ी हो गया था, पर आपकी बातों ने हिम्मत मज़बूत कर दी। अब मैं सब कुछ झेलने को तैयार हूँ।

अब्दुल्लाह—वहब, दीन हम बूढ़ों के लिए है, जिन्होंने दुनिया के मज़े उठा लिए। जवानों के लिए दुनिया है। तुम अभी शादी करके लौटे हो, बहू की चूड़ियाँ भी मैली नहीं हुईं। जानते हो वह एक रईस की बेटी है, नाज़ों में पली है, क्या उसे भी ख़ानावीरानी की मुसीबतों में डालना चाहते हो? हम और क़मर तो हज करने चले जायँगे। तुम मेरी जायदाद के वारिस हो, मुझे यह तसकीन रहेगा कि मेरी मिहनत रायगाँ नहीं हुई। तुमने माँ की नसीहत पर अमल किया, तो मुझे बेहद सदमा होगा। पहले जाकर नसीम से पूछो तो?

वहब—मुझे अपने ईमान के मामले में किसी से पूछने की ज़रूरत नहीं। मुझे यक़ीन है कि ख़िलाफ़त के हक़दार हज़रत हुसैन हैं। यज़ीद की बैयत

कभी न क़बूल करूँगा, जायदाद रहे या न रहे, जान रहे या न रहे।

क़मर—बेटा, तेरी माँ तुझ पर फ़िदा हो, तेरी बातों ने दिल ख़ुश कर दिया। आज मेरी-जैसी ख़ुशनसीब माँ दुनिया में न होगी। मगर बेटा, तुम्हारे अब्बाजान ठीक कहते हैं। नसीमा से पूछ लो, देखो, वह क्या कहती है। मैं नहीं चाहती कि हम लोगों की दीन-परवरी के बाइस उसे तकलीफ़ हो, और जंगलों की ख़ाक छाननी पड़े। उसकी दिलजोई करना तुम्हारा फ़र्ज़ है।

वहब—आप फ़रमाती हैं, तो मैं उससे भी पूछ लूँगा। मगर मैं साफ़ कहे देता हूँ कि उसकी रज़ा का ग़ुलाम न बनूँगा। अगर उसे दीन के मुक़ाबले में ऐश व आराम ज्यादा पसंद है, तो शौक़ से रहे, लेकिन मैं बैयत की जिल्लत न उठाऊँगा।

[दरवाज़ा खोलकर बाहर चला जाता है।]

□

सातवाँ दृश्य

[अरब का एक गाँव—एक विशाल मंदिर बना हुआ है, तालाब है,
जिसके पक्के घाट बने हुए हैं, मनोहर बग़ीचा, मोर, हरिण,
गाय आदि पशु-पक्षी इधर-उधर विचर रहे हैं।
साहसराय और उनके बंधु तालाब के किनारे
संध्या-हवन, ईश्वर-प्रार्थना कर रहे हैं।]

गाना [स्तुति]

हरि, धर्म प्राण से प्यारा हो।
अखिलेश, अनंत विधाता हो, मंगलमय, मोदप्रदाता हो
भय-भंजन शिव, जन-त्राता हो, अविनाशी अद्भुत ज्ञाता हो
तेरा ही एक सहारा हो।
हरि, धर्म प्राण से प्यारा हो।
बल, वीर्य, पराक्रम त्वेष रहे, सद्धर्म धरा पर शेष रहे
श्रुति-भानु, एकता-वेश रहे, धन-ज्ञान-कला—युत देश रहे

सर्वत्र प्रेम की धारा हो।
हरि, धर्म प्राण से प्यारा हो।
भारत तन-मन-धन सारा हो, उसकी सेवा सब द्वारा हो
निज मान-समान दुलारा हो, सबकी आँखों का तारा हो
जीवन सर्वस्व हमारा हो।
हरि, धर्म प्राण से प्यारा हो।

[साहसराय प्रार्थना करते हैं।]

साहसराय—भगवान्. हमें शक्ति प्रदान कीजिए कि सदैव अपने व्रत का पालन करें। अश्वत्थामा की संतान का, निरंतर सेवा-मार्ग का अवलंबन करें, रक्त सदैव दीनों की रक्षा में बहता रहे, उनके सिर सदैव न्याय और सत्य पर बलिदान होते रहें। और, प्रभो ! वह दिन आए कि हम प्रायश्चित-संस्कार में मुक्ति होकर तपोभूमि भारत को पयान करें, और ऋषियों के सेवा-सत्कार में मग्न होकर अपना जीवन सफल करें। हे नाथ, हमें सद्बुद्धि दीजिए कि निरंतर कर्म-पथ पर स्थिर रहें, और उस कलंक-कालिमा को, जो हमारे आदि पुरुष ने हमारे मुख पर लगा दी है, अपनी सुकीर्ति से धोकर अपना मुख उज्ज्वल करें। जब हम स्वदेश यात्रा-करें, तो हमारे मुख पर आत्मगौरव का प्रकाश हो, हमारे स्वदेश-बंधु सहर्ष हमारा स्वागत करें, और हम वहाँ पतित बनकर नहीं, समाज के प्रतिष्ठित अंग बनकर जीवन व्यतीत करें।

[सेवक का प्रवेश।]

सेवक—दीनानाथ, समाचार आया है, अमीर मुआबिया के बेटे यज़ीद ने खिलाफ़त पर अधिकार कर लिया।

साहसराय—यज़ीद ने ख़िलाफ़त पर अधिकार कर लिया !यह कैसा ? उसका खिलाफ़त पर क्या स्वत्व था ? ख़िलाफ़त तो हज़रत अली के बेटे इमाम हुसैन को मिलनी चाहिए थी।

हरजसराय—हाँ, हक़ तो हुसैन ही का है। मुआबिया से पहले से इसी शर्त पर संधि हुई थी।

सिंहदत्त—यज़ीद की शरारत है। मुझे मालूम है, वह अभिमानी, तामसी और विलास-भोगी मनुष्य है। विषय-वासना में मग्न रहता है। हम

ऐसे दुर्जन की ख़िलाफ़त कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।

पुण्यराय—(सेवक से) कुछ मालूम हुआ, हुसैन क्या कर रहे हैं?

सेवक—दीनबंधु, वह मदीना से भागकर मक्का चले गए हैं।

सिंहदत्त—यह उनकी भूल है, तुरंत मदीना-वासियों को संगठित करके यज़ीद के नाजिम का वध कर देना चाहिए था, इसके पश्चात् अपनी ख़िलाफ़त की घोषणा कर देनी थी। मदीना को छोड़कर उन्होंने अपनी निर्बलता स्वीकार कर ली।

रामसिंह—हुसैन धर्मनिष्ठ पुरुष हैं। अपने बंधुओं का रक्त नहीं बहाना चाहते।

ध्रुवदत्त—जीव-हिंसा महापाप है। धर्मात्मा पुरुष कितने ही संकट में पड़े, किंतु अहिंसा-व्रत को नहीं त्याग सकता।

भीरुदत्त—न्याय-रक्षा के लिए हिंसा करना पाप नहीं। जीव-हिंसा न्याय-हिंसा से अच्छी है।

साहसराय—अगर वास्तव में यज़ीद ने ख़िलाफ़त का अपहरण कर लिया है, तो हमें अपने व्रत के अनुसार न्याय-पक्ष ग्रहण करना पड़ेगा। यज़ीद शक्तिशाली है, इसमें संदेह नहीं; पर हम न्याय-व्रत का उल्लंघन नहीं कर सकते। हमें उसके पास दूत भेजकर इसका निश्चय कर लेना चाहिए कि हमें किस पथ का अनुसरण करना उचित है।

सिंहदत्त— जब यह सिद्ध है कि उसने अन्याय किया, तो उसके पास दूत भेजकर विलंब क्यों किया जाय? हमें तुरंत उससे संग्राम करना चाहिए। अन्याय को भी अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए युक्तियों का अभाव नहीं होता।

हरजसराय—मैं पूछता हूं, अभी समर की बात ही क्यों की जाय। राजनीति के तीनों सिद्धांतों की परीक्षा कर लेने के पश्चात् ही शस्त्र ग्रहण करना चाहिए। विशेषकर इस समय हमारी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि हम आत्मगौरव की दुहाई देते हुए रण-क्षेत्र में कूद पड़ें। शस्त्र-ग्रहण सर्वदा अंतिम उपाय होना चाहिए।

सिंहदत्त—धन आत्मा की रक्षा के लिए ही है।

हरजसराय—आत्मा बहुत ही व्यापक शब्द है। धन केवल धर्म की

रक्षा के लिए है।

रामसिंह—धर्म की रक्षा रक्त से नहीं होती, शील, विनय, सदुपदेश, सहानुभूति, सेवा, ये सब उसके परीक्षित साधन हैं, और हमें स्वयं इन साधनों की सफलता का अनुभव हो चुका है।

सिंहदत्त—राजनीति के क्षेत्र में ये साधन उसी समय सफल होते हैं, जब शस्त्र उनके सहायक हों। अन्यथा युद्ध-लाभ से अधिक उनका मूल्य नहीं होता।

साहसराय—हमारा कर्त्तव्य अपनी वीरता का प्रदर्शन अथवा राज्य-प्रबंध की निपुणता दिखाना नहीं है, न हमारा अभीष्ट अहिंसा-व्रत का पालन करना है। हमने केवल अन्याय को दमन करने का व्रत धारण किया है, चाहे उसके लिए किसी उपाय का अवलंबन करना पड़े। इसलिए सबसे पहले हमें दूतों द्वारा यज़ीद के मनोभाव का परिचय प्राप्त करना चाहिए। उसके पश्चात् हमें निश्चय करना होगा कि हमारा कर्त्तव्य क्या है। मैं रामसिंह और भीलदत्त से अनुरोध करता हूँ कि ये आज ही शाम को यात्रा पर अग्रसर हो जायँ।

□

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[हुसैन का क़ाफ़िला मक्का के निकट पहुँचता है। मक्का की पहाड़ियाँ नज़र आ रही हैं। लोग काबा की मसजिद के द्वार पर हुसैन का स्वागत करने को खड़े हैं।]

हुसैन—यह लो, मक्काशरीफ आ गया। यही वह पाक मुक़ाम है, जहाँ रसूल ने दुनिया में क़दम रक्खे। ये पहाड़ियाँ रसूल के सिजदों से पाक और उनके आँसुओं से रोशन हो गई हैं। अब्बास, काबा को देखकर मेरे दिल में अजीब-सी धड़कन हो रही है, जैसे कोई ग़रीब मुसाफ़िर एक मुद्दत के बाद अपने वतन में दाखिल हो।

[सब लोग घोड़ों से उतर पड़ते हैं।]

जुबेर—आइए हज़रत हुसैन, हमारे शहर को अपने क़दमों से रोशन कीजिए।

[हुसैन सबसे गले मिलते हैं।]

हुसैन—मैं इस मेहमाननवाज़ी के लिए आपका मशकूर हूँ।

जुबेर—हमारी जानें आप पर निसार हों। आपको देखकर हमारी आँखों में नूर आ गया है, और हमारे कलेजे ठंडे हो गए हैं। ख़ुदा गवाह है, आपने रसूल पाक ही का हुलिया पाया है। आइए, काबा हाथ फैलाए आपका इंतज़ार कर रहा है।

[सब लोग मसजिद में दाखिल होते हैं। स्त्रियाँ हरम में जाती हैं।]

अली असगर—अब्बा, इन पहाड़ों पर से तो हमारा घर दिखाई देता होगा ?

हुसैन—नहीं बेटा, हम लोग घर से बहुत दूर आ गए हैं। तुमने कुछ

नाश्ता नहीं किया ?

अली असगर—मुझे भूख नहीं है। पहले मालूम होती थी, लेकिन अब ग़ायब हो गई।

हुसैन—तो तुम यहीं रहो कि तुम्हें भूख ही न लगे।

हबीब—या हज़रत, आप भी ज़रा आराम फ़रमा लें। हमारी बहुत दिनों से तमन्ना है कि आपके पीछे खड़े होकर नमाज पढ़ें।

[जुबेर और अब्बास को छोड़कर सब लोग
वजु करने चले जाते हैं।]

हुसैन—क्यों जुबेर, यहाँ के लोगों के क्या ख़यालात हैं ?

जुबेर—कुछ न पूछिए, मुझे यहाँ की क़ैफ़ियत बयान करते शरम आती है। यों ज़ाहिर में तो सब-के-सब आप पर निसार होने के लिए क़सम खाएँगे, बैयत लेने को भी तैयार नज़र आएँगे, मगर दिल किसी का भी साफ नहीं।

हुसैन—क्या दग़ा का अंदेशा है ?

जुबेर—यह तो मैं नहीं कह सकता, क्योंकि कोई ऐसी बात देखने में नहीं आई, लेकिन इधर-उधर की बातों से पता चलता है कि इनकी नीयत साफ़ नहीं। अजब नहीं कि यज़ीद दौलत और जागीर का लालच देकर इन्हें मिला ले। उस वक्त ये जरूर आपके साथ दग़ा कर जाएँगे। मैं तो आपको भी यही सलाह दूंगा कि आप मदीने वापस जाएँ।

हुसैन—मुझे तो इनकी तरफ़ से दग़ा का गुमान नहीं होता। दग़ा में एक झिझक होती है, जो यहाँ किसी के चेहरे पर नजर नहीं आती। दग़ा उसी तरह शक पैदा कर देती है, जैसे हमदर्दी एतबार पैदा करती है।

जुबेर—मगर आपको यह भी तो मालूम होगा कि दग़ा गिरगिट की तरह कभी अपने असली रंग में दिखाई नहीं देती। वह हाथों का बोसा लेती है, पैरों तले-आँखें बिछाती है, और बातों से शकर बरसाती है।

अब्बास—दोस्त बनकर सलाह देती है, ख़ुद किनारे पर रहती है, पर दूसरों को दरिया में ढकेल देती है। आप हँसती है, पर दूसरों को रुलाती है, और अपनी सूरत को हमेशा जाहिद के लिबास में छिपाए रहती है।

जुबेर—ख़ुदा पाक की क़सम, आप मेरी तरफ़ इशारा कर रहे हैं।

अगर आप जानते कि मैं हजरत हुसैन की कितनी इज्जत करता हूँ, तो मुझ पर दग़ा का शक न करते। अगर मैं यज़ीद का दोस्त होता, तो अब तक दौलत से मालामाल हो जाता। अग़र ख़ुद बैयत की नीयत रखता, तो अब तक ख़ामोश न बैठा रहता। आप मुझ पर यह शुबहा करके बड़ा सितम कर रहे हैं।

हुसैन—अब्बास, मुझे तुम्हारी बातें सुनकर बड़ी शर्म आती है। जुबेर सबसे अलग-विलग रहते हैं। किसी के बीच में नहीं पड़ते। एकांत में बैठने वाले आदमियों पर अक्सर लोग शुबहा करने लगते हैं। तुम्हें शायद यह नहीं मालूम है कि दग़ा गोशे से सोहबत को कहीं ज्यादा पसंद करती है।

[हबीब का प्रवेश।]

हबीब—या हजरत, मुझे अभी मालूम हुआ कि आपके यहाँ तशरीफ़ लाने की ख़बर यज़ीद के पास भेज दी गई है, और मरवान यहाँ का नाज़िम बनाकर भेजा जा रहा है।

हुसैन—मालूम होता है, मरवान हमारी जान लेकर ही छोड़ेगा। शायद हम ज़मीन के परदे में चले जायँ, तो वहाँ भी हमें आराम न लेने देगा।

अब्बास—यहाँ उसे उसकी शामत ला रही है। कलाम पाक की क़सम, वह यहाँ से जान सलामत न ले जायगा। काबा में ख़ून बहाना हराम ही क्यों न हो, पर ऐसे रूह-स्याह का ख़ून यहाँ भी हलाल है।

हबीब—वलीद माजूल कर दिया गया। यहाँ का आलिम मदीने जा रहा है।

हुसैन—वलीद की माजूली का मुझे सख्त अफ़सोस है। वह इस्लाम का सच्चा दोस्त था। मैं पहले ही समझ गया था कि ऐसे नेक और दीनदार आदमी के लिए यज़ीद के दरबार में जगह नहीं है। अब्बास, वलीद की माजूली मेरी शहादत की दलील है।

हबीब—यह भी सुना है कि यज़ीद ने अपने बेटे को, जो आपका ख़ैर-ख्वाह है, नज़बंद कर दिया है। उसने खुल्लम-खुल्ला यज़ीद की बेइंसाफ़ी पर एतराज़ किया था। यहाँ तक कहा था कि ख़िलाफ़त पर तुम्हारा कोई हक़ नहीं है। यज़ीद यह सुनकर आग-बबूला हो गया। उसे क़त्ल करना चाहता था, लेकिन रूमी ने बचा लिया।

अब्बास—ऐसे ज़ालिम का क़त्ल कर देना ऐन सबाब है।

हुसैन—अब्बास, यह ख़ुदा की मंशा की दूसरी दलील है ; यह उसकी बदनसीबी है कि तक़दीर ने उसे मेरी शहादत का वसीला बनाया है। अपने बेटे को क़ैद करने से किसी को खुशी नहीं हो सकती। जो आदमी अपने बेटे की ज़बान से अपनी तौहीन सुने, उससे ज्यादा बदनसीब दुनिया में और कौन होगा ?

ज़ुबेर—मेरे ख़याल में अगर आप कूफ़े की तरफ़ जायँ, तो वहाँ आपको मददगारों की कमी न रहेगी।

हबीब—या हज़रत, मैं कूफ़ा के क़रीब का रहनेवाला हूँ, और क़ूफ़ियों की आदत से खूब वाकिफ़ हूँ। दग़ा उनकी ख़मीर में मिली हुई है। आप उनसे बचे रहिएगा। वे आपके पास अपनी बैयत के पैग़ाम भेजेंगे। उनके क़ासिद-पर-क़ासिद आएँगे, और आपको चैन न लेने देंगे। उनके ख़तों से ऐसा मालूम होगा कि सारा मुल्क आप पर फ़िदा होने के लिए तैयार है। पर आप उनकी बातों में हर्गिज न आइएगा। भूलकर भी कूफ़ा की तरफ़ रुख़ न कीजिएगा। मेरी आपसे यही अर्ज़ है कि क़ाबा से बाहर क़दम न रखिएगा, जब तक आप यहाँ रहेंगे, आप सब बलाओं से बचे रहेंगे। कूफ़ावाले वफ़ादारी से उतना ही महरूम हैं, जैसे चिड़ियाँ दूध से।

हुसैन—मैं कूफ़ावालों से ख़ूब वाकिफ़ हूँ। तुमने और भी ख़बरदार कर दिया, इसके लिए मैं तुम्हारा मशक़ूर हूँ।

हबीब—मैं यही अर्ज़ करने के लिए आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ हूँ। अगर वे लोग रोते हुए आकर आपके पैरों पर गिर पड़ें, तो भी आप उन्हें ठुकरा दीजिएगा। इसमें शक नहीं कि वे दिलेर हैं, दीनदार हैं, मेहमान-नवाज़ हैं, पर दौलत के ग़ुलाम है। इस ऐब ने उनकी सारी ख़ूबियों पर परदा डाल दिया है। वज़ीफ़े और जागीर के लालच और वजीफ़े तथा जागीर की जब्ती का खौफ़ उनसे ऐसे क़ौल करा सकता है, जिसकी इंसान से उम्मीद नहीं की जा सकती।

हुसैन—हबीब, मैं तुम्हारी सलाह को हमेशा याद रक्खूँगा।

ज़ुबेर—हबीब, तुमने कूफ़ियों के बारे में जो कुछ कहा, वह बहुत कुछ दुरुस्त है, लेकिन तुम हज़रत हुसैन के दोस्त हो, तुमसे कहने में कोई खौफ़

नहीं कि मक्कावाले भी इस मामले में कूफ़ावालों के ही भाई-बंद हैं। इनके क़ौल और फ़ेल का भी कोई एतबार नहीं। कूफ़े की आबादी ज्यादा है, वे अगर दिल से किसी बात पर आ जायँ, तो यज़ीद के दाँत खट्टे कर सकते हैं। मक्का की थोड़ी-सी आबादी अगर वफ़ादार भी रहे, तो उससे भलाई की कोई उम्मीद नहीं हो सकती। शाम की दो हज़ार फ़ौज इन्हें घेर लेने को काफ़ी है। भलाई या बुराई किसी ख़ास मुल्क या क़ोम का हिस्सा नहीं होती। वही सिपाह जो एक बार मैदान में दिलेरी के जौहर दिखाती है, दूसरी बार दुश्मन को देखते ही भाग खड़ी होती है। इसमें सिपाह की ख़ता नहीं; उसके फ़ेल की ज़िम्मेदारी उसके सरदार पर है। वह अगर दिलेर है, तो सिपाह में दिलेरी की रूह फूंक सकता है; कम-हिम्मत है, तो सिपाह की हिम्मत को भी पस्त कर देगा। आप रसूल के बेटे हैं, आपको भी ख़ुदा ने वही अक्ल और कमाल अता किया है। यह क्योंकर मुमकिन है कि आपकी सोहबत का उन पर असर न पड़े। कूफ़ा तो क्या, आप हक़ को भी रास्ते पर ला सकते हैं। मेरे ख़याल में आपको किसी से बदगुमान होने की ज़रूरत नहीं।

अब्बास—जुबेर, सलाह कितनी माक़ूल हो, लेकिन उसमें ग़रज की बू आते ही उसकी मंशा फ़ौत हो जाती है।

हुसैन—अगर तुम्हारा इरादा यहाँ लोगों से बैयत लेने का हो, तो शौक़ से लो, मैं ज़रा भी दख़ल न दूंगा।

जुबेर—या हज़रत, मेरा ख़ुदा गवाह है कि मैं आपके मुक़ाबले में अपने ख़िलाफ़त के लायक़ नहीं समझता। मैं यज़ीद की बैयत न करूंगा। लेकिन ख़ुदा मुझे नजात न दे, अगर मेरे दिल में आपका मुक़ाबला करने का ख़याल भी आया हो।

हबीब—या इमाम, अगर तकलीफ़ न हो, तो सहन में तशरीफ लाइए। अज़ान हो चुकी। लोग आपकी राह देख रहे हैं।

[सब लोग नमाज़ पढ़ने जाते हैं।]

□

दूसरा दृश्य

[यज़ीद का दरबार—यज़ीद, ज़ुहाक़, रूमी, हुर और अन्य सभासद् बैठे हुए हैं। दो वेश्याएँ शराब पिला रही हैं।]

यज़ीद—तुममें से कोई बता सकता है, जन्नत कहाँ है?

हुर—रसूल ने तो चौथे आसमान पर फ़रमाया।

शम्स—मैं चौथे-पाँचवें आसमान का क़ायल नहीं। ख़ुदा का फ़ज़्ल और करम की जन्नत है।

रूमी—ख़ुदा की निगाह कोई कबरिस्तान नहीं है कि वहाँ मुर्दे दफ़न हों। जन्नत वही होगी, जहाँ लाशें दफ़न की जाती होंगी।

यज़ीद—उस्ताद, तुम भी चूक गए, फिर जोर लगाना। अब की ज़ुहाक़ की बारी है। कहिए शेख़जी, जन्नत कहाँ है?

ज़ुहाक़—बतलाऊँ? इस शराब के प्याले में।

यज़ीद—पते पर पहुँचे, पर अभी कुछ कसर है। ज़रा और ज़ोर लगाओ।

ज़ुहाक़—उस प्याले में, जो किसी नाज़नीन के हाथ से मिले।

यज़ीद—लाना हाथ। बस, वही जन्नत है। मए-गुलफ़ाम हो, और किसी नाज़नीन का पंजए-मरजान हो। इस एक जन्नत पर रसूल की हज़ारों जन्नतें क़ुरबान हैं। अच्छा अब बताओ, दोज़ख़ कहाँ है?

हुर—या ख़लीफ़ा, आपको दीन-हक़ की तौहिन मुनासिब नहीं।

यज़ीद—हुर, तुमने सारा मज़ा किरकिरा कर दिया। आँखों की क़सम है, तुम मेरी मजलिस में बैठने के क़ाबिल नहीं हो। सारा मज़ा ख़ाक में मिला दिया। यज़ीद के सामने दीन का नाम लेना मना है। दीन उन मुल्लाओं के लिए है, जो मसजिदों में पड़े हुए गोश्त की हड्डियों को तरसते हैं; दीन उनके लिए है, जो मुसीवतों के सबब से ज़िंदगी से बेज़ार हैं, जो मुहताज हैं, बेबस हैं, भूखों मरते हैं, जो ग़ुलाम है, दुर्रे खाते हैं। दीन बूढ़े मरदों के किए, राँड़ औरतों के लिए, दिवालिए सौदागरों के लिए हैं। इस

ख़याल से उनके आँसू पुछते हैं, दिल को तसकीन होती है। बादशाहों के लिए दीन नहीं है। उनकी नजात रसूल और ख़ुदा के निगाह-करम की मुहताज नहीं। उनकी नजात उनके हाथों में है। दोस्तो बतलाना, हमारा पीर कौन है?

ज़हाक़—पीर मुगां (**साक़ी**)।

यज़ीद—लाना हाथ। हमारा पीर साक़ी है, जिसके दास्ते-करम से हमें यह नियामत मयस्सर हुई है। अच्छा, कौन मेरे ख़याल का जवाब देता है, दोज़ख़ कहां है?

शम्स—किसी सूदख़ोर की तोंद में।

यज़ीद—बिलकुल ग़लत।

रूमी—खलीफ़ा के गुस्से में।

यज़ीद—(**मुस्कराकर**) इनाम के क़ाबिल जवाब है, मगर ग़लत।

कीस—किसी मुल्ला की नमाज़ में, जो ज़मीन पर माथा रगड़ते हुए ताकता रहता है कि कहीं से रोटियाँ आ रही हैं या नहीं।

यज़ीद—वल्ला, ख़ूब जवाब है, मगर ग़लत।

ज़ुहाक़—किसी नाज़नीन के रूठने में।

यज़ीद—ठीक-ठीक, बिलकुल ठीक। लाना हाथ। दिल ख़ुश हो गया (**वेश्याओं से**) नरगिस, इस जवाब की दाद दो। ज़ुहरा, शेखजी के हाथों में बोसा दो। वह गीत गाओ जिसमें शराब की बू हो, शराब का नशा हो, शराब की गर्मी हो।

नरगिस—आज ख़लीफ़ा से कोई बड़ा इनाम लूँगी।

[गाती है।]

हाँ खुले साक़ी दरे-मैख़ाना आज,
ख़ैर हो, भर दे मेरा पैमाना आज।
नाज करता झूमता मस्ताना वार,
अब्र आता है, सूए-मैखाना आज।
बोसए-लब हुस्न के सदके में दे,
ओ बुते तरसा हमें तरसा न आज।
इश्के-चश्मे-मस्त का देखो असर,
पाँव पड़ता है मेरा मस्ताना आज।

मेरे सीरो की इलाही ख़ैर हो,
है बहुत मुज़तरे दिले दीवाना आज।
मुहतसिब का डर नहीं 'बिस्मिल' तुम्हें,
सूए-मसजिद जाते ही रंदाना आज।
[एक कासिद का प्रवेश।]

क़ासिद—अस्सलाम अलेक या इमाम, बिन ज़ियाद ने मुझे कूफ़ा से आपकी खिदमत में भेजा है।

यज़ीद—ख़त लाया है?

क़ासिद—ख़त इस ख़ौफ़ से नहीं लाया कि कहीं रास्ते में बाग़ियों के हाथ गिरफ्तार न हो जाऊँ।

यज़ीद—क्या पैग़ाम लाया है?

क़ासिद—बिन ज़ियाद ने गुज़ारिश की है कि यहाँ के लोग हुज़ूर की बैयत क़बूल नहीं करते, और बग़ावत पर आमादा हैं। हुसैन बिन अली को अपनी बैयत लेने को बुला रहे हैं। तीन क़ासिद जा चुके हैं, मगर अभी तक हुसैन आने पर रज़ामंद नहीं हुए, अब शहर के कई रऊसा ख़ुद जा रहे हैं।

यज़ीद—बिन ज़ियाद से कहो, जो आदमी मेरा बैयत न मंज़ूर करे, उसे क़त्ल कर दें। मुझसे पूछने की जरूरत नहीं।

रूमी—दुश्मन के साथ मुख़तलिफ़ रियायत की ज़रूरत नहीं। जियाद को चाहिए कि तलवार का इस्तेमाल करने में देर न करे।

हुर—मुझे ख़ौफ़ है कि बग़ावत हो जायगी।

रूमी—सज़ा और सख़्ती यही हुकूमत के दो गुर हैं। मेरी उम्र बादशाहत के इंतज़ाम ही में गुजरी है, इसमें बेहतर और कारगर कोई तदबीर न नज़र आई। खुदा को भी अपना निज़ाम क़ायम रखने के लिए दोज़ख की ज़रूरत पड़ी। दोज़ख़ का ख़ौफ़ ही दुनिया को आबाद रक्खे हुए है। उसका रहम और इंसाफ़ फ़क़ीरों और बेकसों की तसकीन के लिए है। ख़ौफ़ ही सल्तनत की बुनियाद है। नरमी से सल्तनत का बक़ार मिट जाता है, लोग सरकश हो जाते हैं, फ़साद का बाज़ार गर्म हो जाता है। जियाद से कहना, क़त्ल करो कि देखनेवालों के दिल थर्रा जायँ। तीरों से छिदवाओ, कुत्तों से नुचवाओ, ज़िंदा खाल खिंचवाओ, लाल लोहे से दाग़ दो। जो हुसैन का नाम

ले, उसकी ज़बान तालू से खींच ली जाय। वह सज़ा सज़ा नहीं, जो सख्त न हो।

यज़ीद—मैं इस हुक्म की ताईद करता हूँ। जा, और फिर ऐसी छोटी-छोटी बातों के लिए मेरे आराम में बाधा न डालना।

[क़ासिद का प्रस्थान।]

हुसैन का कूफ़ा आना मेरे लिए मौत के आने से कम नहीं। क़सम है आँखों की, वह कूफ़ा न आने पाएगा, अगर मेरा बस है।

शम्स—ताज्जुब यही है कि कूफ़ावालों ने तीन क़ासिद भेजे, और हुसैन जाने पर राजी नहीं हुए।

यज़ीद—तैयारियाँ कर रहा होगा। वलीद अगर मेरे चचा का बेटा न होता, तो मैं अपने हाथों से उसकी आँखें निकाल लेता। उसने जान-बूझकर हुसैन को मक्का जाने दिया। मदीना ही में क़त्ल कर देता, तो मुझे आज इतनी परेशानी क्यों होती? कौन जाकर उसे गिरफ्तार कर सकता है?

हुर—मैं इस ख़िदमत के लिए हाज़िर हूँ।

यज़ीद—अगर तुम यह काम पूरा कर दिखाओ, तो इसके सिले में मैं तुम्हें एक सूबा दूँगा, जिस पर जन्नत भी फ़िदा हो। मेरी फ़ौज से एक हज़ार चुने हुए आदमी ले लो, और जब आफ़ताब निकले, तो तुम्हें यहाँ से बीस फ़र्सख़ पर देखें।

हुर—इंशाअल्लाह?

यज़ीद—जैसे शिकारी शिकार की तलाश करता है, उसी तरह हुसैन की तलाश करना। बीहड़ रास्ते, अँधेरी घाटियाँ, घने जंगल, रेतीले मैदान, सब छान डालना। दिन की फ़िक्र नहीं, पर रात को अपनी आँखों से नींद को यों भगा देना, जैसे कोई दीनदार आदमी अपने दरवाजे से कुत्ते को भगाता है।

हुर—हुक्म की तामील करूँगा। **(स्वगत)** यज़ीद बदकार है, बेदीन है, शराबी है; मगर ख़िलाफ़त को सँभाले हुए तो है। हुसैन की बैयत मुसलमानों में दुश्मनी पैदा कर देगी, ख़ून का दरिया बहा देगी, और ख़िलाफ़त का निशान मिटा देगी। ख़िलाफ़त क़ायम करना व देखना मेरा पहला फ़र्ज़ है। ख़लीफ़ा कौन और कैसा हो, यह बाद को देखा जायगा।

[हुर का प्रस्थान]

यजीद—नरगिस, रिंदों में एक ज़ाहिद था, वह खिसका, अब कोई मस्त करनेवाली ग़ज़ल गाओ। काश, सल्तनत की फ़िक्र न होती, तो तुम्हारे हाथों शराब के प्याले पीता उम्र गुज़ार देता।

नरगिस—ख़ौफ़ से काँपती हुई बुलबुल मस्ताना ग़ज़लें नहीं गा सकती। शाख पर है तो उड़ जायगी, कफ़स में है तो मर जायगी। मैंने ख़ौफ़ से गुलशन को आबाद होते नहीं, वीरान देखा है। मेरा वतन कूफ़ा है, और मैं कूफ़ियों को खूब जानती हूँ। उन पर सख्तियाँ करके आप हुसैन को बुला रहे हैं। हुसैन कूफ़े में दाखिल हो गए, तो फिर आप हमेशा के लिए इराक़ से हाथ धो बैठेंगे। कूफ़ावाले रियायतों से, जागीरों से, वज़ीफ़ों से, थपकियों से क़ाबू में आ सकते हैं, सख्ती से नहीं। अगर एतबार न हो, तो मुझपर अपनी ताक़त आज़मा लो। अगर तुम्हारी दसों उँगलियाँ दस तलवारें हो जायँ, तो भी आप मेरे मुंह से एक सुर भी नहीं निकलवा सकते। कूफ़ा मुसीबत में मुब्तिला है, मैं यहाँ नहीं रह सकती। [प्रस्थान।]

□

तीसरा दृश्य

[कूफ़ा की अदालत—क़ाज़ी और अमले बैठें हुए हैं। क़ाज़ी के सिर पर अमामा है, बदन पर कबा, कमर में कमरबंद, सिपाही नीचे कुरते पहने हुए हैं। अदालत से कुछ दूर पर एक मसजिद है। मुक़द्दमे पेश हो रहे हैं। कई आदमी एक शरीफ़ आदमी की मुश्कें कसे लाते हैं।]

क़ाजी—इसने क्या ख़ता की है?

एक सिपाही—हुज़ूर, यह आदमी मसजिद में खड़ा लोगों से कह रहा था कि किसी को फ़ौज में न दाख़िल होना चाहिए।

क़ाजी—गवाह है?

एक आदमी—हुज़ूर, मैंने अपने कानों सुना है।

काजी—इसे ले जाकर क़त्ल कर दो।

मुलजिम—हुजूर, बिलकुल बेगुनाह हूँ। ये दोनों सिपाही मेरी दुकान से कपड़े उठाए लाते थे। मैंने छीन लिया, इस पर इन्होंने मुझे पकड़ लिया। हुजूर, मेरे पड़ोस के दूकानदारों से पूछ लें। बेगुनाह मारा जा रहा हूँ। मेरे बाल-बच्चे तबाह हो जायँगे।

काजी—इसे यहाँ से हटाओ।

मुलजिम—(**चिल्लाकर**) या रसूल, तुम क़यामत के लिए मेरा और इस क़ातिल का फ़ैसला करना।

[दोनों सिपाही उसे ले जाते हैं। मसजिद की तरफ़ से आवाज़ें आती है।]

आवाजें—"या ख़ुदा, हम बेकस तेरी बारगाह में फ़रियाद करने आए हैं। हमें ज़ालिमों के फ़ंदे से आज़ाद कर।"

[चार सिपाही पंद्रह-बीस आदमियों की मुश्कें कसे कोड़े मारते हुए लाते हैं।

काजी—इन पर क्या इलज़ाम है?

एक सिपाही—हुज़ूर, ये उन आदमियों में हैं, जिन्होंने हुसैन के पास क़ासिद भेजे थे।

काजी—संगीन जुर्म है। कोई गवाह?

एक सिपाही—हुज़ूर, कोई गवाह नहीं मिलता। शहरवालों के डर के मारे कोई गवाही देने पर राजी नहीं होता।

काजी—इन्हें हिरासत में रक्खो, और जब गवाह मिल जायँ, तो फिर पेश करो।

[सिपाही उन आदमियों को ले जाते हैं। फिर दो सिपाही एक औरत की दोनों कलाइयाँ बाँधे हुए लाते हैं।]

काजी—इस पर क्या इलज़ाम है?

एक सिपाही—हुज़ूर, जब हम लोग उन मुलज़िमों को गिरफ्तार कर रहे थे, जो अभी गए हैं, तो इसने ख़लीफ़ा को जालिम कहा था।

काजी—गवाह?

एक औरत—हुज़ूर, ख़ुदा इसका मुंह न दिखाए, बड़ी बदज़बान है।

काजी—इसका मकान जब्त कर लो, और इसके सर के बाल नोच लो।

मुलजिम औरत—खुदावंद, मेरी आँखें फूट जायँ जो मैंने किसी को कुछ कहा हो। यह औरत मेरी सौत है। इसने डाह से मुझे फँसा दिया है। खुदा गवाह है कि मैं बेक़सूर हूँ।

काजी—इसे फ़ौरन ले जाओ।

एक यूवक—(रोता हुआ) या क़ाजी, मेरी माँ पर इतना ज़ुल्म न कीजिए। आप भी तो किसी माँ के बच्चे हैं। अगर कोई आपकी माँ के बाल नोचवाता, तो आपके दिल पर क्या गुज़रती ?

काजी—इस मलऊन को पकड़कर दो सौ दुर्रे लगाओ।

[कई सिपाही आदमियों के गोल को बाँधे हुए लाते हैं।]

काजी—इन्होंने खुदा के किस हुक्म को तोड़ा है ?

एक सिपाही—हुज़ूर, ये सब आदमी सामनेवाली मसजिद में खड़े होकर रो रहे थे।

क़ाजी—रोना कुफ़्र हैं, इन सबों की आँखें फ़ोड़ डाली जायँ।

[सैंकड़ों आदमी मसजिद की तरफ़ तलवारें और भाले लिए दौड़े आते हैं, और अदालत को घेर लेते हैं।]

सुलेमान—क़त्ल कर दो इस मरदूद मक्कार को, जो अदालत के मसनद पर बैठा हुआ अदालत का ख़ून कर रहा है।

मूसा—नहीं, पकड़ लो। इसे ज़िंदा जलाएँगे।

[कई आदमी क़ाज़ी पर टूट पड़ते हैं।]

क़ाजी—शरा के मुताबिक मुसलमान पर मुसलमान का ख़ून हराम है।

सुलेमान—तू मुसलमान नहीं ! इन सिपाहियों में से एक भी न जाने पाए।

एक सिपाही—या सुलेमान, हमारी क्या ख़ता है ? जिस आक़ा के ग़ुलाम हैं, उसका हुक्म न मानें, तो रोटियाँ क्योंकर चलें ?

मूसा—जिस पेट के लिए तुम्हें ख़ुदा के बंदों को ईज़ा पहुँचानी पड़े, उसको चाक कर देना चाहिए।

[सिपाहियों और बाग़ियों में लड़ाई होने लगती है।]

सुलेमान—भाईयों, आपने इन ज़ालिमों के साथ वही सलूक किया, जो वाजिब था, मगर भूल न जाइए कि ज़ियाद इसकी इत्तिला यजीद को ज़रूर देगा, और हमें कुचलने के लिए शाम से फ़ौज आएगी। आप लोग उसका मुक़ाबला करने को तैयार हैं?

एक आवाज—अगर तैयार नहीं हैं, तो हो जायेंगे।

सुलेमान—हमने अभी तक यजीद की बैयत नहीं क़बूल की, और न करेंगे। इमाम हुसैन की खिदमत में बार-बार क़ासिद भेजे गए, मगर वह तशरीफ़ नहीं लाए। ऐसी हालत में हमें क्या करना चाहिए?

हानी—इसमें से चंद ख़ास आदमी ख़ुद जायं, और उन्हें साथ लाएं।

मुख्तार—हम लोगों ने रसूल की औलाद के साथ बार-बार ऐसी दग़ा की है कि हमारा एतबार उठ गया। मुझे खौफ़ है कि हज़रत हुसैन यहाँ हर्गिज न आएंगे।

सुलेमान—एक बार आख़िरी कोशिश करना हमारा फ़र्ज है। हम लोग चलकर उनसे अर्ज़ करें कि हम क़त्ल किए जा रहे हैं, लूटे जा रहे हैं, हमारी औरतों की आबरू भी सलामत नहीं। हमारी मुसीबत की कहानी सुनकर हुसैन को तरस आएगा, उनका दिल इतना सख्त नहीं हो सकता।

मुख्तार—मगर वह आपकी मुसीबतों पर तरस खाकर आए, और तुमने उनकी मदद न की, तो सब-के-सब रूस्याह कहलाओगे। हमने पहले जो दगाएं की हैं, उनका फल पा रहे हैं, और फिर वही हरकत की, तो हम दुनिया और दीन में कहीं भी मुंह न दिखा सकेंगे। खूब सोच लो, आखीर तक तुम अपने इरादे पर क़ायम रह सकोगे। अगर तुम्हारा दिल हामी भरे, तो मैं दावे से कह सकता हूं कि उन्हें खींच लाऊंगा। लेकिन अगर तुम्हारे दिल कच्चे हैं, तुम अपनी जानें निसार करने को तैयार नहीं हो, अगर तुम्हें खौफ़ है कि तुम लालच के शिकार बन जाओगे, तो तुम उन्हें मक्के में पड़ रहने दो।

हज्जाज—ख़ुदा की क़सम, हम उनके पैरों पर अपनी जानें निछावर

मुसलिम—गुस्ताख़ी तो है, पर आपका उन पर शक करना बेजा है। आख़िर आप उनकी वफ़दारी का और क्या सबूत चाहते हैं? वे क़समें खाते हैं, वादे करते हैं, साफ़ लिखते हैं कि आपकी मदद के लिए बीस हज़ार सूरमा तैयार बैठे हुए हैं। अब और क्या चाहिए?

ज़ुबेर—कम-से-कम मैं तो ऐसे सबूत पाकर पल की भी देर न करता।

अब्बास—मुझे तो इन क़ूफ़ियों पर उस वक्त भी एतबार न आएगा, अगर उनके बीसों हज़ार आदमी यहाँ आकर आपकी बैयत की क़सम खा लें। अगर वह क़ुरान शरीफ़ हाथ में लेकर क़समें खायें, तो भी मैं उनसे दूर भागूं।

[तारिक आता है।]

तारिक—अस्सलाम अलेक या हुसैन।

हुसैन—खुदा तुम पर रहमत करे। कहाँ से आ रहे हो?

तारिक—क़ूफ़ा के मज़लूमों ने अपनी फ़रियाद सुनाने के लिए आपकी खिदमत में भेजा है। आफ़ताब डूबते चला था, और आफ़ताब डूबते आया हूँ, और आफ़ताब निकलने के पहले यहाँ से जाना है।

मुसलिम—हवा पर आए हो या तख्तए-सुलेमान पर? क़सम है पाक रसूल की कि मैं उस घोड़े के लिए पाँच हज़ार दीनार पेश कर सकता हूँ।

तारिक—हुज़ूर, घोड़ी नहीं, साँड़नी है, जो सफ़र में खाना और थकना नहीं जानती।

[हुसैन के हाथ में ख़त देता है।]

हुसैन—(**ख़त पढ़कर**) आह, कितना दर्द-भरा ख़त है। ज़ालिमों ने दिल निकालकर रख दिया है। यह कितना ग़ज़ब का जुमला है कि अगर आप न आएँगे, तो हम आक़बत में आपसे इंसाफ़ का दावा करेंगे। आह! उन्होंने नाना का वास्ता दिया है। मैं नाना के नाम पर अपनी जान को यों फ़िदा कर सकता हूं, जैसे कोई हरीस अपना ईमान फ़िदा कर देता है। इतना ज़ुल्म! इतनी सख्ती! दिन-दहाड़े लूट!! दिन-दहाड़े औरतों की बेआबरूई! ज़रा-ज़रा-सी बात पर लोगों का क़त्ल किया जाना! अब्बास, अब मुझे सब्र की ताब नहीं है। मैं अपनी बैयत के लिए हर्गिज़ न जाता, पर मुसीबतज़दों की हिमायत के लिए न जाऊँ, यह मेरी ग़ैरत गँवारा नहीं करती।

मुसलिम—या बिरादर, आप इसका कुछ ग़म न करें, मैं इसी कासिद के साथ वहाँ जाऊँगा, और वहाँ की कैफ़ियत की इत्तिला दूँगा। मेरा ख़त देखकर आप मुनासिब फ़ैसला कीजिएगा !

हुसैन—तब तक यज़ीद उन ग़रीबों पर खुदा जाने क्या-क्या सितम ढाए। उसका अज़ाब मेरी गर्दन पर होगा। सोचो, जब क़यामत के दिन वे लोग फ़रियादी होंगे, तो मैं नाना को क्या मुंह दिखाऊँगा। वह जब मुझसे पूछेंगे कि तुझे जान इतनी प्यारी थी कि तूने मेरे बंदों पर जुल्म होते देखे, और ख़ामोश बैठा रहा, उस वक्त मैं उन्हें क्या जवाब दूँगा। मुसलिम, मेरा जी चाहता है कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ।

मुसलिम—मुझे तो इसका यक़ीन है कि सुलेमान-जैसा आदमी कभी दग़ा नहीं कर सकता।

जुबेर—हर्गिज़ नहीं।

मुसलिम—पर मैं यही मुनासिब समझता हूँ कि पहले वहाँ जाकर अपना इतमीनान कर लूँ।

हुसैन—बच्चों को ग़ैब का इल्म होता है। इसका फ़ैसला अली असग़र पर छोड़ दिया जाय। क्यों बेटा, मैं भी मुसलिम के साथ जाऊँ, या उनके ख़त का इंतज़ार करूँ ?

अली असगर—नहीं अब्बाजान, अभी, मुसलिम चाचा को ही जाने दीजिए। आप चलेंगे तो कई दिन तैयारियों में लग जायँगे। ऐसा न हो, इतने दिनों में वे बेचारे निराश हो जायँ।

अब्बास—बेटा, तेरी उम्र दराज़ हो। तूने ख़ूब फ़ैसला किया। खुदा तुझे बुरी नज़र से बचाए।

हुसैन—अच्छी बात है, मुसलिम, तुम सबेरे रवाना हो जाओ। अपने साथ पाँच गुलाम लेते जाओ। रास्ते में शायद इनकी ज़रूरत पड़े। मैं कूफ़ावालों के नाम यह ख़त लिख देता हूँ, उन्हें दिखा देना। इंशा अल्लाह, हम तुमसे जल्दी ही मिलेंगे। वहाँ बड़े एहतियात से काम लेना, अपने को छिपाए रखना और किसी ऐसे आदमी के घर उतरना जो सबसे ज्यादा एतबार के लायक हो। मेरे पास एक ख़त रोज़ाना भेजना।

मुसलिम—खुदा से दुआ कीजिए कि वह मेरी हिदायत करे। मैं बड़ी

कर देंगे।

हारिस—हम अपनी बदनामी के दाग़ मिटा देंगे।

मुख्तार—ख़ुदा को हाज़िर जानकर वादा करो कि अपने क़ौल पर क़ायम रहोगे।

कई आदमी—(**एक साथ**) अल्लाहोअकबर ! हम हुसैन पर फ़िदा हो जायँगे।

सुलेमान—तो मैं उनकी खिदमत में ख़त लिखता हूं।

[ख़त लिखता है।]

हज्जाज—इतना ज़रूर लिख देना कि हम आपके नाना मुहम्मद मुस्तफ़ा का वास्ता देकर अर्ज़ करते हैं कि हमारे ऊपर रहम कीजिए।

हारिस—यह और लिख देना कि हम बेशुमार अर्जियाँ आपकी खिदमत में भेज चुके, और आप तशरीफ़ न लाए। अगर आप अब भी न आए, तो हम कल कयामत के रोज़ रसूल के हज़ूर में आपका दामन पकड़ेंगे।

हज्जाज—और कहेंगे या ख़ुदा, हुसैन ने हम पर जुल्म किया था। क्योंकि हम पर जुल्म होते देखकर वह ख़ामोश बैठे रहे, तो उस वक्त आप क्या जवाब देंगे, और रसूल को क्या मुंह दिखाएँगे।

कीस—मेरे क़बीले में एक हज़ार जवान हैं, जो हुसैन के इंतज़ार में बैठे हुए हैं।

हज्जाज—शायद शाम तक ज़ियाद कुछ आदमी जमा कर ले।

हारिस—अभी वह ख़ामोश रहेगा। यज़ीद की फ़ौज आ जायगी, तब हमारे ऊपर हमला करेगा।

शिमिर—क्यों न लगे हाथ उसका भी ख़ातमा कर दें, क़िस्सा पाक हो ?

हारिस—वाह, अब तक वह यहाँ बैठा होगा ?

सुलेमान—मैंने सारी दास्तान लिख दी। कौन इस ख़त को ले जायगा।

शिमिर—मैं हाज़िर हूँ।

सुलेमान—किसके पास ऐसी साँड़नी है, जो थकान न जानती हो। जो इस तरह दौड़ सकती हो, जैसे ज़ियाद लूट के माल की तरफ़ ?

एक युवक—मेरे पास ऐसी साँड़नी है, जो तीन दिन में इस ख़त का

जवाब ला सकती है। यह ख़िदमत बजा लाने का हक़ मेरा है, क्योंकि मुझसे ज्यादा मजलूम और कोई न होगा, जिसकी मां के बाल काज़ी के हुक्म से अभी-अभी नोचे गए हैं।

सुलेमान—बेशक तुम्हारा हक़ सबसे ज़्यादा है। यह ख़त लो और इससे पहले कि हमारा पसीना ठंडा हो, मक्का की तरफ़ रवाना हो जाओ।

[युवक चला जाता है।]

[**सुलेमान**—आइए, हम लोग मसजिद में नमाज़ अदा कर लें। ख़त का जवाब तीन दिन में आयगा। हजरत हुसैन के आने में अभी एक महीने की देर है। ज़ियाद भी शायद उसके पहले नहीं लौट सकता। ये दिन हमें अपनी तैयारियों में सर्फ़ करने चाहिए, क्योंकि यज़ीद की खिलाफ़त का फ़ैसला कूफ़ा में होगा। या तो वह खिलाफ़त के मसनद पर बैठेगा, या जाहिलों की इबादत का मज़ार बनेगा। अगर कूफ़ा ने खिलाफ़त को नबी के ख़ानदान में वापस कर दिया, तो उसका नाम हमेशा रोशन रहेगा।

[सब जाते हैं।]

□

चौथा दृश्य

[स्थान—काबा, मरदाना बैठक। हुसैन, जुबेर, अब्बास, मुसलिम अली असगर आदि बैठे दिखाई देते हैं।]

हुसैन—यह पाँचवीं सफ़ारत है। एक हज़ार से ज्यादा ख़तूत आ चुके हैं। उन पर दस्तख़त करनेवालों की तादाद पंद्रह हज़ार से कम नहीं है।

मुसलिम—और सभी बड़े-बड़े क़बीलों के सरदार हैं। सुलेमान, हारिस, हज्जाज, शिमिर, मुख्तार, हानी, ये मामूली आदमी नहीं हैं।

जुबेर—मैं तो अर्ज कर चुका कि मुसल्लम ईराक़ आपकी बैयत क़बूल करने के लिए बेक़रार है।

हुसैन—मुझे तो अभी तक उनकी बातों पर एतबार नहीं होता। ख़ुदा जाने, क्यों मेरे दिल में उनकी तरफ़ से दग़ा का शुबहा घुसा हुआ है। मुझे हबीब की बातें नहीं भूलतीं, जो उसने चलते-चलते कही थीं।

भारी ज़िम्मेदारी लेकर जा रहा हूँ। सुबह की नमाज़ पढ़कर मैं रवाना होऊँगा। तब तक तारिक की साँड़िनी भी आराम कर लेगी।

[हुसैन ख़त लिखकर मुसलिम को देते हैं। मुसलिम दरवाजे की तरफ़ चलते हैं।]

हुसैन—(**मुसलिम के साथ दरवाज़े तक आकर**) रात तो अँधेरी है।

मुसलिम—उम्मीद की रोशनी तो दिल में है।

हुसैन—(**मुसलिम से बगलगी होकर**) अच्छा भैया, जाओ। मेरा दिल तुम्हारे साथ रहेगा। जो कुछ होनेवाला है, जानता हूँ। इसकी ख़बर मिल चुकी है। तक़दीर से कोई चारा नहीं। नहीं जानता, यह तक़दीर क्या है! अगर ख़ुदा का हुक्म है तो छुपकर, सूरत बदल कर, दग़ाबाज़ों की तरह क्यों आती है। खुदा क्या साफ़ और खुले हुए अल्फ़ाज़ में अपना हुक्म नहीं भेजता। अपने बेकस बच्चों का शिकार टट्टी की आड़ से क्यों करता है। जाओ, कहता हूं, पर जी चाहता है, न जाने दूँ। काश, तुम कह देते कि मैं न जाऊंगा। मगर तक़दीर ने तुम्हारी जबान बंद कर रक्खी है। अच्छा, रुख़सत। उम्मीद है कि अल्लाह हम दोनों को एक साथ शहादत का दर्जा देगा।

[मुसलिम बाहर चला जाता है। हुसैन आँखें पोंछते हुए हरम में दाखिल होते हैं।]

जैनब—भैया, आज फिर कोई क़ासिद आया था क्या?

हुसैन—हाँ जैनब, आया था। यज़ीद कूफ़ावालों पर बड़ा ज़ुल्म कर रहा है। मेरा वहाँ जाना लाज़िमी है। अभी तो मैंने मुसलिम को वहाँ भेज दिया है, पर फिर भी खुद जल्द जाना चाहता हूं।

जैनब—आपने एकाएक क्यों अपनी राय बदल दी? कम-से-कम मुसलिम के ख़त के आने का इंतजार कीजिए। मैं तो आपको हरगिज न जाने दूगी। आपको वह ख्वाब याद है, जो आपने रसूल की क़ब्र पर देखा था?

हुसैन—हाँ जैनब, ख़ूब याद है, और इसी वजह से में जाने की जल्दी कर रहा हूँ। उस ख्वाब ने मेरी तक़दीर को मेरे सामने खोलकर रख दिया। तक़दीर से बचने की भी कोई तदबीर है? ख़ुदा का हुक्म भी टल सकता है। ख़िलाफ़त की तमन्ना को दिल से मिटा सकता हूँ, पर ग़ैरत को तो नहीं

मिटा सकता। बेकसों की इमदाद से तो मुँह नहीं मोड़ सकता।

शहरबानू—आप जो कुछ करते हैं, उसमें खुदा और तक़दीर को क्यों खींच लाते हैं। जब आपको मालूम है कि कूफ़ा में लोग आपके दग़ा करेंगे, तो वहाँ जाइए ही क्यों ? तक़दीर आपको खींच तो न ले जायगी ? बेकसों की इमदाद जरूर आपका और आप ही का नहीं, हरएक इंसान का फ़र्ज है, लेकिन आपके कुनबे की भी तो कोई ख़बर लेनेवाला हो ? इंसान पर दुनिया से पहले खानदान का हक़ होता है।

हुसैन—ज़रा इस ख़त को पढ़ लो और तब कहो कि मैंने जो फ़ैसला किया है, वह मुनासिब है या नहीं। [शहरबानू के हाथ में ख़त देकर] देखा ! इससे क्या साबित होता है ? लेकिन जितने आदमियों ने इस पर दस्तख़त किए हैं, उसके आधे भी मेरे साथ हो जायँगे, तो यजीद का काफ़िया तंग कर दूँगा। इस्लाम की खिलाफ़त इतना आला रुतबा है कि उसकी कोशिश में जान दे देना भी जिल्लत नहीं। जब मेरे हाथों में एक स्याहकार बेदीन आदमी को सज़ा देने का मौक़ा आया है, तो उससे फ़ायदा न उठाना पहले सिरे की पस्तहिम्मती है। घर में आग लगते देखकर उसमें कूद पड़ना नादानी है, लेकिन पानी मिल रहा हो तो उससे आग न बुझाना उससे भी बड़ी नादानी है।

सकीना—मगर अब्बाजान, अब तो मुहर्रम का महीना आ रहा है। फूफीजान की बहुत दिनों से आरज़ू थी कि इस महीने में यहाँ रहती।

हुसैन—तुम लोगों को ले जाने का मेरा इरादा नहीं है।

जैनब—भैया, ऐसा भी हो सकता है कि आप वहाँ जायँ, और हम यहाँ रहें ! खुदा जाने, कैसी पड़े, कैसी न पड़े।

सकीना—अब्बाजान दिल्लगी करते हैं, और आप लोग सच समझ गईं।

कुलसूम—और कोई चले चाहे न चले, मैं तो जरूर ही जाऊँगी। मेरे दिल में लगी है कि एक बार यजीद को ख़ूब आड़े हाथों लेती।

सकीना—मैं अपनी फ़तह का कसीदा लिखने के लिए बेताब हूँ।

शहरबानू—आप समझते हैं कि हमारे साथ रहने से आपको तरद्दुद होगा, पर मैं पूछती हूँ, आपको वहाँ फँसाकर दुश्मनों ने इधर हमला कर

दिया, तो हमारी हिफ़ाजत की फ़िक्र आपको चैन लेने देगी ?

जैनब—असग़र हुड़क-हुड़ककर जान दे देगा।

सकीना—हम अपने ऊपर इस बदनामी का दाग़ नहीं लगा सकतीं कि रसूल के बेटों ने तो इस्लाम की हिमायत में जान दी, और बेटियाँ हरम में बैठी रहीं।

हुसैन—(**स्वगत**) शहरबानू ने मार्के की बात कही। अगर दुश्मनों ने हरम पर हमला कर दिया, तो हम वहां बैठे-बैठे क्या करेंगे ? इन्हें यहां छोड़ देना अपने क़िले की दीवार में शिग़ाफ़ कर देने से कम ख़तरनाक नहीं। (**प्रकट**) नहीं, मैं तुम लोगों पर जब्र नहीं करता, अगर चलना चाहती हो तो शौक़ से चलो।

□

पाँचवां दृश्य

[यज़ीद का दरबार। मुआविया बेड़ियाँ पहने हुए बैठा हुआ है। चार ग़ुलाम नंगी तलवारें लिए उसके चारों तरफ खड़े हैं। यज़ीद के तख़्त के क़रीब सरजून रूमी बैठा हुआ है।]

मुआबिया—(**दिल में**) नबी की औलाद पर यह ज़ुल्म ! मुझी से तो इसका बदला लिया जायगा। बाप का क़र्ज बेटे ही को तो अदा करना पड़ता है ! मगर मेरे ख़ून से इस ज़ुल्म का दाग़ न मिटेगा, हर्ग़िज नहीं। इस ख़ानदान का निशान मिट जायगा। कोई फातिहा पढ़नेवाला भी न रहेगा। आह ! नबी की औलाद पर यह ज़ुल्म ! जिनके क़दमों की खाक आँखों में लगानी चाहिए थी। तवाही के सामान हैं। ऐ रसूल पाक, मैं बेगुनाह हूँ, (**प्रकट**) आप जानते हैं मौलाना रूमी के वालिद का मुझे कब तक इंतजार करना पड़ेगा ?

रूमी—आते होंगे। ज़ियाद से कुछ बातें हो रही हैं।

मुआबिआ—वालिद मुझसे चाहते हैं कि मैं इस मार्के में शरीक हो जाऊँ, लेकिन अगर ज़ालिमों के हाथ से अख़्तियार छीनने के लिये, हक़ की हिमायत के लिये यह पहलू अख़्तियार किया जाता, तो सबसे पहले मेरी तलवार

म्यान से निकलती, सबसे पहले मैं जिहाद का झंडा उठाता, हक़ का खून करने के लिये मेरी तलवार कभी बाहर न निकलेगी, और मेरी जवान उस वक्त तक मलामत करती रहेगी, जब तक वह तालू से खींच न ली जाय। नवी की मसनद पर (**जिसने दुनिया को हिदायत का चिराग़ दिखलाया, जिसने इसलामी क़ौम की बुनियाद डाली**) उस शख्स को वैठने का मजाज नहीं है, जो दीन को पैरों-तले कुचलता हो, जो इंसानियत के नाम को दाग़ लगाता हो, चाहे वह मेरा बाप ही क्यों न हो। इस्लाम का ख़लीफ़ा उसे होना चाहिए जिस पर इंसानियत को ग़रूर हो, जो दीनदार हो, हक़परस्तहो, वेदार हो, बेलौस हो, दूसरों के लिये नमूना हो; जो ताक़त से नहीं, फ़ौज से नहीं, अपने कमाल से, अपने सिफ़ात से दूसरों पर अपना वक़ार जमाए।

[यज़ीद, ज़ुहाक़, ज़ियाद, शरीक, शम्स आदि आते हैं।]

यज़ीद—आप लोग देखिए, यह मेरा सपूत बेटा है, जो अपने बाप को कुत्ते से भी ज्यादा नापक समझता है। मेरी फूलों की सेज में यही एक काँटा है, मेरे नियामतों के थाल में यही एक मक्खी है। आप लोग इसे समझाएँ, इसे क़ायल करें, इसीलिये मैंने इसे यहाँ बुलाया है। इसको समझाइए कि ख़लीफ़ा के लिए दीनदारी से ज्यादा मुल्कदारी की जरूरत है। दीन मुल्लाओं के लिए है, बादशाहों के लिए नहीं। दीनदारी और मुल्कदारी दो अलग-अलग चीजें हैं, और एक ही जात में दोनो का मेल मुमकिन नहीं।

मुआविआ—अगर हुकूमत करने के लिये दीन और हक़ का खून करना जरूरी है, तो मैं गदागदी करने को उससे बेहतर समझता हूं। मुल्कदारी की मंशा इंसाफ़ और सच्चाई की हिफ़ाज़त करना है, उसका खून करना नहीं।

यज़ीद—आप लोग सुनते हैं इसकी बातें। यह मुझे मुल्कदारी का सबक़ सिखा रहा है। इसके सिर से अभी सौदा नहीं उतरा। इसे फिर वहीं ले जाओ। ऐसे आदमी को आजाद रखना ख़तरनाक है, चाहे वह तख्त का वारिस ही क्यों न हो। बाज हालतें ऐसी होती हैं, जब इंसान को अपने ही से बचाना जरूरी होता है। दीवाने को न रोको तो वह अपना गोश्त काट खाता है। (**गुलाम मुआविया को ले जाता है**) जियाद, अब तुम अपनी दास्तान कहो। जब तक तुम मुझे इसका यक़ीन न दिला दोगे कि तुम कूफ़ा से अपनी जान के ख़ौफ़ से नहीं, मेरे फ़ायदे के ख़याल से आए हो, मैं तुम्हें मुआफ़ न

करूँगा। ऐसे नाजुक मौके पर जब शहर में बग़ावत का हंगामा गर्म हो सल्तनत के हरएक मुलाजिम का, चाहे वह सूबे का आमिल हो या शाही महल का दरबान, यही फ़र्ज़ है कि वह अपनी जगह पर आखिर तक खड़ा रहे, चाहे उसका ज़िस्म तीरों से छलनी क्यों न हो जाय।

जियाद—या ख़लीफ़ा, मैं अपने फ़र्ज से वाक़िफ़ हूँ। पर मैं सिर्फ यह अर्ज़ करने के लिये हाज़िर हुआ हूँ, कि इस वक्त रियाया पर सख्ती करने से हालत और भी नाजुक हो जायगी। जब सल्तनत को किसी दूसरे मुद्दई का खौफ हो, तो बादशाह को रियाया के साथ नरमी का वर्ताव करके उसे अपना दोस्त बना लेना मुनासिब है। बिगड़ी हुई रियाया तिनके की तरह है, जो एक चिनगारी से जल उठती है। मेरी अर्ज़ है कि हमें इस वक्त रियाया का दिल अपने हाथ में कर लेना चाहिए, उनकी गरदनें एहसानों से दबा देनी चाहिए, ताकि वह सिर न उठा सके।

यज़ीद—मेरी फ़ौज बाग़ियों का सिर कुचलने के लिये काफ़ी है।

रूमी—नाज़ुक मौके पर अगर कोई चीज़ सल्तनत को बचा सकती है तो वह सख्ती है। शायद और किसी हालत में सख्ती की इतनी ज्यादा जरूरत नहीं होती।

ज़ुहाक़—बादशाह की रियाया उसकी ज़ौजा की तरह है। ज़ौजा पर हम निसार होते हैं, उसके तलवे सुहलाते हैं, उसकी बलाएँ लेते हैं, लेकिन ज़ब उसे किसी रकीब से मुख़ातिब होते देखते हैं तो उस वक्त उसकी बलाएँ नहीं लेते। हमारी तलवार म्यान से निकल आती है, और या तो रकीब की गरदन पर गिरती है या बीबी की गरदन पर या दोनों की गरदनों पर।

रूमी—बेशक, कूफ़ा को कुचल दो, कूफ़ा को कोफ्त कर दो।

यज़ीद—कूफ़ा को कोफ्त में डाल दो। यहाँ से जाते-ही-जाते फौजी क़ानून जारी कर दो। एक हजार आदमियों को तैयार रक्खो। जो आदमी ज़रा भी गर्म हो, उसे फौरन् क़त्ल कर दो। सरदारों को एकबारगी गिरफ्तार कर लो, फौज को रोजाना शहर में गश्त करने का हुक्म दो। सबकी ज़बान बंद कर दो, यहाँ तक कि कोई शायर शेर न पढ़ने पाए। मस्जिदों में खुतबे न होने पाएं। मकतबों में कोई लड़का न जाने पाए। रईसों को खूब

ज़लील करो। ज़िल्लत सबसे बड़ी सज़ा है।

[एक क़ासिद आता है।]

शम्स—कहाँ से आते हो?

क़ासिद—ख़लीफ़ा को मेरा सलाम हो। मुझे मक्का के अमीर ने आपकी ख़िदमत में यह अर्ज़ करने को भेजा है कि हुसैन का चचेरा भाई मुसलिम कूफ़ा की तरफ रवाना हो गया है।

यज़ीद—कोई ख़त भी लाया है?

क़ासिद—आमिल ने ख़त इसलिए नहीं दिया कि कहीं मुझे दुश्मन गिरफ्तार न कर लें।

यज़ीद—ज़ियाद, तुम इसी वक्त कूफ़ा चले जाओ। तुम्हें मेरे सबसे तेज़ घोड़े को ले जाने का अख्तियार है। अगर मेरा क़ाबू होता, तो तुम्हें हवा के घोड़े पर सवार कराता।

जियाद—ख़लीफ़ा पर मेरी जान निसार हो। मुझे इस मुहिम पर जाने से मुआफ़ रखिए। जुहाक़ या शम्स को तैनात फ़रमाएँ।

यज़ीद—इसके मानी यह हैं कि मैं अपनी एक आँख फोड़ लूँ।

रूमी—आख़िर तुम क्या चाहते हो?

जियाद—मेरा सवाल सिर्फ इतना है कि इस मौक़े पर रियाया के साथ मुलायमियत का बर्ताव किया जाय, सरदारों को जागीरें दी जायँ, उनके वजीफे बढ़ाए जायँ। यतीमों और बेवाओं की परवरिश का इंतजाम किया जाय। मैंने कूफ़ावालों की ख़सलत का ग़ौर से मुताला किया है, वे हयादार नहीं हैं, दिलेर नहीं हैं, दीनदार नहीं हैं। चंद ख़ास आदमियों को छोड़कर, सब-के-सब लोभी और खुदग़र्ज हैं। बात पर अड़ना नहीं जानते, शान पर मरना नहीं जानते। थोडे से फ़ायदे के लिए भाई भाई का गला काटने पर आमादा हो जाते हैं। कुत्तों को भगाने के लिए लाठी से ज्यादा आसान हड्डी का एक टुकड़ा होता है। सब-के-सब उस पर टूट पड़ते और एक दूसरे को भँभोड़ खाते हैं। ख़लीफा का ख़जाना दस-बीस हज़ार दीनारों के निकल जाने से खाली न हो जायगा, पर एक क़ौम हमारे हाथ आ जायगी। सख्ती कमजोरी के हक़ में वही काम करती है, जो ऐंठन तिनके के साथ। हम ऐंठन के बदले हवा के एक झोंके से तिनकों को बिखेर सकते हैं। फ़ौज से फ़ौज

कुचली जा सकती है, एक कौम नहीं।

रूमी—मैं तो हमेशा सख्ती का हामी रहा, और रहूँगा।

शरीक—कामिल हकीम वह है, जो मरीज़ के मिजाज़ के मुताबिक दवा में तबदीली करता रहे। आपने उस हकीम का क़िस्सा नहीं सुना जो हमेशा फस्द खोलने की तजवीज़ किया करता था। एक बार एक दीवाने का फ़स्द खोलने गया। दीवाने ने हक़ीम की गरदन इतने जोर से दबाई कि हकीम साहब की जबान बाहर निकल आई। मुल्कदारी के आईन मौक़े और जरूरत के मुताबिक़ बदलते रहते हैं।

यज़ीद—जियाद, मैं इस मुआमले में तुम्हें मुख्तार बनाता हूं। मुझे भी कुछ-कुछ अंदेशा हो रहा है कि कहीं हुसैन के बादे कूफ़ावालों को लुभा न लें। तुम जो मुनासिब समझो, करो। लेकिन याद रक्खो, अगर कूफ़ा गया तो तुम्हारी जान उसके साथ जायगी। यह शर्त मंजूर है ?

जियाद—मंजूर है।

यज़ीद—हुर को ताक़ीद कर दो कि बहुत नमाज़ न पढ़े, और मुसल्मि को इस तरह तलाश करे, जैसे कोई बखील अपनी खाई मुर्ग़ी को तलाश करता है। तुम्हारी नरमी कमज़ोरों की नरमी नहीं होनी चाहिए, जिसे खुशामद कहते हैं। उसमें हुकमत की शान क़ायम रहनी चाहिए। बस, जाओ।

[ज़ियाद, शरीक और क़ासिद चले जाते हैं।]

जुहाक़—नरगिस को बुलाओ, ज़रा ग़म ग़लत करे। (**गुलाब के हाथ से शराब का प्याला लेकर**) यह मेरी फ़तह का जाम है।

रूमी—मुबारक हो, (**दिल में**) जियाद तुम्हें डुबा देगा, तब नरमी का मजा मालूम होगा।

[नरगिस जुहाक़ की पीठ पर बैठी हुई आती है।]

यजीद—शाबाश नरगिस, शाबाश, क्या ख़ूब ख़च्चर है। इसकी कोई तशबीह (उपमा) देना शम्स।

शम्स—मुर्ग़ के सिर पर ताज है।

रूमी—लीद पर मक्खी बैठी हुई है।

नरगिस—(**गर्दन पर से कूदकर**) लाहौल-विला-कूवत।

यज़ीद—वल्लाह, इस तशबीह से दिल खुश हो गया। नरगिस, बस इसी बात पर एक मस्ताना ग़ज़ल सुनाओ। ख़ुदा तुम्हारे दीवानों को तुम पर निसार करे।

[नरगिस गाती है]

शबे-वस्ल वह रूठ जाना किसी का
वह रूठे को अपने मनाना किसी का,
कोई दिल को देखे न तिरछी नज़र से
ख़ता कर न जाए निशाना किसी का,
अभी थाम लोगे तुम अपने जिगर को
सुनो, तो सुनाएँ फ़िसाना किसी का,
ज़रा देख ले चलके सैयाद, तू भी
कि उठता है अब आब-दाना किसी का,
वह कुछ सोचकर हो लिए उसके पीछे
जनाज़ा हुआ जब रवाना किसी का,
बुरा वक्त जिस वक्त आता है 'बिस्मिल'
नहीं साथ देता ज़माना किसी का।

□

छठा दृश्य

[संध्या का समय। सूर्यास्त हो चुका है। कूफ़ा का शहर—कोई सारवान ऊंट का ग़ल्ला लिए दाख़िल हो रहे हैं।]

पहला—यार, गलियों से चलना, नहीं तो किसी सिपाही की नज़र पड़ जाय, तो महीनों बेगार झेलनी पड़े।

दूसरा—हाँ-हाँ; वे बला के मूज़ी हैं। कुछ लादने को नहीं होता, तो यों ही बैठ जाते हैं, और दस-बीस कोस का चक्कर लगाकर लौट आते हैं। ऐसा अँधेर पहले कभी न होता था। मजूरी तो भाड़ में गई, ऊपर से लात और गालियाँ खाओ।

तीसरा—यह सब महज़ पैसे आँटने के हथकंडे हैं। न जाने कहाँ के

आसानी से कामयाबी न होगी।

[सुलेमान का प्रवेश।]

सुलेमान—अस्सलामअलेक हज़रत मुसलिम आपको देखकर आँखें रोशन हो गईं। मेरे कबीले के सौ आदमी बैयत लेने को हाज़िर हैं। और सब-के-सब अपनी बात पर मिटनेवाले आदमी हैं।

मुसलिम—आपको खुदा नजात दे। इन आदमियों से कहिए, कल जामा मस्जिद में जमा हों। आपका ख़त पढ़कर भैया को बहुत रंज हुआ। उन्होंने तो फैसला कर लिया था कि रसूल के मज़ार पर बैठे हुए ज़िंदगी गुजार दें, पर आपके आख़िरी ख़त ने उन्हें बेक़रार कर दिया। सायल की हिमायत से वह कभी नहीं मुँह मोड़ सकते।

[शैंस, कीस, शिमर, साद और हज्जाज का प्रवेश।]

शैंस—अस्सलामअलेक हज़रत, आपको देखकर जिगर ठंडा हो गया।

क़ीस—अस्सलामअलेक, आपके कदमों से हमारे वीरान घर आबाद हो गए।

हज्जाज—अस्सलामलेक, आपको देखकर हमारे मुर्दा तन में जान आ गई।

मुसलिम—(**सबसे गले मिलकर**) हज़रत इमाम ने मुझे यह ख़त देकर आपकी खिदमत में भेजा है।

[शिमर ख़त को लेकर ऊँची आवाज़ से पढ़ता है और सब लोग सिर झुकाए सुनते हैं।]

शैंस—हमारे ज़हे नसीब, मैं तो अभी दस्तरख्वान पर था। ख़बर पाते ही आपकी ज़ियारत करने दौड़ा।

हज्जाज—मैं तो अभी-अभी बसरे से लौटा हूँ। दम भी न मारने पाया था कि आपके तशरीफ़ लाने की ख़बर पाई। मेरे क़बीले के बहुत से आदमी बैंयत लेने को बाहर खड़े हैं।

मुसलिम—उन्हें कल जामा मस्जिद में बुलाइए।

शिमर—वह कौन-सा दिन होगा कि मलऊन यज़ीद के जुल्म से नजात होगी।

शैंस—हज़रत हुसैन ने हम गरीबों की आवाज़ सुन ली। अब हमारे

बुरे दिन न रहेंगे।

कीस—हमारी क़िस्मत के सितारे अब रोशन होंगे। मेरी दिली तमन्ना है कि ज़ियाद का सिर अपने पैरों के नीचे देखूँ।

शिमर—मैंने तो मिन्नत मानी है कि मलऊन ज़ियाद के मुंह में कालिख लगाकर सारे शहर मे फिराऊँ।

क़ीस—मैं तो यज़ीद की नाक काटकर उसकी हथेली पर रख देना चाहता हूँ।

[हानी, कसीर और अशअस का प्रवेश]

हानी—या बिरादर हुसैन, आप पर, ख़ुदा की रहमत हो।

क़ीस—अल्लाहताला आप पर साया रक्खे। हम सब आपकी राह देख रहे थे।

मुसलिम—भाई साहब ने मुझे यह ख़त देकर आपकी तसक़ीन के लिए भेजा है।

[हानी ख़त लेकर आँखों से लगाता है, और आँखों में ऐनक लगाकर पढ़ता है।]

शिमर—अब ज़ियाद की ख़बर लूँगा।

क़ीस—मैं तो यजीद की आँखों में मिर्च डालकर उसका तड़पना देखूँगा।

मुसलिम—आप लोग भी कल अपने क़बीलेवालों को जामा मस्जिद में बुलाएँ। कल तीन-चार हज़ार आदमी आ जायँगे ?

शंस—ख़ुदा झूठ न बुलवाए, तो इसके दसगुने हो जायँगे।

हानी—नबी की औलाद की शान और ही है। वह हुस्न, वह इखलाक़, वह शराफ़त कहीं नज़र ही नही आती।

क़ीस—यजीद को देखो, ख़ासा हब्शी मालूम होता है।

हज्जाज—ज़ियाद तो खासा सारवान है।

मुसलिम—तो कल शाम को जामा मस्जिद में आने की ठहरी।

शिमर—तो हम लोग चलकर अपने क़बीलों को तैयार करें, ताकि जो लोग इस वक्त न हों वे भी आ जायँ।

[सब लोग चले जाते हैं।]

कुत्ते आके सिपाहियों में दाख़िल हो गए। छोटे-बड़े एक ही रंग के रँगे हुए हैं।

चौथा—अमीर के पास फ़रियाद लेकर जाओ तो उल्टे और बौछार पड़ती है। अजीब मुसीबत का सामना है। हज़रत हुसैन जब तक न आएँगे, हमारे सिर से यह बला न टलेगी।

[मुसलिम पीछे से आते हैं।]

मुसलिम—क्यों यारो, इस शहर में कोई ख़ुदा का बंदा ऐसा है जिसके यहाँ मुसाफ़िरों के ठहरने की जगह मिल जाय?

पहला—यहाँ के रईसों की कुछ न पूछो। कहने को दो-चार बड़े आदमी हैं, मगर किसी के यहाँ पूरी मजूरी नहीं मिलती। हाँ, ज़रा गालियाँ कम देते हैं।

मुसलिम—सारे शहर में एक भी सच्चा मुसलमान नहीं है।

दूसरा—जनाब, यहां कोई शहर के क़ाजी तो हैं नहीं। हाँ, मुख्तार की निस्बत सुनते हैं कि बड़े दीनदार आदमी हैं। हैसियत तो ऐसी नहीं, मगर ख़ुदा ने हिम्मत दी है। कोई ग़रीब चला जाय, तो भूखा न लौटेगा।

तीसरा—सुना है, उनकी जागीर ज़ब्त कर ली गई है।

मुसलिम—यह क्यों?

तीसरा—इसलिए कि उन्होंने अब तक यज़ीद की बैयत नहीं ली।

मुसलिम—तुममें से मुझे कोई उनके घर तक पहुँचा सकता है?

चौथा—जनाब, यह ऊँटनियों के दुहने का वक्त है। हमें फ़ुरसत नहीं। सीधे चले जाइए, आगे लाल मस्जिद मिलेगी। वहीं उनका मकान है।

मुसलिम—ख़ुदा तुम पर रहमत करे। अब चला जाऊँगा।

[मस्जिद के क़रीब मुख्तार का मकान]

मुसलिम—(**एक बुढ़े से**) यही मुख्तार का मकान है न?

बुढ़ा—जी हाँ, ग़रीब ही का नाम मुख्तार है। आइए, कहाँ से तशरीफ़ ला रहे हैं?

मुसलिम—मक्केशरीफ़ से।

मुख्तार—(**मुसलिम के गले से लिपटकर**) मुआफ़ कीजिएगा। बुढ़ापे की बीनाई शराबी की तोबा की तरह कमजोर होती है। आज बड़ा

मुबारक दिन है। बारे हज़रत ने हमारी फ़रियाद सुन ली। खैरियत से हैं न ?

मुसलिम—(**घोड़े से उतरकर**) जी हाँ, सब खुदा का फ़जल है।

मुख्तार—ख़ुदा जानता है, आपको देखकर आँखें शाद हो गईं। हजरत का इरादा कब तक आने का है ?

मुसलिम—(**ख़त निकालकर मुख्तार को देते हैं।**) इसमें उन्होंने सब कुछ मुफस्सल लिख दिया है।

मुख्तार—(**ख़त को छाती और आँखों से लगाकर पढ़ता है।**) खुशनसीब कि हज़रत के क़दमों से यह शहर पाक होगा। मेरी बैयत हाज़िर है, और मेरे दोस्तों की तरफ़ से भी कोई अंदेशा नहीं।

[ग़ुलाम को बुलाता है।]

ग़ुलाम—जनाब ने क्यों याद फ़रमाया ?

मुख्तार—देखो, इसी वक्त हारिस, हज्जाज, सुलेमान, शिमर, क़ीस, शैस और हानी के मकान पर जाओ, और मेरा यह रुक्क़ा दिखाकर जवाब लाओ।

[ग़ुलाम रुक्क़ा लेकर चला जाता है।]

मुख्तार—पहले मुझे ऐसा मालूम होता था कि हज़रत का कोई क़ासिद आएगा तो मैं शायद दीवाना हो जाऊँगा, पर इस वक्त आपको सामने देखकर भी ख़ामोश बैठा हुआ हूं। किसी शायर ने सच कहा है 'जो मज़ा इंतज़ार में देखा, वह नहीं वस्लेयार में देखा।' जन्नत का खयाल कितना दिलफ़रेब है, पर शायद उसमें दाखिल होने पर इतनी ख़ुशी न रहे। आइए, नमाज़ अदा कर लें। इसके बाद कुछ आराम फ़रमा लीजिए। फिर दम मारने की फ़ुरसत न मिलेगी।

[दोनों मकान के अंदर चले जाते हैं।]

[मुसलिम और मुख्तार बैठे हुए है।]

मुसलिम—कितने आदमी बैयत लेने के लिए तैयार हैं ?

मुख्तार—देखिए, सब अभी आ जाते हैं। अगर यजीद की जानिब से जुल्म और सख्ती इस तरह होती रही, तो हमारे मददगारों की तादाद दिन-दिन बढ़ती जायगी। लेकिन कहीं उसने दिलजोई शुरू कर दी, तो हमें इतनी

मुसलिम—(दिल में)ये सब कूफा के नामी सरदार हैं। हमारी फ़तह ज़रूर होगी, और एक बार तक़दीर को जक उठानी पड़ेगी। बीस हज़ार आदमियों की बैयत मिल गई तो फिर हुसैन को खिलाफ़त की मसनद पर बैठने से कौन रोक सकता है, ज़रूर बैठेंगे।

□

सातवाँ दृश्य

[कूफ़ा के चौक में कई दूकानदार बातें कर रहे हैं।]

पहला—सुना, आज हज़रत हुसैन तशरीफ़ लानेवाले हैं।

दूसरा—हाँ, कल मुख्तार के मकान पर बड़ा जमघट था। मक्का से कोई साहब उनके आने की खबर लाये हैं।

तीसरा—खुदा करे, जल्द आवें। किसी तरह इन जालिमों से पीछा छूटे। मैंने बैयत तो यजीद की ले ली है, लेकिन हज़रत आएँगे तो फ़ौरन् फिर जाऊँगा।

चौथा—लोग कहते थे, बड़ी धूम-धाम से आ रहे हैं। पैदल और सवार फ़ौजें हैं। खेमे वग़ैरह ऊँटों पर लदे हुए हैं।

पहला—दूकान बढ़ाओ, हम लोग भी चलें। तक़दीर में जो कुछ बिकना था, बिक चुका। आक़बत की भी तो फ़िक्र करनी चाहिए। (**चौंककर**) अरे बाजे की आवाजें कहाँ से आ रही हैं?

दूसरा—आ गए शायद।

[सब दौड़ते हैं। ज़ियाद का जलूस सामने से आता है। ज़ियाद मिंबर पर खड़ा हो जाता है।]

कई आवाजें—मुबारक हो, मुबारक हो, या हज़रत हुसैन!

ज़ियाद—दोस्तों, मैं हुसैन नहीं हूँ। हुसैन का अदना ग़ुलाम रसूल पाक के क़दमों पर निसार होनेवाला आपका नाचीज़ खादिम बिन ज़ियाद हूँ।

एक आवाज़—ज़ियाद है, मलऊन ज़ियाद है।

दूसरा—गिरा दो मिंबर पर से; उतार दो मरदूद को।

तीसरा—लगा दो तीर का निशाना। ज़ालिम की ज़बान बंद हो जाय।

चौथा—ख़ामोश, ख़ामोश। सुनो क्या कहता है?

ज़ियाद—अगर आप समझते हैं कि मैं ज़ालिम हूँ, तो बेशक, मुझे तीर का निशाना बनाइए, पत्थरों से मारिए, क़त्ल कीजिए, हाज़िर हूँ। ज़ालिम गर्दनज़दनी है, और जो ज़ुल्म बर्दाश्त करे, वह बेग़ैरत है। मुझे ग़रूर है कि आपमें ग़ैरत है, जोश है।

कई आवाज़ें—सुनो-सुनो, ख़ामोश।

ज़ियाद—हाँ, मैं ग़ैरत से, ग़ुरूर से नहीं डरता, क्योंकि यही वह ताक़त है जो किसी क़ौम को ज़ालिम के हाथ से बचा सकती है। ख़ुदा के लिए उस ज़ुल्म की नाक़दरी न कीजिए, जिसने आपकी ग़ैरत को जगाया। यही मेरी मंशा थी, यही यजीद की मंशा थी, और ख़ुदा का शुक्र कि हमारी तमन्ना पूरी हुई। अब हमें यक़ीन हो गया कि हम आपके ऊपर भरोसा कर सकते हैं। ज़ालिम उस्ताद की भी कभी-कभी ज़रूरत होती है। हज़रत हुसैन जैसा पाक-नीयत दीनदार बुज़ुर्ग आपको यह सबक़ न दे सकता था। यह हम-जैसे कमीना, ख़ुदगरज़ आदमियों ही का काम था। लेकिन अगर हमारी नीयत ख़राब होती, तो आप आज मुझे यहाँ खड़े होकर उन रियायतों का एलान करते न देखते, जो मैं अभी-अभी करनेवाला हूँ। इन एलानों से आप पर मेरे क़ौल की सच्चाई रोशन हो जायगी।

कई आवाज़ें—ख़ामोश-ख़ामोश, सुनो-सुनो।

ज़ियाद—ख़लीफ़ा यजीद का हुक्म है कि कूफ़ा और बसरा का हरएक बालिग़ मर्द पाँच सौ दिरहम सलाना ख़ज़ाने से पाए।

बहुत-सी आवाज़ें—सुभानअल्लाह, सुभानअल्लाह।

ज़ियाद—और कूफ़ा व बसरा की हरएक बालिग़ औरत दो सौ दिरहम पाए, जब तक उसका निकाह न हो।

बहुत-सी आवाज़ें—सुभानअल्लाह, सुभानअल्लाह।

ज़ियाद—और हरएक बेवा को सौ दिरहम सालाना मिलें, जब तक उसकी आँखें बंद न हो जायँ, या वह दूसरा निकाह न कर ले।

बहुत-सी आवाज़ें—सुभानअल्लाह, सुभानअल्लाह।

जियाद—यह मेरे हाथ में खलीफ़ा का फ़रमान है। देखिए, जिसे यक़ीन न हो। हरएक यतीम को बालिग़ होने तक सौ दिरहम सालान मुक़र्रर किया गया है। हरएक जवान मर्द और औरत को शादी के वक्त एक हज़ार दिरहम एकमुश्त खर्च के लिए दिया जायगा।

बहुत-सी आवाजें—ख़ुदा खलीफ़ा यज़ीद को सलामत रक्खे। कितनी फ़ैयाजी की है।

जियाद—अभी और सुनिए तब फ़ैसला कीजिए कि यजीद ज़ालिम है या रियाया-परवर ? उसका हुक्म है कि हरएक क़बीले के सरदार को दरिया के किनारे की उतनी ज़मीन अता की जाय जितनी दूर उसका तीर जा सके।

बहुत-सी आवाजें—हम यजीद की बैयत मंजूर करते हैं। यजीद हमारा खलीफ़ा है।

जियाद—नहीं, यज़ीद बैयत के लिए आपको रिश्वत नहीं देता। बैयत आपके अख्तियार में है, जिसे जी चाहे, दीजिए। यज़ीद हुसैन से दुश्मनी करना नहीं चाहता। उसका हुक्म है कि नदियों के घाट का महसूल मुआफ़ कर दिया जाय।

बहुत-सी आवाजें—हम यज़ीद को अपना खलीफ़ा तसलीम करते हैं।

जियाद—नहीं-नहीं, यज़ीद कभी हुसैन के हक़ को जायल न करेगा। हुसैन मालिक हैं, फ़ाजिल हैं, आबिद हैं, ज़ाहिद हैं; यज़ीद को इनमें से कोई सिफ़र रखने का दावा नहीं। यज़ीद में अगर कोई सिफ़त है, तो यह कि जुल्म करना जानता है। खासकर नाजुक वक्त पर, जब माल और जान की हिफ़ाजत करनेवाला कोई न हो, जब सब अपने हक़ और दावे पेश करने में मसरूफ़ हों।

बहुत-सी आवाजें—ज़ालिम यज़ीद ही हमारा अमीर है। दिल से उसकी बैयत क़बूल करते हैं।

जियाद—सोचिए, और ग़ौर से सोचिए। अगर खिलाफ़त के दूसरे दावेदारों की तरह यजीद भी किसी गोशे में बैठे हुए बैयत की फ़िक्र करते, तो आज मुल्क की क्या हालत होती ? आपकी जान व माल की हिफ़ाजत कौन करता ? कौन मुल्क को बाहर के हमलों से और अंदर की लड़ाइयों से

बचाता ? कौन सड़कों और बंदरगाहों को डाकुओं से महफ़ूज़ रखता ? कौन क़ौम की बहू-बेटियों की हुरमत का ज़िम्मेदार होता ? जिस एक आदमी की ज़ात से क़ौम और मुल्क को नाज़ुक मौक़े पर कितने फ़ायदे पहुँचे हों, और जिसने ख़लीफ़ा चुने जाने का इंतजार न करके ये बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियाँ सिर पर ले ली हों, क्या वह इसी क़ाबिल है कि उसे मलऊन और मरदूद कहा जाय, उसे सरे बाजार गालियाँ दी जायँ ?

एक आवाज—हम बहुत नादिम हैं। ख़ुदा हमारा गुनाह मुआफ़ करे।

शिमर—हमने ख़लीफ़ा यजीद के साथ बड़ी बेइंसाफ़ी की है।

ज़ियाद—हाँ, आपने ज़रूर बेइंसाफ़ी की है। मैं यह बिला ख़ौफ़ कहता हूँ, ऐसा आदमी इससे कहीं अच्छे बर्ताव के लायक़ था। हुसैन की इज्जत यजीद के और मेरे दिल में ज़रा भी कम नहीं है, जितनी और किसी के दिल में होगी। अगर आप उन्हें अपना ख़लीफ़ा तसलीम करते हैं, तो मुबारक हो। हम खुश, हमारा खुदा खुश। यजीद सबसे पहले उनकी बैयत मंज़ूर करेगा, उसके बाद मैं हूँगा। रसूल पाक ने ख़िलाफ़त के लिये इंतख़ाब की शर्त लगा दी है। मगर हुसैन के लिये इसकी क़ैद नहीं।

क़ीस—है। यह क़ैद सबके लिये एकसाँ है।

ज़ियाद—अगर है, तो इंतखाब का बेहतर और कौन मौक़ा होगा। आप अपनी रजा और रग़बत से किसी का लिहाज़ और मुरौवत किए बग़ैर जिसे चाहें, ख़लीफ़ा तसलीम कर लें। मैं कसरत राय को मानकर यजीद को इसकी इत्तला दे दूँगा।

एक तरफ़ से—हम यजीद को ख़लीफ़ा मानते हैं।

दूसरी तरफ़ से—हम यजीद की बैयत क़बूल करते हैं।

तीसरी तरफ़ से—यजीद, यजीद, यजीद।

ज़ियाद—ख़ामोश, हुसैन को कौन ख़लीफ़ा मानता है ?

[कोई आवाज नहीं आती।]

ज़ियाद—आप जानते हैं, यजीद आबिद नहीं।

कई आवाजें—हमें आबिद की ज़रूरत नहीं।

ज़ियाद—यजीद आलिम नहीं, फ़ाज़िल नहीं, हाफ़िज़ नहीं।

कई आवाजें—हमें आलिम-फ़ाज़िल की ज़रूरत नहीं।

हज्जाज—कितना फ़ैयाज है।

शिमर—किसी ख़लीफ़ा ने इतनी फ़ैयाज़ी नहीं की।

शैस—आबिद कभी फ़ैयाज़ नहीं होता।

अशअस—अजी, कुछ न पूछो, मस्जिदों के मुल्लाओं को देखो, रोटियों पर जान देते हैं।

ज़ियाद—अच्छा, यज़ीद को आपने अपना ख़लीफ़ा तो मान लिया, लेकिन हेजाज, मिस्र, यमन के लोग किसी और को ख़लीफ़ा मान लें, तो?

बहुत आवाज़ें—हम ख़लीफ़ा यज़ीद के लिये जान दे देंगे।

ज़ियाद—बहुत मुमकिन है कि हज़रत हुसैन ही को वे लोग अपना ख़लीफ़ा बनाएँ, तो आप अपना क़ौल निभाएँगे?

बहुत आवाज़ें—निभाएँगे। यज़ीद के सिवा और कोई ख़लीफ़ा नहीं हो सकता।

ज़ियाद—मैंने सुना है, हज़रत हुसैन ने अपने चचेरे भाई मुसलिम को आपकी बैयत लेने के लिये भेजा है। और शायद ख़ुद भी आ रहे हैं। यज़ीद को गोशे में बैठकर, ख़ुदा की याद करना इससे कहीं अच्छा मालूम होगा कि वह इस्लाम में निफ़ाक़ की आग भड़काएँ। अभी मौका है, आप लोग खूब गौर कर लें।

शिमर—हमने खूब ग़ौर कर लिया है।

हज्जाज—हुसैन को न-जाने क्यों ख़िलाफ़त की हवस है। बैठे हुए खुदा की इबादत क्यों नहीं करते?

क़ीस—हुसैन मदीना वालों के साथ जो सलूक़ करेंगे, वह कभी हमारे साथ नहीं कर सकते।

शैस—उनका आना बला का आना है।

ज़ियाद—अगर आप चाहते हैं कि मुल्क में अमन रहे, तो ख़बरदार, इस वक्त एक आदमी भी जामा मस्जिद में न जाय। हुसैन आएँ, हमारे सिर आँखों पर। हम उनकी ताजीम करेंगे, उनकी ख़िदमत करेंगे, लेकिन उन्हें ख़िलाफ़त का दावा पेश करते देखेंगे, तो मुल्क में अमन रखने के लिये हमें आपकी मदद की ज़रूरत होगी। यही आपकी आज़माइश का वक्त होगा, और इसी में पूरे उतरने पर इस्लाम की ज़िंदगी का दारमदार है।

[मिंबर पर से उतर आता है ।]

शंस—बड़ी ग़लती हुई कि हुसैन को ख़त लिखा ।

शिमर—मैं तो अब जामा मस्जिद न जाऊँगा ।

क़ीस—यहाँ कौन जाता है ।

शंस—काश, इन्हीं रियायतों का चंद रोज़ पहले एलान कर दिया गया होता, तो ख़त लिखने की नौबत ही क्यों आती ।

शिमर—दीन की फ़िक्र मोटे आदमी करें, यहाँ दुनिया की फ़िक्र काफी है ।

[सब जाते हैं ।]

□

आठवाँ दृश्य

[नौ बजे रात का समय । कूफ़ा की जामा मस्जिद । मुसलिम, मुख्तार, सुलेमान और हानी बैठे हुए हैं । कुछ आदमी द्वार पर बैठे हुए हैं ।]

सुलेमान—अब तक लोग नहीं आए ?

हानी—अब आने की कम उम्मीद है ।

मुसलिम—आज ज़ियाद का लौटना सितम हो गया । उसने लोगों को वादों के सब्ज़ बाग़ दिखाए होंगे ।

सुलेमान—इसी को तो सियासत का आईन कहते हैं ।

मुसलिम—इन जालिमों ने सियासत को ईमान से बिलकुल जुदा कर दिया है । दूसरे ख़लीफ़ों ने इन दोनों को मिलाया था । सियासत को दग़ा से पाक कर दिया था ।

मुखतार—हज़रत मुसलिम, अब आप अपनी तक़रीर शुरू कीजिए शायद लोग जमा हो जायँ ।

[मुसलिम मिंबर पर चढ़कर भाषण देते हैं ।]

मुसलिम—"शुक्र है उस पाक ख़ुदा का, जिसने हमें आज दीन इस्लाम के लिये एक ऐसे बुर्ज़ुग को ख़लीफ़ा चुनने का मौका दिया है, जो इस्लाम का सच्चा दोस्त..."

[बहुत-से आदमी मस्जिद में घुस पड़ते हैं।]

एक आदमी—बस हज़रत मुसलिम, ज़बान बंद कीजिए।

दूसरा आदमी—जनाब, आप चुपके से मदीने की राह लें। यज़ीद हमारे खलीफ़ा हैं, और यजीद हमारा इमाम है।

सुलेमान—मुझे मालूम है कि जियाद ने आज तुम्हारी पीठ पर खूब हाथ फेरे हैं; और हरी-हरी घास दिखाई है, पर याद रक्खो, घास के नीचे जाल बिछा हुआ है।

[बाहर से ईंट और पत्थर की वर्षा होने लगती है।]

एक आदमी—मारो-मारो, यह क़ौम का दुश्मन है।

सुलेमान—ज़ालिमों, यह ख़ुदा का घर है। इसकी हुरमत का तो ख़याल रक्खो।

दूसरा आदमी—ख़ुदा का घर नहीं; इस्लाम के दुश्मनों का अड्डा है।

तीसरा आदमी—मारो-मारो, अभी तक इसकी ज़बान बंद नही हुई।

[सुलेमान ज़ख्मी होकर गिर पड़ते हैं। मुसलिम बाहर आकर कहते हैं।]

"ऐ बदनसीब क़ौम, अगर तू इतनी जल्दी रसूल की नसीहतों को भूल सकती है, और तुझमें नेक व बद की तमीज़ नहीं रहीं, अगर तू इतनी जल्द जुल्म और जिल्लत को भूल सकती है, तो तू दुनिया में कभी सुर्ख़रू न होगी।"

एक आदमी—इस्लाम का दुश्मन है।

दूसरा आदमी—नहीं-नहीं, हजरत हुसैन के चचेरे भाई हैं। इनकी तौहीन मत करो।

तीसरा आदमी—इन्हें पकड़कर शहर की किसी अँधेरी गली में छोड़ दो। हम इनके खून से हाथ न रगेंगे।

[कई आदमीं मुसलिम पर टूट पड़ते और उन्हें खींचते हुए ले जाते हैं, और अँधेरे में छोड़ देते हैं।]

मुसलिम—(**दिल में**)ज़ालिमों ने कहाँ लाकर छोड़ दिया। कुछ नहीं सूझता। रास्ता नहीं मालूम। कहाँ जाऊँ? कोई आदमी नज़र नहीं आता कि उससे रास्ता पूछूं।

[हानी आता हुआ दिखाई देता है।]

मुसलिम —ऐ ख़ुदा के नेक बंदे, मुझे यहाँ से निकलने का रास्ता बता दो।

हानी—हज़रत मुसलिम ! क्या अभी आप यहीं खड़े हैं ?

मुसलिम—आप हैं, हानी ? रसूल पाक की क़सम, इस वक्त तन में जान पड़ गई। मुझे तो कई आदमियों ने पकड़ लिया, और यहाँ छोड़कर चल दिए ।

हानी—वे मेरे ही आदमी थे। मैंने वहाँ की हालत देखी, तो आपको वहाँ से हटा देना मुनासिब समझा। मैंने उन्हें तो ताक़ीद की थी कि आपको मेरे घर पहुँचा दें।

मुसलिम—पहले आपके आदमी होंगे, अब नही हैं। ज़ियाद की तक़रीर ने उन पर भी असर किया है।

हानी—ख़ैर, कोई मुज़ायका नहीं, मेरा मकान क़रीब है; आइए। हम सियासत के मैदान में जियाद से नीचा खा गए। उसने यह खबर मशहूर कर दी है कि हुसैन आ रहे हैं। इस हीले से लोग जमा हो गए, और उसे उनको फ़रेब देने का मौका मिल गया।

मुसलिम—मुझे तो अब चारों तरफ़ अँधेरा-ही-अंधेरा नजर आता है।

हानी—जिहाद की तक़रीर ने सूरत बदल दी। जिन आदमियों ने हजरत के पास ख़त भेजने पर जोर दिया था, वे भी फ़रेब में आ गए।

[सुलेमान और मुख्तार आते हैं। सुलेमान के सिर में पट्टी बँधी हुई है।]

मुखतार—शुक्र है, आप खैरियत से पहुँच गए। ज़ियाद के आदमी आपको तलाश करते फिरते हैं।

मुसलिम—हानी, ऐसी हालत में यहाँ रहकर मैं आपको ख़तरे में नहीं डालना चाहता। मुझे रुखसत कीजिए। रात को किसी मसजिद में पड़ रहूँगा।

हानी—मुआजअल्लाह, यह आप क्या फ़रमाते हैं ! यह आपका घर है। मैं और मेरा सब कुछ हज़रत हुसैन के क़दमों पर निसार है।

[शरीक का प्रवेश]

शरीक—अस्सलामअलेक या हजरत मुसलिम। मैं भी हुसैन के गुलामों में हूं।

हानी—हज़रत मुसलिम, आपने शरीक का नाम सुना होगा। आप हज़रत अली के पुराने खादिम हैं, और उनकी शान में कई क़सीदे लिख चुके हैं।

मुसलिम—(**शरीक से गले मिलकर**) ऐसा कौन बदनसीब होगा, जिससे आपका क़लाम न देखा गया हो।

शरीक—मैं हज़रत का खादिम और नबी का ग़ुलाम हूँ। बसेरेवालों की फ़रियाद लेकर यजीद के पास गया था। वहाँ मालूम हुआ कि आप मक्का से रवाना हो गए हैं। मैं जियाद के साथ ही इधर चल पड़ा कि शायद आपकी कुछ ख़िदमत कर सकूं। यजीद ने अब सख्ती की जगह नरमी और रियायत से काम लेना शुरू किया है। और आज ज़ियाद की तक़रीर का असर देखकर मुझे यक़ीन हो गया है कि यहाँ के लोग हज़रत हुसैन से जरूर दग़ा कर जायँगे। हमें भी फ़रेब का जवाब फ़रेब से ही देना लाजिम है।

मुसलिम—क्योंकर ?

शरीक—इसकी आसान तरकीब है। मैं ज़ियाद को अपनी बीमारी की ख़बर दूंगा। वह यहां मेरी मिज़ाज़-पुरसी करने ज़रूर आवेगा, आप उसे क़त्ल कर दीजिए।

मुसलिम—अल्लाहताला ने फ़रमाया है कि मुसलमान को मुसलमान का ख़ून करना जायज नहीं।

शरीक—मगर अल्लाहताला ने यह भी फ़रमाया है कि बेदीन को अमन देना सांप का पालना है।

मुसलिम—पर मेरी इंसानियत इसकी इज़ाजत नहीं देती।

शरीक—बेदीन को क़त्ल करना ऐन सवाब है। जिहाद में इंसानियत को दख़ल नहीं, हक़ का रास्ता डाकुओं और लुटेरों से खाली नहीं है। और उनका ख़ौफ है, तो इस रास्ते पर क़दम ही न रखना चाहिए। आप इस मामले को सोचिए।

[बाहर से आदमियों का एक गिरोह हानी का दरवाज़ा तोड़कर

अंदर घुस आता है।]

एक अदामी—इन्हीं ने हुसैन को ख़त लिखा था। पकड़ लो इन्हें।

मुसलिम—(**सामने आकर**) यहाँ से चले जाओ।

दूसरा आदमी—यही हज़रत मुसलिम हैं। इन्हें गिरफ्तार कर लो।

मुसलिम—हाँ, मैं ही मुसलिम हूँ। मैं ही तुम्हारा ख़तावार हूँ। अगर चाहते हो, तो मुझे क़त्ल करो। (**कमर से तलवार फेंककर**) यह लो, अब तुम्हें मुझसे कोई खौफ़ नहीं है। अगर तुम्हारा ख़लीफ़ा मेरे ख़ून से खुश हो, तो उसे खुश करो। मगर खुदा के लिए हुसैन को लिख दो कि आप यहाँ न आएँ। उन्हें खिलाफ़त की हवस नहीं है। उनकी मंशा सिर्फ आपकी हिमायत करना था। वह आप पर अपनी जान निसार करना चाहते थे। उनके पास फौज नहीं थी, हथियार नहीं थे, महज़ आपके लिए अपनी जान देने का जोश था, इसीलिए उन्होंने अपने गोशे को छोड़ना मंजूर किया। अब आपको उनकी ज़रूरत नहीं है, तो उन्हें मना कर दीजिए कि यहाँ मत आओ। उन्हें बुलाकर शहीद कर देने से आपको नदामत और अफ़सोस के सिवा और कुछ हाथ न आएगा। उनकी जान लेनी मुश्किल नहीं; यहाँ की क़ैफ़ियत देखकर वह इस सदमे से ख़ुद ही मर जायँगे। वह इसे आपका कसूर नहीं, अपना क़सूर समझेंगे कि वही उम्मत, जो मेरे नाना पर जान देती थी, अगर आज मेरे खून की प्यासी हो रही है, तो यह मेरी ख़ता है। यह ग़म उनका काम तमाम कर देगा। आपका और आपके अमीर का मंशा ख़ुद-ब-ख़ुद पूरा हो जायगा। बोलो, मंजूर है? उन्हें लिख दूँ कि आपने जिनकी हिमायत के लिए शहीद होना क़बूल किया था, वह अब आपको शहीद करने की फ़िक्र में हैं। आप इधर रुख़ न कीजिए।

[कोई नहीं बोलता।]

ख़ामोशी नीम रज़ा है। आप कहते हैं कि यह क़ैफियत उन्हें लिख दी जाय।

कई आवाजें—नहीं, नहीं, इसकी ज़रूरत नहीं।

मुसलिम—तो क्या आप यहीं उनकी लाश को अपनी आँखों के सामने तड़पती देखना चाहते हैं?

एक आवाज—मुआजअल्लाह, हम हज़रत हुसैन के क़ातिल न होंगे।

मुसलिम—ऐसा न कहिए, वरना रसूल को जन्नत में भी तकलीफ होगी। आप अपनी खरज के गुलाम हैं, दौलत के गुलाम हैं। रसूल ने आपको हमेशा सब्र और संतोष की हिदायत की। आप जानते हैं वह खुद कितनी सादगी से जिंदगी बसर करते थे। आपको पहले खलीफ़ा का हाल मालूम है, हज़रत फ़ारूक़ के हालात से भी आप वाक़िफ़ हैं। अफ़सोस! आप उस वसूल को भूल गए, जो तवहीद के बाद इस्लाम का सबसे पाक वसूल है, वरना आप वसीकों और जागीरों के जाल में न फँस जाते। आपने एक पल के लिए भी खयाल नहीं किया कि वे जागीरें और वसीक़े किसके घर से आएँगे। दूसरों से, जो कई पुश्तों से अपनी ज़मीन पर क़ाबिज़ हैं, वे ज़मीनें छीनकर आपको दी जायँगी। दूसरों से जबरन् रुपए वसूल करके आपको वसीक़े दिए जायँगे। आपको खुश करने के लिए दूसरों को तबाह करने का बहाना हाथ आ जायगा। आप अपने भाइयों के हक़ छीनकर अपनी हवस की प्यास बुझाना चाहते हैं। दीन-परवरी नहीं है, यह भाई-बंदी नहीं है, इसका कुछ और ही नाम है।

कई आवाज़ें—नहीं-नहीं, हम हराम का माल नहीं चाहते।

मुसलिम—मैं यज़ीद का दुश्मन नहीं हूँ। मैं ज़ियाद का दुश्मन नहीं हूँ; मैं इस्लाम का दोस्त हूँ। जो आदमी इस्लाम को पैरों से कुचलता है, चाहे वह यजीद हो, ज़ियाद हो, या खुद हुसैन हो, उसका दुश्मन हूँ। जो शख्स क़ुरान की और रसूल की तौहीन करता है, वह मेरा दुश्मन है।

कई आवाज़ें—हम भी उसके दुश्मन हैं। वह मुसलमान नहीं काफ़िर हैं।

मुसलिम—बेशक, और कोई मुसलमान, अगर वह मुसलमान है, काफ़िर को खलीफ़ा न तस्लीम करेगा, चाहे वह उसका दामन हीरे व जवाहिर से भर दे।

कई आवाज़ें—बेशक, बेशक।

मुसलिम—उससे एक सच्चा दीनदार आदमी कहीं अच्छा खलीफ़ा होगा, चाहे वह चिथड़े ही पहने हुए हो।

कई आवाज़ें—बेशक, बेशक।

मुसलिम—तो अब आप तसलीम करते हैं कि खलीफ़ा उसे होना चाहिए जो इस्लाम का सच्चा पैरो हो। वह नहीं, जो एक का घर लूटकर दूसरे

का दिल भरता हो।

कई आदमी—बेशक, बेशक।

मुसलिम—किसी मुसलमान के लिए इससे बड़ी शरम की बात नहीं हो सकती कि वह किसी को महज़ दौलत या हुकूमत की बदौलत अपना इमाम समझे। इमाम के लिए सबसे बड़ी शर्त क्या है? इस्लाम का सच्चा पैरो होना। इस्लाम ने दौलत को हमेशा हक़ीर समझा है। वह इस्लाम की मौत का दिन होगा, जब वह दौलत के सामने सिर झुकाएगा। खुदा हमको और आपको वह दिन देखने के लिए ज़िंदा न रक्खे। हमारा दुनिया से मिट जाना इससे कहीं अच्छा है। तुम्हारा फ़र्ज है कि बैयत लेने से पहले तहक़ीक़ कर लो, जिसे तुम खलीफ़ा बना रहे हो, वह रसूल की हिदायतों पर अमल करता है या नहीं। तहक़ीक़ करो, वह शराब तो नहीं पीता।

कई आदमी—क्या तहक़ीक़ करना तुम्हारा काम है। जाँच करो कि तुम्हारा ख़लीफ़ा ज़िनाकार तो नहीं?

कई आदमी—क्या यज़ीद ज़िनाकार है?

मुसलिम—यह जांच करना तुम्हारा काम है। दर्याफ्त करो कि वह नमाज़ पढ़ता है, रोजे रखता है, आलिमों की इज्जत करता है, खज़ाने का बेजा इस्तेमाल तो नहीं करता? अगर इन बातों की जांच किए बग़ैर तुम महज़ जागीरों और वसीकों की उम्मीद पर किसी की बैयत क़बूल करते हो, तुम तो क़यामत के रोज़ खुदा के सामने शर्मिंदा होगे। जब वह पूछेगा कि तुमने इंतखाब के हक़ का क्यों बेजा इस्तेमाल किया, तो तुम कैसे क्या जवाब दोगे? जब रसूल तुम्हारा दामन पकड़कर पूछेंगे कि तुमने उसकी अमानत को, जो मैंने तुम्हें दी थी, क्यों मिटा दिया, तो तुम उन्हें कौन-सा मुँह दिखाओगे?

कई आदमी—हमें ज़ियाद ने धोखा दिया। हम यजीद की बैयत से इनकार करते हैं।

मुसलिम—पहले ख़ूब जांच लो। मैं किसी पर इलज़ाम नहीं लगाता। कौन खड़ा होकर कह सकता है कि यजीद इन बुराइयों से पाक है।

कई आदमी—हम जाँच कर चुके।

मुसलिम—तो तुम्हें किसकी बैयत मंजूर है?

ज़ियाद—खुदा किसी ग़रीब को बेवतनी में मरीज़ न बनाए। हानी मैंने सुना है, मुसलिम मक्के से यहाँ आए हैं। ख़लीफा ने मुझे सख्त ताक़ीद की है कि उन्हें गिरफ्तार कर लूँ। आप शहर के रईस हैं, उनका कुछ सुराग़ मिले, तो मुझे इत्तिला दीजिएगा। मुझे आपके ऊपर पूरा भरोसा है। आप समझ सकते हैं कि उनके आने से मुल्क में कितना शोर-शर पैदा होगा। क़सम है कलाम पाक की, इस वक्त जो उनका सुराग़ लगा दे, उसका दामन जवाहरात से भर दूँ। मैं इसी फ़िक्र में जाता हूं। आप भी तलाश में रहिए।

[चला जाता है।]

शरीक—हज़रत मुसलिम, आपसे आज जो ग़लती हुई है, उस पर आप मरते दम तक पछताएंगे, और आपके बाद मुसलमान कौम इसका खा़मियाजा उठाएगी। तुम क़यास नहीं कर सकते कि तुमने इस्लाम को आज कितना बड़ा नुकसान पहुंचाया है। शायद खुदा को यही मंजूर है कि रसूल का लगाया हुआ बाग़ यजीद के हाथों बरबाद हो जाय।

मुसलिम—शरीक, मैंने कभी दग़ा नहीं की, और मुझे यक़ीन है कि हजरत हुसैन मेरी इस हरकत को कभी पसंद न करते। इस्लाम का दरख्त हक़ के बीज से उगा है। दग़ा से उसकी आबपाशी करने में अंदेशा है कि कहीं दरख्त सूख न जाय। हक़ पर क़ायम रहते हुए अगर इस्लाम का नामोनिशान दुनिया से मिट जाय, तो भी इससे कहीं बेहतर है कि उसे जिंदा रहने के लिए दग़ा का सहारा लेना पड़े। **(हानी से)** भाई साहब को इत्तिला दे दूँ कि यहाँ अठारह हजार आदमियों ने आपकी बैयत क़बूल कर ली है।

हानी—ज़रूर। मेरा गुलाम इस ख़िदमत के लिए हाज़िर है।

मुसलिम—**(दिल में)** यह ग़ैरमुमकिन है कि इतने आदमी बैयत लेकर फिर उसे तोड़ दें। कल मुझे चारों तरफ अंधेरा-ही-अंधेरा नजर आता था। आज चारों तरफ रोशनी नज़र आती है। मेरी ही तहरीक पर हुसैन यहाँ आने के लिए राजी हुए। खुदा का हज़ार शुक्र है कि मेरा दावा सही निकला, और मेरी उम्मीद पूरी हुई।

□

दसवाँ दृश्य

[संध्या का समय। ज़ियाद का दरबार।]

ज़ियाद—तुम लोगों में ऐसा एक आदमी भी नहीं है, जो मुसलिम का सुराग़ लगा सके। मैं वादा करता हू कि पाँच हज़ार दीनार उसकी नज़र करूंगा।

एक दरबारी—हुजूर, कहीं सुराग़ नहीं मिलता। इतना पता तो मिलता है कि कई हज़ार आदमियों ने उनके हाथ पर हुसैन की बैयत की है। पर वह कहाँ ठहरे हैं, इसका पता नहीं चलता।

[मुअक्किल का प्रवेश।]

मुअक्किल—हुजूर को खुदा सलामत रक्खे, एक खुशखबरी लाया हूँ। अपना ऊंट लेकर शहर के बाहर चारा काटने गया था कि एक आदमी को बड़ी तेजी से साँड़नी पर जाते देखा। मैंने पहचान लिया, वह साँड़िनी हानी की थी। उनकी खिदमत में कई साल रह चुका हूँ। शक हुआ कि यह आदमी इधर कहाँ जा रहा है। उसे एक हीले से रोककर पकड़ लिया। जब मारने की धमकी दी, तो उसने क़बूल किया कि मुसलिम का ख़त लेकर मक्के जा रहा हूं। मैंने वह ख़त उससे छीन लिया, यह हाजिर है। हुक्म हो, तो क़ासिद को पेश करूं।

ज़ियाद—(**ख़त पढ़कर**) क़सम खुदा की, मैं मुसलिम को जिंदा न छोड़ूंगा। मैं यहाँ मौजूद रहूँ, और अठारह हज़ार आदमी हुसैन की बैयत क़बूल कर लें (**कासिद से**) तू किसका नौकर है?

क़ासिद—अपने आक़ा का।

ज़ियाद—तेरा आक़ा कौन है?

क़ासिद—जिसने मुझे मिस्त्रियों के हाथ से खरीदा था।

ज़ियाद—किसने तुझे खरीदा?

क़ासिद—जिसने रुपए दिए?

ज़ियाद—किसने रुपए दिए?

कई आवाज़ें—हुसैन की ! रसूल के नवासे की ।

मुसलिम—उनके बारे में तुमने उन बातों की जाँच कर ली ? तुम्हें यक़ीन है कि हुसैन उन बुराइयों से पाक है ?

कई आवाज़ें—हमने जांच कर ली । हुसैन में कोई बुराई नहीं । हम हुसैन को अपना ख़लीफा तस्लीम करते हैं । ज़ियाद ने हमें गुमराह कर दिया था ।

एक आदमी—पहले ज़ियाद को क़त्ल कर दो ।

दूसरा आदमी—बेशक, उसी ने गुमराह किया था ।

मुसलिम—नहीं, तुम्हें रसूल का वास्ता है । मोमिन पर मोमिन का ख़ून हराम है ।

[सब आदमी वहीं बैठ जाते हैं, और मुसलिम के हाथों पर हुसैन की बैयत करते हैं ।]

नवाँ दृश्य

[दोपहर का समय । हानी का मकान । शरीक एक चारपाई पर पड़े हुए हैं । सामने ताक़ पर शीशियां और दवा के प्याले रक्खे हुए हैं । मुसलिम और हानी फ़र्श पर बैठे हैं ।]

शरीक—ज़ियाद अब आता ही होगा । मुसलिम, तलवार को तेज रखना ।

हानी—मैं खुद उसे क़त्ल करता, पर जईफ़ी ने हाथों में क़ूबत बाक़ी नहीं रक्खी ।

शरीक—इसमें पसोपेश की मुतलक जरूरत नहीं । हक़ की हिमायत के लिए, इस्लाम की हिमायत के लिए, क़ौम की हिमायत के लिए, अगर खून का दरिया बहा दिया जाय, तो उसमें फ़रिश्ते वजू करेंगे । औलिया की रूहें उसमें नहाएँगी । जो हाथ हक़ की हिमायत में न उठे, वह अंधी आँखों से, बुझे हुए चिराग़ से, दिन के चाँद से भी ज्यादा बेकार है । इस्लाम की ख़िदमत का इससे बेहतर मौक़ा आपको फिर न मिलेगा । शायद फिर

कभी किसी को न मिलेगा। कूफ़ा और बसरा पर क़ब्जा करके आप यजीद की बड़ी-से-बड़ी फ़ौज का मुक़ाबला कर सकते हैं। यजीद की खिलाफ़त इस्लाम को दुनियादारी और इस्लाम की तरफ ले जायगी, और हुसैन की खिलाफ़त हक़ और सच्चाई की तरफ। क्या यह आपको मंजूर है कि यजीद के हाथों इस्लाम तबाह हो जाय।

[ज़ियाद आता है और मुसलिम बग़ल की कोठरी में छिप जाते हैं।]

ज़ियाद—अस्सलामअलेक या शरीक, तुम्हारी हालत तो बहुत ख़राब नज़र आती है।

हानी—कल से आँखें नहीं खोलीं। सारी रात कराहते गुज़री है।

शरीक—खुदा फ़रमाता है, 'हक़ के वास्ते जो तलवार उठाता है, उसके लिए जन्नत का दरवाजा खुला हुआ है।'

ज़ियाद—शरीक, शरीक ! कैसी तबियत है ?

शरीक—शौक़ कहता था कि हाँ, हसरत यह कहती थी, नहीं,
मैं इधर मुश्किल में था, कातिल उधर मुश्किल में था।

हानी—आँखें खोलो। अमीर तुम्हारी मुलाक़ात को आए हैं।

शरीक—सल्ब की कूवत, तड़पने की, तड़पता किस तरह,
एक दिल में दूसरा खंजर क़फे-क़ातिल में था।

ज़ियाद—क्या रात भी इनकी यही हालत थी ?

हानी—जी हाँ, यों ही बकते रहे।

शरीक—गले पर छुरी क्यों नहीं फेर देते,
हकीकत पर अपनी नज़र करने वाले।

ज़ियाद—किसी हकीम को बुलाना चाहिए।

शरीक—कौन आया है, ज़ियाद !
हुजूमे-आरज़ू से बढ़ गईं बेताबियाँ दिल की,
अरे वो छिपनेवाले यह हिजाबे जाँ सिताँ कबतक

ज़ियाद—तुम्हारे घरवालों को ख़बर दी जाय ?

शरीक—मैं यहीं मरूंगा, मैं यहीं मरूंगा।
मेरी खुशी पर आसमाँ हंसता है, और हंसे न क्यों,
बैठा हूं जाके चैन से दोस्त की बज्मे-नाज़ में।

क़ासिद—मेरे आक़ा ने।

ज़ियाद—तेरा आक़ा कहाँ रहता है?

क़ासिद—अपने घर में।

ज़ियाद—उसका घर कहाँ है?

क़ासिद—जहाँ उसके बुजुर्गों ने बनवाया था।

ज़ियाद—कसम खुदा की, तू एक ही शैतान है। मैं जानता हूं कि तुझ जैसे आदमियों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए। (**जल्लाद से**) इसे ले जाकर कत्ल कर दे।

मुअक्किल—हुजूर, मैं खूब पहचानता हूं कि यह साँड़नी हानी की है।

ज़ियाद—अगर तू मुसलिम का सुराग़ लगा दे, तो तुझे आज़ाद कर दूं, और पाँच हज़ार दीनार इनाम दूं।

मुअक्किल—(**दिल में**) ये बड़े-बड़े हाकिम बड़ी-बडी थैलियाँ हड़प करने के ही लिए हैं। अक्ल खाक नहीं होती। जब साँड़नी मौजूद है, तो उसके मालिक का पता लगाना क्या मुश्किल है? आज किसी भले आदमी का मुँह देखा था। चलकर साँड़नी पर बैठ जाता हूं, और उसकी नकेल छोड़ देता हूं। आप ही अपने घर पहुंच जायगी। वहीं मुसलिम का पता लग जायगा।

[चला जाता है।]

ज़ियाद—(**दिल में**) अगर यह साँड़नी हानी की है, तो साफ़ जाहिर है कि वह भी इस साजिश में शरीक हैं। मैं अब तक उसे अपना दोस्त समझता था। खुदा, कुछ नहीं मालूम होता कि कौन मेरा दोस्त है, और कौन दुश्मन! मैं अभी उसके घर गया था। अगर शरीक भी हानी का मददगार है तो यही कहना पड़ेगा कि दुनिया में किसी पर भी एतबार नहीं किया जा सकता।

□

ग्यारहवाँ दृश्य

[दस बजे रात का समय। ज़ियाद के महल के सामने सड़क पर सुलेमान, मुख्तार और हानी चले आ रहे हैं।]

सुलेमान—ज़ियाद के बर्ताव में अब कितना फ़र्क नज़र आता है।

मुख्तार—हाँ, वरना हमें मशविरा देने के लिए क्यों बुलाता।

हानी—मुझे तो खौफ़ है कि उसे मुसलिम की बैंयत लेने की ख़बर मिल गई है। कहीं उसकी नीयत ख़राब न हो।

मुख्तार—शक और एतबार साथ-साथ नही होता। वरना वह आज आपके घर न जाता।

हानी—उस वक्त भी शायद भेद लेने ही के इरादे से गया हो। मुझसे ग़लती हुई कि अपने क़बीले के कुछ आदमियों को साथ न लाया, तलवार भी नही ली।

सुलेमान—यह आपका वहम है।

[ज़ियाद के मकान में वे सब दाखिल होते हैं। वहाँ क़ीस, शिमर, हज्जाज आदि बैंठे हुए हैं।]

ज़ियाद—अस्सलामअलेक। आइए, आप लोगों से एक खास मुआमले में सलाह लेनी है। क्यों शेख हानी, आपके साथ ख़लीफ़ा यजीद ने जो रियायतें कीं, क्या उनका यह बदला होना चाहिए था कि आप मुसलिम को अपने घर में ठहराएँ, और लोगों को हुसैंन की बैंयत लेने पर आमादा करें? हम आपका रुतबा और इज़्ज़त बढ़ाते हैं, और आप हमारी जड़ खोदने की फ़िक्र में हैं?

हानी—या अमीर, खुदा जानता है, मैंने मुसलिम को खुद नहीं बुलाया, वह रात को मेरे घर आए, और पनाह चाही। यह इंसानियत के ख़िलाफ़ था कि मैं उन्हें घर से निकाल देता। आप खुद सोच सकते हैं कि इसमें मेरी क्या खता थी।

ज़ियाद—तुम्हें मालूम था कि हुसैन ख़लीफा यजीद के दुश्मन हैं।

हानी—अगर मेरा दुश्मन भी मेरी पनाह में आता तो में दरवाज़ा बंद न करता।

ज़ियाद—अगर तुम अपनी ख़ैरियत चाहते हो, तो मुसलिम को मेरे हवाले कर दो। वरना कलाम पाक की क़सम, तुम फिर आफ़ताब की रोशनी न देखोगे।

हानी—या अमीर, अगर आप मेरे जिस्म के टुकड़े-टुकड़े कर डालें, और उन टुकड़ों को आग में जला डालें, तो भी मैं मुसलिम को आपके हवाले

न करूंगा। मुरौवत इसे कभी कबूल नहीं करती कि अपनी पनाह में आनेवाले आदमी को दुश्मन के हवाले किया जाय। यह शराफ़त के खिलाफ़ है, अरब की आन के खिलाफ़ है। अगर मैं ऐसा करूं तो अपनी ही निगाह में गिर जाऊंगा। मेरे मुँह पर हमेशा के लिए स्याही का दाग़ लग जायगा, और आनेवाली नस्लें मेरे नाम पर नालत करेंगी।

क़ीस—(**हानी को एक किनारे ले जाकर**) हानी, सोचो, इसका अंजाम क्या होगा? तुम पर, तुम्हारे खानदान पर तुम्हारे कबीलों पर आफ़त आ जायगी। इतने आदमियों को कुरबान करके एक आदमी की जान बचाना कहां की दानाई है?

हानी—क़ीस, तुम्हारे मुँह से ये बातें जेबा नहीं देतीं? मैं हुसैन के चचेरे भाई के साथ कभी दग़ा न करूंगा चाहे मेरा सारा खानदान क़त्ल कर दिया जाय।

जियाद—शायद तुम अपनी जिंदगी से बेजार हो गए हो।

हानी—आप मुझे अपने मकान पर बुलाकर मुझे कत्ल की धमकी दे रहे हैं। मैं कहता हूं कि मेरा एक कतरा खून इस आलीशान इमारत को हिला देगा। हानी बेकस, बेजार और बेमददगार नहीं है।

जियाद—(**हानी के मुँह पर सोंटे से मारकर**) खलीफा का नायब किसी के मुँह से अपनी तौहीन न सुनेगा, चाहे वह दस हजार कबीले का सरदार क्यों न हो।

हानी—(**नाक से खून पोंछते हुए**) जालिम! तुझे शर्म नहीं आती कि एक निहत्थे आदमी पर वार कर रहा हैं। काश, मैं जानता कि तू दग़ा करेगा, तो तू यों न बैठा रहता।

सुलेमान—जियाद! मैं तुम्हें खबरदार किए देता हूं कि अगर हानी को कैद किया, तो तू भी सलामत न बचेगा।

[जियाद सुलेमान को मारने उठता है, लेकिन हज्जाज उसे रोक लेता है।]

जियाद—तुम लोग बैठे मुँह क्या ताक रहे हो, पकड़ लो इस बुड्ढे को (**बाहर की तरफ़ शोर मचता है**) यह शोर कैसा है?

क़ीस—(**खिड़की से बाहर की तरफ़ झांककर**) बाग़ियों की एक फौज

इस तरफ़ बढ़ती चली आ रही है।

जियाद—कितने आदमी होंगे ?

क़ीस—क़सम ख़ुदा की, दस हज़ार से कम नहीं।

जियाद (सिपाही को बुलाकर) हानी को ले जाओ और उस कोठरी में बंद कर दो, जहाँ कभी आफ़ताब की किरणें नही पहुँचतीं।

सुलेमान—ज़ियाद, मैं तुझे ख़बरदार किए देता हूँ कि तुझे खुद न उसी कोठरी में क़ैद होना पड़े।

[सुलेमान और मुख्तार बाहर चले जाते हैं।]

क़ीस—बाग़ियों की एक फौज बड़ी तेजी से बढ़ती चली आ रही है। बीस हज़ार से कम न होगी। मुसलिम झंडा लिए हुए सबके आगे हैं।

जियाद—दरवाजे बंद कर लो। अपनी-अपनी तलवारें लेकर तैयार हो जाओ। क़सम खुदा की, मैं इस बग़ावत का मुक़ाबला ज़बान से करूँगा। **(छत पर चढ़कर बाग़ियों से पूछता है।)** तुम लोग शोर क्यों मचाते हो ?

एक आदमी—हम तुझसे हानी के खून का बदना लेने आए हैं।

जियाद—कलाम पाक की क़सम, जीते-जागते आदमी के खून का बदला आज तक कभी किसी ने न लिया। अगर मैं झूठा हूँ, तो तुम्हारे शहर काज़ी तो झूठ न बोलेगा। **(काज़ी को नीचे से बुलाकर)** बाग़ियों से कह दो, हानी ज़िदा है।

काज़ी—या अमीर ! मैं हानी को जब तक अपनी आँखों से देख न लूँ, मेरी ज़बान से यह तसदीक़ न होगी।

ज़ियाद—कलाम पाक की क़सम, मैं तमाम मुल्लाओं को वासिल जहन्नुम कर दूँगा। जा, देख आ, जल्दी कर।

[काजी नीचे जाता है और क्षण भर के बाद लौट आता है।]

क़ाजी—ऐ कूफा के बाशिंदो ! मैं ईमान की रू से तसदीक़ करता हूँ कि शेख़ हानी ज़िदा हैं। हाँ, उनकी नाक से खून जारी है।

मुसलिम—बढ़े चलो। महल पर चढ़ जाओ। क्या कहा, जीने नहीं हैं ? जवाँमरदों को कभी जीने का मुहताज नहीं देखा। तुम आप जीने बन जाओ।

ज़ियाद—**(दिल में)** ज़ालिम एक दूसरे के कंधों पर चढ़ रहे हैं। **(प्रकट)** दोस्तो, यह हंगामा किसलिए है ? मैं हुसैन का दुश्मन नहीं हूँ। मुसलिम का

दुश्मन नहीं हूँ, अगर तुमने हुसैन की बैयत क़बूल की है, तो मुबारक हो। वह शौक़ से आएँ। मैं यज़ीद का ग़ुलाम नहीं हूँ। जिसे क़ौम का ख़लीफ़ा बनाए, उसका ग़ुलाम हूँ, लेकिन इसका तसफ़िया हंगामे से न होगा, इस मकान को पस्त करने से न होगा, अगर ऐसा हो, तो सबसे पहले इस पर मेरा हाथ उठेगा। मुझे क़त्ल करने से भी फ़ैसला न होगा, अगर ऐसा हो, तो मैं अपने हाथों अपना सिर क़लम करने को तैयार हूँ। इसका फ़ैसला आपस की सलाह से होगा।

मसलिम—ठहरो, बस, थोड़ी कसर और है। ऊपर पहुँचे कि तुम्हारी फतह है।

सुलेमान—ऐं! ये लोग भागे कहां जाते हैं? ठहरो-ठहरो, क्या बात है?

एक सिपाही—देखिए, क़ीस कुछ कह रहा है।

क़ीस—(**खिड़की से सर निकालकर**) भाइयो, हम और तुम एक शहर के रहनेवाले। क्या तुम हमारे ख़ून से अपनी तलवारों की प्यास बुझाओगे? तुममें से कितने ही मेरे साथ खेले हुए हैं। क्या यह मुनासिब है कि हम एक दूसरे का खून बहाएँ! हम लोगों ने दौलत के लालच से, रुतबे के लालच से और हुकूमत के लालच से यज़ीद की बैयत नहीं क़बूल की है, बल्कि महज़ इसलिए कि कूफ़ा की गलियों में खून के नाले न बहें।

कई आदमी—हम ज़ियाद से लड़ना चाहते हैं, अपने भाइयों से नहीं।

मुसलिम—ठहरो-ठहरो। इस दग़ाबाज़ की बातों न आओ।

सुलेमान—अफ़सोस कोई नहीं सुनता। सब भागे जाते हैं। वह कौन बदनसीब है, जिसके आदमी इतनी आसानी से बहकाए जा सकते हैं।

मुसलिम—मेरी नादानी थी कि इन पर एतबार किया।

सुलेमान—मैं हज़रत हुसैन को कौन मुँह दिखाऊंगा। ऐसे लोग दग़ा देते जा रहे हैं, जिनको मैं तक़दीर से ज्यादा अटल समझता था। क़ीस गया, हज्जाज गया, हारिस गया, शोश ने दग़ा दी, अशअस ने दग़ा दी। जितने अपने थे, सब बेगाने हो गए।

मुख़तार—अब हमारे साथ कुल तीस आदमी और रह गए।

[यज़ीद के सिपाही महल से निकलते हैं।]

मुख़्तार—खुदा, इन मूजियों से बचाओ। हज़रत मुसलिम, मुझे अब कोई ऐसा मकान नज़र नहीं आता, जहाँ आपकी हिफ़ाज़त कर सकूँ। मुझे यहाँ की मिट्टी से भी दग़ा की बू आ रही है।

कसीर—ग़रीब का मकान हाज़िर है।

मुख़तार—अच्छी बात है। हज़रत मुसलिम, आप इनके साथ जायँ। हमें रुख़सत कीजिए। हम दो-चार ऐसे आदमियों का रहना जरूरी है, जो हज़रत हुसैन पर अपनी जान निसार कर सकें। हमें अपनी जान प्यारी नहीं, लेकिन हुसैन की ख़ातिर उसकी हिफ़ाज़त करनी पड़ेगी।

[वे दोनों एक गली में ग़ायब हो जाते हैं।]

□

बारहवाँ दृश्य

[नौ बजे रात का समय। मुसलिम एक अँधेरी गली में खड़े हैं। थोड़ी दूर पर एक चिराग़ जल रहा है। तौआ अपने मकान के दरवाजे पर बैठी हुई है।]

मुसलिम—(**स्वगत**) उफ्! इतनी गरमी मालूम होती है कि बदन का ख़ून आग हो गया। दिन-भर गुज़र गया, कहीं पानी का एक बूँद भी न नसीब हुआ। एक दिन, सिर्फ़ एक दिन, पहले, बीस हज़ार आदमियों ने मेरे हाथों पर हुसैन की बैयत ली थी। आज किसी से एक बूँद पानी माँगते हुए खौफ़ होता है कि गिरफ्तार न हो जाऊँ। साए पर दुश्मन का गुमान होता है। खुदा से अब मेरी यही दुआ हैं कि हुसैन मक्के से न चले हों! आह कसीर! खुदा तुम्हें जन्नत में जगह दे। कितना दिलेर, कितना जाँबाज़! दोस्त की हिमायत का पाक फ़र्ज इतनी जवाँमरदी से किसने पूरा किया होगा! तुम दोनों बाप और बेटे इस दग़ा और फरेब की दुनिया में रहने के लायक़ न थे। तुम्हारी मज़ार पर हूरें फ़ातिहा पढ़ने आएँगी। आह! अब प्यास के मारे नहीं रहा जाता। दुश्मन की तलवार से मरना इतना खौफ़नाक नहीं, जितना प्यास से तड़प-तड़पकर मरना। चिराग़ नज़र आता है। वहाँ

चलकर पानी माँगूँ, शायद मिल जाय। (**प्रकट**) ऐ नेक बीबी, मेरा प्यास के मारे बुरा हाल है, थोड़ा-सा पानी पिला दो।

तौआ—आओ, बैठो पानी लाती हूं।

[वह पानी लाती है, और मुसलिम पीकर, दीवार से लगकर बैठते हैं।]

तौआ—ऐ ख़ुदा के बंदे, क्या तूने पानी नहीं पिया ?

मुसलिम—पी चुका।

तौआ—तो अब घर जाओ। यहाँ अकेले पड़ा रहना मुनासिब नहीं हैं। ज़ियाद के सिपाही चक्कर लगा रहे हैं, ऐसा न हो, तुम्हें शुबहे में पकड़ लें।

मुसलिम—चला जाऊँगा।

तौआ—हां बेटा, ज़माना ख़राब है, अपने घर चले जाओ।

मुसलिम—चला जाऊँगा।

तौआ—रात गुजरती जाती है। तुम चले जाओ, तो दरवाज़ा बंद कर लूँ।

मुसलिम—चला जाऊँगा।

तौआ—सुभानअल्लाह ! तुम भी अजीब आदमी हो। मैं तुमसे बार-बार घर जाने को कहती हूं, और तुम उठते ही नहीं। मुझे तुम्हारा यहां पड़ा रहना पसंद नही। कहीं कोई वारदात हो जाय, तो मैं ख़ुदा के दरगाह में गुनहगार बनूं।

मुसलिम—ऐ नेक बीबी, जिसका यहां घर ही न हो, वह किसके घर चला जाय। जिसके लिए घरों के दरवाजे नहीं, सड़कें बंद हो गई हों, उसका कहां ठिकाना है। अगर तुम्हारे घर में जगह और दिल में दर्द हो, तो मुझे पनाह दो। शायद मैं कभी इस नेकी का बदला दे सकूं।

तौआ—तुम कौन हो ?

मुसलिम—मैं वही बदनसीब आदमी हूँ, जिसकी आज घर-घर तलाश हो रही है। मेरा नाम मुसलिम है।

तौआ—या हज़रत, तुम पर मेरी जान फ़िदा हो। जब तक तौआ ज़िंदा है, आपको किसी दूसरे घर जाने की ज़रूरत नहीं। खुशनसीब के

मरने के वक्त आपकी ज़ियारत हुई। मैं ज़ियाद से क्यों डरूं? जिसके लिए मौत के सिवा और कोई आरज़ू नहीं। आइए आपको अपने मकान के दूसरे हिस्से में ठहरा दूं, जहां किसी का गुज़र नहीं हो सकता। (**मुसलिम तौआ के साथ जाते हैं**।) यहां आप आराम कीजिए, मैं खाना लाती हूं।

[बलाल का प्रवेश।]

बलाल—अम्मा, आज ज़ियाद ने लोगों का ख़ताएं माफ़ कर दीं, सबको तसल्ली दी, और इतमीनान दिलाया कि तुम्हारे साथ कोई सख़्ती न की जाएगी। हज़रत मुसलिम का न-जाने क्या हाल हुआ।

तौआ—जो हुसैन का दुश्मन है, उसके क़ौल का क्या एतबार!

बलाल—नहीं अम्मा, छोटे-बड़े ख़ातिर से पेश आए। उसकी बातें ऐसी होती हैं कि एक-एक लफ्ज़ दिल में चुभ जाता है। हज़रत मुसलिम का बचना अब मुझे भी मुश्किल जान पड़ता है। अब ख़याल होता है, उनके यहां आने से हम लोगों में निफ़ाक़ पैदा हो गया। ज़ियाद ने वादा किया है कि जो उन्हें गिरफ्तार करा देगा, उसे बहुत कुछ इनाम-एकराम मिलेगा।

तौआ—बेटा, कहीं तेरी नियत तो नहीं बदल गई। खुदा की क़सम, मैं तुझे कभी दूध न बख्शूंगी।

बलाल—अम्मा, खुदा न करे, मेरी नियत में फ़र्क आए। मैं तो सिर्फ बात कह रहा था। आज सारा शहर ज़ियाद को दुआएं दे रहा है।

[तौआ प्याले में खाना लेकर मुसलिम को दे आती है।]

बलाल—हज़रत हुसैन तशरीफ़ न लाएं, तो अच्छा हो। मुझे खौफ़ है कि लोग उनके साथ दग़ा करेंगे।

तौआ—ऐसी बातें मुँह से न निकाल। मुँह-हाथ धो ले। क्या तुझे भूख नहीं लगी, या ज़ियाद ने दावत कर दी?

बलाल—खुदा मुझे उसकी दावत से बचाए। खाना ला।

[तौआ उसके सामने खाना रख देती है, और फिर प्याले में कुछ लेकर मुसलिम को दे आती है।]

बलाल—यह पिछवाड़े की तरफ़ बार-बार क्यों जा रही हो अम्मा?

तौआ—कुछ नहीं बेटा! यों ही एक ज़रूरत से चली गई थी।

बलाल— हज़रत मुसलिम पर न-जाने क्या गुज़री।

[खाना खाकर चारपाई पर लेटता है, तौआ बिस्तर लेकर मुसलिम की चारपाई पर बिछा आती है।]

बलाल—अम्मा, फिर तुम उधर गई, और कुछ लेकर गईं। आख़िर माजरा क्या है? कोई मेहमान तो नहीं आया है?

तौआ—बेटा, मेहमान आता, तो क्या उनके लिए यहां जगह न थी?

बलाल—मगर कोई-न-कोई बात है ज़रूर। क्या मुझसे भी छिपाने की ज़रूरत है?

तौआ—तू सो जा, तुझसे क्या।

बलाल—जब तक बतला न दोगी, तब तक मैं न सोऊंगा।

तौआ—किसी से कहेगा तो नहीं?

बलाल—तुम्हें मुझ पर भी एतबार रहीं?

तौआ—क़सम खा।

बलाल—खुदा की क़सम है जो किसी से कहूँ।

तौआ—(**बलाल के कान में**) हज़रत मुसलिम हैं।

बलाल—अम्मा, ज़ियाद को ख़बर मिल गई, तो हम तबाह हो जायंगे।

तौआ—ख़बर कैसे हो जायगी। मैं तो कहूँगी नहीं। हां, तेरे दिल की नहीं जानती। करती क्या, एक तो मुसाफ़िर, दूसरे हुसैन के भाई। घर में जगह न होती, तो दिल में बैठा लेती।

बलाल—(**दिल में!**) अम्मा ने मुझे यह राज बता दिया, बड़ी ग़लती की। मैंने ज़िद करके पूछा, मुझसे ग़लती हुई। दिल पर क्योंकर क़ाबू रख सकता हूँ। एक वार से बादशाहत मिलती हो, तो ऐसा कौन हाथ है, जो न उठ जायगा। एक बात से दौलत मिलती हो, ज़िंदगी के सारे हौसले पूरे होते हों, तो वह कौन ज़ुबान है, जो चुप रह जायगी। ऐ दिल गुमराह न हो, तूने सख्त क़समें खाई हैं। लानत का तौक़ गले में न डाल। लेकिन होगा तो वही, जो मुक़द्दर में है। अगर मुसलिम की तक़दीर में बचना लिखा है, तो बचेंगे, चाहे सारी दुनिया दुश्मन हो जाय। मरना लिखा है तो मरेंगे, चाहे

सारी दुनिया उन्हें बचाए।

[उठकर तौआ की चारपाई की तरफ़ देखता है, और चुपके-से दरवाजा खोलकर चला जाता है।]

तौआ—(**चौंककर उठ बैठती है।**)आह ! ज़ालिम, मा से भी दग़ा की। तुझे यह भी शर्म नहीं आई कि हुसैन का भाई मेरे मकान में गिरफ्तार हो। आक़बत के दिन खुदा को कौन-सा मुँह दिखाएगा। एक कसीर था कि अपनी और अपने बेटे की जान अपने मेहमान पर निसार कर दी, और एक बदनसीब मैं हूं मेरा बेटा उसी मेहमान को दुश्मनों के हवाले करने जा रहा है।

[बाहर शोर सुनाई देता है। मुसलिम तौआ के कमरे में आते हैं।]

मुसलिम—तौआ, यह शोर कैसा है ?

तौआ—या हज़रत ! क्या बताऊं, मेरा बेटा मुझसे दग़ा कर गया। वह बुरी सायत थी कि मैंने अपने घर में आपको पनाह दी। काश अगर मैंने उस वक्त बेमुरौवती की होती, तो आप इस खतरे में न पड़ते। अगर कभी किसी माँ को बेटा जनने पर अफ़सोस हुआ है, तो वह बदनसीब माँ में हूँ। अगर जामती कि यह यों दग़ा करेगा, तो ज़च्चेखाने ही में उसका गला घोट देती।

मुसलिम—नेक बीबी, शर्मिंदा न हो। तेरे बेटे की ख़ता नहीं, सब कुछ वही हो रहा है, जो तक़दीर में था, और जिसकी मुझे ख़बर थी। लेकिन दुनिया में रहकर इंसाफ़, इज्जत और ईमान के लिए प्राण देना हरएक सच्चे मुसलमान का फ़र्ज है। खुदा नबियों के हाथों हिदायत के बीज बोता है, और शहीदों के खून से उसे सींचता है। शहादत वह आला-से-आला रुतबा है कि जो खुदा इंसान को दे सकता है। मुझे अफसोस सिर्फ यह है कि जो बात एक दिन पहले होनी चाहिए थी, वह आज दो खुदा के बंदों का खून बहाने के बाद हो रही है।

[ज़ियाद के आदमी बाहर से तौआ के घर में आग लगा देते हैं। और मुसलिम बाहर निकलकर दुश्मनों पर टूट पड़ते हैं।]

एक सिपाही—तलवार क्या है, बिजली है। खुदा बचाए।

[मुसलिम का हाथ पड़ता है, और वहीं गिर पड़ता है।]

दूसरा सिपाही—अब इधर चला, जैसे कोई मस्त शेर डकारता हुआ चला आता हो। बंदा तो घर का राह लेता है, कौन जान दे।

[भागता है।]

तीसरा सिपाही—अर...र...रया हज़रत, मैं ग़रीब मुसाफिर हूँ, देखने आया था कि यहां क्या हो रहा है।

[मुसलिम का हाथ पड़ता है। और वहीं गिर पड़ता है।]

चौथा सिपाही—जहन्नुम में जाय ऐसी नौकरी। आदमी आदमी से लड़ता है कि देव से। या हज़रत, मैं नहीं हूँ, मैं तो हुजूर के हाथों पर बैयत करने आया था।

[मुसलिम का हाथ पड़ता है, और वहीं गिर पड़ता है।]

पाँचवाँ सिपाही—किधर से भागें, कहीं जगह नही मिलती। या हज़रत, अपना बूढ़ीं मा का अकेला लड़का हूँ। जान बख्शें, तो हुजूर की जूतियाँ सीधी करूंगा।

[तलवार पड़ते ही गिर पड़ता है। सिपाहियों में भगदड़ मच जाती है।]

क़ौस—जवानो, हिम्मत न हारो। तुम तीन सौ हो। कितने शर्म की बात है कि एक आदमी से इतना डर रहे हो।

एक सिपाही—बड़े बहादुर हो, तो तुम्हीं क्यों नहीं उससे लड़ आते? दुम दबाए पीछे क्यों खड़े हो? क्या तुम्हीं को अपनी जान प्यारी है!

क़ौस—हज़रत मुसलिम, अमीर ज़ियाद का हुक्म है कि अगर आप हथियार रख दें, तो आपको पनाह दी जाय। (**सिपाहियों से**) तुम सब छतों पर चढ़ जाओ, और ऊपर से पत्थर फेंको।

मुसलिम—ऐ खुदा और रसूल के दुश्मन, मुझे तेरी पनाह की ज़रूरत नहीं है। मैं यहाँ तुझसे पनाह माँगने नहीं आया हूँ, तुझे सच्चाई के रास्ते पर लाने आया हूँ।

(**एक पत्थर सिर पर आता है।**) ऐ गुमराहो! क्या तुमने इस्लाम से मुंह फेरकर शराफ़त और इंसानियत से भी मुँह फेर लिया। क्या तुम्हें शर्म नहीं आती कि तुम अपने रसूल पाक के अज़ीज पर पत्थर फेंक रहे हो। हमारे साथ तुम्हारा यह कमीनापन!

[तलवार लेकर टूट पड़ते और गाते हैं।]

कूचे में रास्ती के हम अब गदा हुए हैं,
क्या ख़ौफ़ मौत का है, हक़ पर फ़िदा हुए हैं।
ईमाँ है अपना मुसलिक, मकरोदग़ा से नफ़रत,
दुनिया से फेरकर मुँह नक़्शे-वफ़ा हुए हैं।
क्या उनपे हाथ उठाऊँ, जो मौत से हैं ख़ायफ़,
जो राहे-हक़ से फिरकर सरफे दग़ा हुए हैं।
दुनिया में आके इक दिन हर शख्स को है मरना,
जन्नत है, उनकी, जो याँ वकफे जफ़ा हुए हैं।

क़ीस—कलामे पाक की क़सम, हम आपसे फ़रेब न करेंगे। अगर हम आपसे झूठ बोलें, तो हमारी नजात न हो।

मुसलिम—वल्लाह! मुझे जिंदा गिरफ्तार करके ज़ियाद के तानों का निशापा न बना सकेगा।

क़ीस—(**आहिस्ते से**) यह शेर इस तरह क़ाबू में न आएगा। इसका सामना करना मौत का लुक़मा बनना है। यहाँ गहरा गड्ढा खोदो। जब तक वह औरों को गिराता हुआ आए, तब तक गड्ढा तैयार हो जाना चाहिए। यहाँ अँधेरा है, वह जोश में इधर आते ही गिर जायगा।

एक सिपाही—ज़ियाद पर लानत हो, जिसने हमें शेर से लड़ने के लिए भेजा। या हज़रत, रहम, रहम!

दूसरा सिपाही—खुदा ख़ैर करे। क्या जानता था, यहाँ मौत का सामना करना पड़ेगा। बाल-बच्चों की खबर लेनेवाला कोई नहीं।

[मुसलिम गड्ढे में गिर पड़ते हैं।]

मुसलिम—ज़ालिमों, आख़िर तुमने दग़ा की।

क़ीस—पकड़ लो, पकड़ लो, निकलने न पाए। ख़बरदार, क़त्ल न करना जिंदा पकड़ लो।

अशअस—तलवार का हक़दार मैं हूँ।

क़ीस—जिर्रह मेरा हिस्सा है।

अशअस—ख़ोद उतार लो, साद को देंगे।

मुसलिम—प्यास! बड़े ज़ोरों की प्यास है। खुदा के लिए एक घूंट

पानी पिला दो।

क़ीस—अब जहन्नुम के सिवा यहाँ पानी का एक क़तरा भी न मिलेगा।

मुसलिम—तुफ़ है तुझ पर ज़ालिम, तुझे शरीफ़ों की तरह जबह करने की भी तमीज़ नहीं। मरनेवालों से ऐसी दिलख़राश बातें की जाती हैं? अफ़सोस!

अशअस—अब अफ़सोस करने से क्या फायदा? यह तुम्हारे फ़ेल का नतीजा है।

मुसलिम—आह! मैं अपने लिए अफ़सोस नहीं करता। रोता हूँ हुसैन के लिए, जिसे मैंने तुम्हारी मदद के लिए आमादा किया। जो मेरी ही मिन्नतों से अपने गोशे पर निकलने को राज़ी हुआ। जब कि ख़ानदान के सभी आदमी तुम्हारी दगाबाज़ी का खौफ़ दिला रहे थे, मैंने ही उन्हें यहाँ आने पर मजबूर किया। रोता हूँ कि जिस दग़ा ने मुझे तबाह किया, वह उन्हें और उनके साथ उनके ख़ानदान को भी तबाह कर देगी। क्या तुम्हारे ख़याल में यह रोने की बात नहीं है? तुमसे कुछ सवाल करूँ?

अशअस—हुसैन की बैयत के सिवा और जो सवाल चाहे कर सकते हो।

मुसलिम—हुसैन को मेरी मौत की इत्तिला दे देना।

अशअस—मंज़ूर है।

[कई सिपाई मुसलिम को रस्सियों से बाँधकर ले जाते हैं।]

□

तेरहवाँ दृश्य

[प्रातःकाल का समय। ज़ियाद का दरबार। मुसलिम को कई आदमी मुश्क कसे लाते हैं।]

मुसलिम—मेरा उस पर सलाम, जो हिदायत पर चलता है, आकबत से डरता हैं, और सच्चे बादशाह की बंदगी करता है।

चोबदार—मुसलिम! अमीर को सलाम करो।

मुसलिम—चुप रह। अमीर, मेरा मालिक, मेरा आक़ा, मेरा इमाम

हुसैन है।

ज़ियाद—तुमने कूफ़ा में आकर क़ानून के मुताबिक़ क़ायम की हुई बादशाहत को उखाड़ने की कोशिश की, बाग़ियों को भड़काया, और रियासत में निफ़ाक़ पैदा किया?

मुसलिम—कूफ़ा-क़ानून के मुताबिक न कोई सल्तनत क़ायम थी, न है। मैं उस शख्स का क़ासिद हूँ, जो चुनाव के क़ानून से, विरासत के क़ानून से और लियाक़त से अमीर है। कूफ़ावालों ने खुद उसे अमीर बनाया। अगर तुमने लोगों के साथ इंसाफ़ किया होता, तो बेशक, तुम्हारा हुक्म जायज़ था। रियाया की मर्ज़ी और सब हक़ों को मिटा देती है। मगर तुमने लोगों पर वे ज़ुल्म किए कि क़ैसर ने भी न किए थे। बेगुनाहों को सज़ाएँ दीं, जुरमाने के हीले से उनकी दौलत लूटी, अमन रखने के हीले से उनके सरदारों को क़त्ल किया। ऐसे ज़लिम हाकिम को, चाहे वह किसी हक़ के बिना पर हुक़ूमत करता हो, हुकूमत करने का कोई हक़ नहीं रहता, क्योंकि हैवानी ताक़त कोई हक़ नहीं है। ऐसी हुक़ूमत को मिटाना हर सच्चे आदमी का फ़र्ज है। और, जो इस फ़र्ज से खौफ़ या लालच के कारण मुंह मोंड़ता है, वह इंसान और खुदा दोनों की निगाहों में गुनहगार है। मैंने, अपने मक़दूर-भर रियाया को तेरे पंजे से छुड़ाने की कोशिश की, और मौक़ा पाऊँगा, तो फिर करूँगा।

ज़ियाद—वल्लाह तू फिर इसका मौका न पाएगा। तूने बग़ावत की है। बग़ावत की सज़ा क़त्ल है। और, दूसरे बाग़ियों की इबरत के लिये मैं तुझे इस तरह क़त्ल कराऊँगा, जैसे कोई अब तक न किया गया होगा।

मुसलिम—बेशक। यह लियाक़त तुझी में है।

ज़ियाद—इस गुस्ताख़ को ले जाओ, और सबसे ऊँची छत पर क़त्ल करो।

मुसलिम—साद, तुमको मालूम है कि तुम मेरे क़राबतमंद हो?

साद—मालूम है।

मुसलिम—मैं तुमसे कुछ वसीयत करना चाहता हूँ।

साद—शौक़ से करो।

मुसलिम—मैंने यहाँ कई आदमियों से क़र्ज लेकर अपनी ज़रूरतों पर

खर्च किए थे। इस कागज़ पर उनके नाम और रक़में दर्ज हैं। तुम मेरा घोड़ा और मेरे हथियार बेचकर यह कर्ज़ अदा कर देना, वरना हिसाब के दिन मुझे इन आदमियों से शर्मिंदा होना होगा।

साद—इसका इतमीनान रखिए।

मुसलिम—मेरी लाश को दफ़न करा देना।

साद—यह मेरे इमकान में नहीं है।

[जल्लाद आकर मुसलिम को ले जाता है।]

अशअस—या अमीर, मुसलिम क़त्ल हुए। अब बग़ावत का कोई अंदेशा नहीं। अब आप हानी की जानबख्शी कीजिए।

जियाद—कलाम पाक की क़सम, अगर मेरी नजात भी होती हो, तो हानी को नहीं छोड़ सकता।

अशअस—लोग बिगड़ खड़े हों, तो?

ज़ियाद—जब क़ौम के सरदार मेरे तरफ़दार हैं, तो रियाया की तरफ़ से कोई अंदेशा नहीं। [जल्लाद को बुलाकर] तूने मुसलिम को क़त्ल किया?

जल्लाद—अमीर के हुक्म की तामील हो गई। खुदावंद किसी को इतनी दिलेरी से जान देते नहीं देखा। पहले नमाज पढ़ा, तब मुझसे मुस्कराकर कहा—तू अपना काम कर।

ज़ियाद—तूने उसे नमाज़ क्यों पढ़ने दिया? किस के हुक्म से?

जल्लाद—ग़रीबपरवर, आखिर नमाज़ के रोकने का अज़ाब जल्लादों के लिये भी भारी है। जिस्म को सिर से अलग कर देना इतना बड़ा गुनाह नहीं है, जितना किसी को खुदा की इबादत से रोकना।

ज़ियाद—चुप नामाक़ूल। तू क्या जानता है, किसको क्या सज़ा देनी चाहिए। ग़ैरतमंदों के लिये रूहानी ज़िल्लत क़त्ल से कहीं ज्यादा तकलीफ़ देती है। ख़ैर, अब हानी को ले जा, और चौराहे पर क़त्ल कर डाल।

एक आदमी—खुदावंद; यह खि़दमत मुझे सुपुर्द हो।

ज़ियाद—तू कौन है?

आदमी—हानी का गुलाम हूँ। मुझ पर उसने कितने ज़ुल्म किए हैं कि मैं उनके खून का प्यासा हो गया हूं। आपकी निगाह हो जाय, तो मेरी पुरानी

आरज़ू पूरी हो। मैं इस तरह क़त्ल करूँगा कि देखनेवाले आँखों बंद कर लेंगे।

ज़ियाद—कलाम पाक की क़सम , तेरा सवाल ज़रूर पूरा करूँगा।

[गुलाम हानी को पकड़े हुए ले जाता है। कई सिपाही तलवारें लिए साथ-साथ जाते हैं।]

ग़ुलाम—(**हानी से**) मेरे प्यारे आक़ा, मैंने जिंदगी-भर आपका नमक खाया, कितनी ही खताएँ कीं, पर आपने कभी कड़ी निगाहों से नहीं देखा। अब आपके जिस्म पर किसी बेदर्द क़ातिल का हाथ पड़े, वह मैं नहीं देख सकता। मैं इस हालात में भी आपकी खिदमत करना चाहता हूँ। मैं आपकी रूह को इस जिस्म की क़ैद से इस तरह आज़ाद करूँगा कि ज़रा भी तकलीफ़ न हो। खुदा आपको जन्नत दे, और खता माफ़ करे।

[फातिमा रोती हुई अपनी मां के पास जाती है। औरतें रोने लगती हैं।]

जैनब—(**बाहर आकर**) भैया, यह क्या ग़जब हो गया ?

हुसैन—बहन, क्या कहूँ, सितम टूट पड़ा। मुसलिम तो शहीद हो गए। कूफ़ावालों ने दग़ा की।

जैनब—तो ऐसे दग़ाबाज़ों से मदद की क्या उम्मीद हो सकती है ? मैं तो तुमसे मिन्नत करती हूँ कि यही से वापस चलो। कूफ़ावालों ने कभी वफा नहीं की।

[मुसलिम के बेटे अब्दुल्ला का प्रवेश।]

अब्दुल्ला—फूफीजान, अब तो अगर तक़दीर भी रास्ते में खड़ी हो जाय, तो भी मेरे क़दम पीछे न हटेंगे। तुफ् है मुझ पर, अगर अपने बाप का बदला न लूँ ! हाय वह इंसान, जिसने कभी किसी से बदी नहीं की, जो रहम और मुरौवत का पुतला था, जो दिल का इतना साफ़ था कि उसे किसी पर शुबहा न होता था, इतनी बेदरदी से क़त्ल किया जाय।

[अब्बास का प्रवेश।]

अब्बास—बेशक, अब कूफ़ावालों को उनकी दग़ा की सज़ा दिए बग़ैर लौट जाना ऐसी जिल्लत है, जिससे हमारी गर्दन हमेशा झुकी रहेगी। ख़ुदा को जो कुछ मंज़ूर है, वह होगा। हम सब शहीद हो जायँ, रसूल के ख़ानदान का निशान मिट जाय, पर यहाँ से लौटकर हम दुनिया को अपने ऊपर हँसने का मौका न देंगे। मुझे यकीन है कि यह शरारत कूफ़ा के रईसों और सरदारों की है, जिन्हें ज़ियाद के वादों ने दीवाना बना रक्खा है। आप जिस वक्त कूफ़ा में क़दम रक्खेंगे, रियाया अपने सरदारों से मुँह फेरकर आपके क़दमों पर झुकेगी। और वह दिन दूर नहीं, जब यज़ीद का नापाक सिर उसके तन से जुदा होगा। आप ख़ुदा का नाम लेकर ख़ेमे उखड़वाइए। अब देर करने का मौका नहीं है। हक के लिए शहीद होना वह मौत है, जिसके लिए फरिश्तों की रूहें भी तड़पती हैं।

जैनब—भैया, मैं तुझ पर सदक़े। घर वापस चलो।

हुसैन—आह ! अब यहाँ से वापस होना मेरे अख्तियार की बात नहीं है। मुझे दूर से दुश्मन की फ़ौज का गुबार नजर आ रहा है। पुश्त की तरफ भी

दुश्मन ने रास्ता रोक रक्खा है। दाहने-बाएँ कोसों तक बस्ती का निशान नहीं। हम अब कूफ़ा के सिवा कहीं नहीं जा सकते। कूफ़ा में हमें तख्त नसीब हो या तख्ता, हमारे लिए कोई दूसरा मुकाम नहीं है। अब्बास, जाकर मेरे साथियों से कह दो, मैं उन्हें खुशी से इजाजत देता हूँ, जहाँ जिसका जी चाहे, चला जाय। मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है। चलो, हम लोग खेमे उखाड़ें।

□

दूसरा दृश्य

[संध्या का समय। हुसैन का काफ़िला रेगिस्तान में चला जा रहा है।]

अब्बास—अल्लाहोअकबर। वह कूफ़ा के दरख्त नजर आने लगे।

हबीब—अभी कूफ़ा दूर है। कोई दूसरा गाँव होगा।

अब्बास—रसूल पाक की क़सम, फ़ौज है। भालों की नोकें साफ़ नज़र आ रही हैं।

हुसैन—हाँ, फौज ही है। दुश्मनों ने कूफे से हमारी दावत का यह सामान भेजा है। यहीं उस टीलें के क़रीब, खेमे लगा दो। अजब नहीं कि इसी मैदान में क़िस्मतों का फैसला हो।

[काफ़िला रुक जाता है। खेमे गड़ने लगते हैं। बेगमें ऊँटों से उतरती हैं। दुश्मन की फौज क़रीब आ जाती है।]

अब्बास—ख़बरदार, कोई एक क़दम आगे न रक्खे। यहाँ हजरत हुसैन के खेमे हैं।

अली अकबर—अभी जाकर इन बेअदबों की तबीह करता हूँ।

हुसैन—अब्बास, पूछो, ये लोग कौन हैं, और क्या चाहते हैं?

अब्बास—(फ़ौज से) तुम्हारा सरदार कौन है?

हुर—(सामने आकर) मेरा नाम हुर है। हज़रत हुसैन का ग़ुलाम हूँ।

अब्बास—दोस्त दुश्मन बनकर आए, तो वह भी दुश्मन है।

हुर—या हज़रत, हाकिम के हुक्म से मजबूर हूँ, बैयत से मजबूर हूँ,

नमक की कैद से मजबूर हूँ, लेकिन दिल हुसैन ही का गुलाम है।

हुसैन—(अब्बास से) भाई, आने दो, इसकी बातों से सचाई की बू आती है।

हुर—या हज़रत, आपको कूफ़ावालों ने दग़ा दी है! ज़ियाद और यज़ीद, दोनों आपको क़त्ल करने की तैयारियाँ कर रहे हैं। चारों तरफ़ से फौजें जमा की जा रही है। कूफ़े के सरदार आपसे जंग करने को तैयार बैठे हैं।

हुसैन—पहले यह बतलाओ कि तुम्हारे सिपाही क्यों इतने निढाल और परेशान हो रहे हैं?

हुर—या हज़रत, क्या अर्ज करूँ। तीन पहर से पानी का एक बूँद न मिला। प्यास के मारे सबों के दम लबों पर आ रहे हैं।

हुसैन—(अब्बास से) भैया, प्यासों की प्यास बुझानी एक सौ नमाज़ों से ज्यादा सवाब का काम है। तुम्हारे पास पानी हो, तो इन्हें पिला दो। क्या हुआ, अगर मेरे ये दुश्मन हैं, हैं तो मुसलमान...मेरे नाना के नाम पर मरनेवाले।

अब्बास—या हजरत, आपके साथ बच्चे हैं, औरतें हैं और पानी यहाँ उनका है।

हुसैन—इन्हें पानी पिला दो, मेरे बच्चों का ख़ुदा है।

[अब्बास, अली अकबर, हबीब पानी की मशकें लाकर सिपाहियों को पानी पिलाते हैं।]

अब्बास—हुर, अब यह बतलाओ कि तुम हमसे सुलह करना चाहते हो या जंग?

हुर—हजरत, मुझे आपसे न जंग का हुक्म दिया गया है, न सुलह का। मैं सिर्फ इसलिए भेजा गया हूँ कि कि हजरत को ज़ियाद के पास ले जाऊँ, और किसी दूसरी तरफ न जाने दूं।

अब्बास—इसके मानी यह हैं कि तुम जंग करना चाहते हो। हम किसी ख़लीफ़ा या आमिल के हुक्म के पाबंद नहीं हैं कि किसी ख़ास तरफ़ जायँ। मुल्क ख़ुदा का है। हम आज़ादी से जहाँ चाहेंगे, जायँगे। अगर हमको कोई रोकेगा, तो उसे काँटों की तरह रास्ते से हटा देंगे।

हुसैन—नमाज़ का वक्त आ गया। पहले नमाज अदा कर लें, उसके बाद और बातें होंगी। हुर, तुम मेरे साथ नमाज़ पढ़ोगे या अपनी फ़ौज के साथ ?

हुर—या हज़रत, आपके पीछे खड़े होकर नमाज अदा करने का सवाब न छोड़ूंगा, चाहे मेरी फ़ौज मुझसे जुदा क्यों न हो जाय।

□

तीसरा दृश्य

[संध्या का समय—नसीमा बग़ीचे में बैठी आहिस्ता-आहिस्ता गा रही है।]

दफ़न करने ले चले जब मेरे घर से मुझे
काश, तुम भी झाँक लेते रौजने घर से मुझे,
साँस पूरी हो चुकी दुनिया से रुख़सत हो चुका
तुम अब आए हो उठाने मेरे बिस्तर से मुझे,
क्यों उठाता है मुझे मेरी तमन्ना को निकाल
तेरे दर तक खींच लाई थी यही घर से मुझे,
हिज्र की शव कुछ यही मूनिस था मेरा ऐ क़ज़ा
एक ज़रा रो लेने दे मिल-मिल के बिस्तर से मुझे,
याद है तस्कीन अब तक वह जमाना याद है
जब छुड़ाया था फ़लक ने मेरे दिलवर से मुझे।

[वहब का प्रवेश। नसीमा चुप हो जाती है।]

वहब—ख़ामोश क्यों हो गई ? यही सुनकर मैं आया था।

नसीमा—मेरा गाना ख़याल है। तनहाई का मूनिस अपना दर्द क्यों सुनाऊँ, जब कोई सुनना न चाहे।

वहब—नसीमा, शिकवे करने का हक़ मेरा है, तुम इसे जबरदस्ती छीन लेती हो।

नसीमा—तुम मेरे हो, तुम्हारा सब कुछ मेरा है, पर मुझे इसका यक़ीन नहीं आता। मुझे हरदम यही अंदेशा रहता है कि तुम मुझे भूल जाओगे,

तुम्हारा दिल मुझसे बेजार हो जायगा, मुझसे बेएतनाई करने लगोगे। यह खयाल दिल से नहीं निकलता। बहुत चाहती हूँ कि निकल जाय, पर वह किसी पानी से भीगी हुई बिल्ली की तरह नहीं निकलती। तब मैं रोने लगती हूँ, और ग़मनाक खयाल मुझे चारों तरफ़ से घेर लेते हैं। तुमने न-जाने मुझ पर कौन-सा जादू कर दिया है कि मैं अपनी नहीं रही। मुझे ऐसा गुमान होता है कि हमारी बहार थोड़े ही दिनों की मेहमान है। मैं तुमसे इल्तजा करती हूँ कि मेरी तरफ़ से निगाहें न मोटी करना, वरना मेरा दिल पाश-पाश हो जायगा। मुझे यहाँ आने के पहले कभी न मालूम हुआ था कि मेरा दिल इतना नाज़ुक है।

वहब—मेरी कैफ़ियत इससे ठीक उल्टी है। मेरे दिल में एक नई क़ूवत आ गई है, मुझे ख़याल होता है कि अब दुनिया की कोई फ़िक्र, कोई तरगीब, कोई आरज़ू मेरे दिल पर फ़तह नहीं पा सकती। ऐसी कोई ताक़त नहीं है, जिसका मैं मुक़ाबला न कर सकूँ। तुमने मेरे दिल की क़ूवत सौगुनी कर दी। यहाँ तक कि अब मुझे मौत का भी ग़म नहीं है। मुहब्बत ने मुझे दिलेर, बेखौफ़, मजबूत बना दिया है, मुझे तो ऐसा गुमान होता है कि मुहब्बत क़ूवते-दिल की कीमिया है।

नसीमा—वहब, इन बातों से वहशत हो रही है, शायद हमारी तबाही के सामान हो रहे हैं। वहब, मैं तुम्हें न जाने दूँगी। कलाम पाक की क़सम, कहीं न जाने दूँगी। मुझे इसकी फ़िक्र नहीं कि कौन ख़लीफ़ा होता है और कौन अमीर। मुझे माल व जर की, इलाके व जागीर की मुतलक़ परवा नहीं। मैं तुम्हें चाहती हूँ, सिर्फ तुम्हें।

[क़मर का प्रवेश।]

क़मर—वहब, देख, दरवाजे पर जालिम जियाद के सिपाही क्या ग़जब कर रहे हैं। तेरे वालिद को ग़िरफ्तार कर लिया है, और जामा मसजिद की तरफ़ खीचे लिए जाते हैं।

नसीमा— हाय सितम, इसीलिये तो मुझे वहशत हो रही थी।

[वहब उठ खड़ा होता है। नसीमा उनका हाथ पकड़ लेती है।]

वहब—नसीमा, मैं अभी लौटा आता हूँ, तुम घबराओ नहीं।

नसीमा—नहीं-नहीं, तुम यहाँ मुझे ज़िंदा छोड़कर नहीं जा सकते।

मैं जियाद को जानती हूँ, तुमको भी जानती हूँ। जियाद के सामने जाकर फिर तुम नहीं लौट सकते।

क़मर—बेटा, अगर नसीमा तुझे नहीं जाने देती, तो मत जा। मगर याद रख, तेरे चेहरे पर हमेशा के लिए स्याही का दाग़ लग जायगा। ख़ुद जाती हू। नसीमा, शायद हमारी-तुम्हारी फिर मुलाकात न हो, यह आख़िरी मुलाकात है। रुखसत। वहब, घर-बार तुझे सौंपा, ख़ुदा तुझे नेकी की तौफ़ीक़ दे, तेरी उम्र दराज़ हो।

वहब—अम्मा, मैं भी चलता हूँ।

क़मर—नहीं, तुझ पर अपनी बीवी का हक़ सबसे ज्यादा है।

वहब—नसीमा, ख़ुदा के लिए···

नसीमा—नहीं। मेरे प्यारे आक़ा, मुझे जिंदा छोड़कर नहीं।

[क़मर चली जाती है। वहब सिर थामकर बैठ जाता है।]

नसीमा—प्यारे, तुम्हारी मुहब्बत की क़तावार हूँ, जो सजा चाहे दो। मुहब्बत खुदग़रज़ होती है। मैं अपने चमन को हवा के झोंकों से बचाना चाहती हूँ। काश, तक़दीर ने मुझे इस गुलज़ार में न बिठाया होता, काश, मैंने इस चमन में अपना घोंसला न बनाया होता तो आज बर्क़ और सैयाद का इतना खौफ़ क्यों होता! मेरी बदौलत तुम्हें यह नदामत उठानी पड़ी, काश, मैं मर जाती!

[नसीमा वहब के पैरों पर सिर रख देती है।]

□

चौथा दृश्य

[आधी रात का समय। अब्बास हुसैन के खेमे के सामने खड़े पहरा पहरा दे रहे हैं। हुर आहिस्ता से आकर खेमे के करीब खड़ा हो जाता है।]

हुर—(दिल में) ख़ुदा को क्या मुँह दिखाऊँगा? किस मुँह से रसूल के सामने जाऊँगा? आह, ग़ुलामी तेरा बुरा हो। जिस बुजुर्ग ने हमें ईमान की रोशनी दी, खुदा की इबादत सिखाई, इंसान बनाया, उसी के बेटे से जंग

करना मेरे लिये कितनी शर्म की बात है। यह मुझसे न होगा। मैं जानता हूँ, यजीद मेरे खून का प्यासा हो जायगा, मेरी जागीरें छीन ली जायँगी, मेरे लड़के रोटियों को मुहताज हो जायँगे, मगर दुनिया खोकर रसूल की निगाह का हक़दार हो जाऊँगा। मुझे न मालूम था कि यजीद की बैयत लेकर मैं अपनी आक़बत बिगाड़ने पर मजबूर किया जाऊँगा। अब यह जान हजरत हुसैन पर निसार है। जो होना है, हो। यजीद की खिलाफ़त पर कोई हक नहीं। मैंने उसकी बैयत लेने में खास ग़लती की। उसके हुक्म की पाबंदी मुझ पर फ़र्ज नहीं। ख़ुदा के दरबार में मैं इसके लिए गुनहगार न ठहरूँगा।

[आगे बढ़ता है।]

अब्बास—कौन है? ख़बरदार, एक क़दम आगे न बढ़े, वरना लाश जमीन पर होगी।

हुर—या हजरत, आपका गुलाम हुर हूँ। हजरत हुसैन की खिदमत में कुछ अर्ज करना चाहता हूँ।

अब्बास—इस वक्त वह आराम फ़रमा रहे हैं।

हुर—मेरा उनसे इसी वक्त मिलना जरूरी है।

अब्बास—(**दिल में**) दग़ा का अंदेशा तो मालूम नहीं होता। मैं भी इसके साथ चलता हूँ। ज़रा भी हाथ-पाँव हिलाया कि सिर उड़ा दूँगा। (**प्रकट**) अच्छा, आओ।

[अब्बास ख़ेमे से बाहर हुसैन को बुला लाते हैं।]

हुर—या हजरत, मुआफ कीजिएगा। मैंने आपको नावक्त तकलीफ़ दी। मैं यह अर्ज करने आया हूँ कि आप कूफ़ा की तरफ न जायँ। रात का वक्त है, मेरी फौज सो रही है, आप किसी दूसरी तरफ चले जायँ। मेरी यह अर्ज क़बूल कीजिए।

हुसैन—हुर, यह अपनी ज़ान बचाने का मौक़ा नहीं, इस्लाम की आबरू को क़ायम रखने का सवाल है।

हुर—आप यमन की तरफ़ चले जायँ, तो वहाँ आपको काफ़ी मदद मिलेगी। मैंने सुना है, सुलेमान और मुखतार वहाँ आपकी मदद के लिए फौज जमा कर रहे हैं।

हुसैन—हुर, जिस लालच ने कूफ़ा के रईसों को मुझसे फेर दिया, क्या

वह यमन में अपना असर न दिखाएगा? इंसान की ग़फ़लत सब जगह एकसी होती है। मेरे लिए कूफ़ा के सिवा दूसरा रास्ता नहीं है। अगर तुम न जाने दोगे, तो ज़बर्दस्ती जाऊँगा। यह जानता हूँ कि वहीं मुझे शहादत नसीब होगी। इसकी खबर मुझे नाना की जबान मुबारक से मिल चुकी है। क्या ख़ौफ़ से शहादत के रुतबे को छोड़ दूं?

हुर—अगर आप जाना ही चाहते हैं, तो मस्तूरात को वापस कर दीजिए।

हुसैन—हाय, ऐसा मुमकिन होता, तो मुझसे ज्यादा खुश कोई न होता। मगर इसमें से कोई मेरा साथ छोड़ने पर तैयार नहीं है।

[किसी तरफ़ से ऊँ ऊँ की आवाज़ आ रही है।]

हुर—या हज़रत, यह आवाज़ कहाँ से आ रही है? इसे सुनकर दिल पर रोब तारी हो रहा है।

[एक योगी भभूत रमाए, जटा बढ़ाए, मृग-चर्म कंधे पर रक्खे हुए आते हैं।]

योगी—भगवन्! मैं उस स्थान को जाना चाहता हूँ, जहाँ महर्षि मुहम्मद की समाधि है।

हुसैन—तुम कौन हो? यह कैसी शक्ल बना रक्खी है?

योगी—साधु हूँ। उस देश से आ रहा हूँ, जहाँ प्रथम ओंकार-ध्वनि की सृष्टि हुई थी। महर्षि मुहम्मद ने उसी ध्वनि से संपूर्ण जगत को निनादित कर दिया है। उनके अद्वैतवाद ने भारत के समाधि-मग्न ऋषियों को भी जागृति प्रदान कर दी है। उसी महात्मा की समाधि का दर्शन करने के लिए मैं भारत से आया हूँ, कृपा कर मुझे मार्ग बता दीजिए।

हुसैन—आइए, खुशनसीब कि आपकी जियारत हुई। रात का वक्त है, अँधेरा छाया हुआ है। इस वक्त यहीं आराम कीजिए। सुबह मैं आपके साथ अपना एक आदमी भेज दूँगा।

योगी—(**ग़ौर से हुसैन के चेहरे को देखकर**) नहीं महात्मन्, मेरा व्रत है कि उस पावन भूमि का दर्शन किए बिना कहीं विश्राम न करूँगा। प्रभो, आपके मुखारविंद पर भी मुझे उसी महर्षि के तेज का प्रतिबिंब दिखाई देता है। आप उनके आत्मीय हैं?

हुसैन—जी हाँ, उनका नेवासा हूँ। मगर आपने नाना को तो देखा ही नहीं, फिर आपको कैसे मालूम हुआ कि मेरी सूरत उनसे मिलती है ?

योगी—(**हँसकर**) भगवन् ! मैंने उनका स्थूल शरीर नहीं देखा, पर उनके आत्मशरीर का दर्शन किया है। आत्मा द्वारा उनकी पवित्र वार्ता सुनी है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि आपमें वही पवित्र आत्मा अवतरित हुई है। आज्ञा दीजिए, आपके चरण-रज से अपने मस्तिष्क को पवित्र करूँ।

हुसैन—(**पैरों को हटाकर**) नहीं-नहीं, मैं इंसान हूँ, और रसूल पाक की हिदायत है कि इंसान को इंसान की इबादत वाजिब नहीं।

योगी—धन्य है ! मनुष्य के ब्रह्मत्व का कितना उच्च आदर्श है ! वह ज्ञान-ज्योति, जो इस देश से उद्‌भावित हुई है, एक दिन समस्त भूमंडल को आलोकित करेगी, और देश-देशांतरों में सत्य और न्याय का मुख उज्ज्वल करेगी। हाँ, इस महर्षि की संतान न्याय-गौरव का पालन करेगी। अब मुझे आज्ञा दीजिए, आपके दर्शनों से कृतार्थ हो गया।

[योगी चला जाता है।]

हुसैन—अब मुझे मरने का ग़म नहीं रहा। मेरे नाना की उम्मत हक़ और इंसाफ़ की हिमायत करेगी। शायद इसीलिए रसूल ने अपनी औलाद को हक़ पर क़ुर्बान करने का फ़ैसला किया है। हुर, तुमने इस फ़कीर की पेशगोई सुनी ?

हुर—या हज़रत, आपका रुतबा आज जैसा समझा हूँ, ऐसा कभी न समझा था। हुज़ूर, रसूल पाक मेरे हक़ में दुआ करें कि मुझ रूहस्याह के गुनाह मुआफ़ करे।

[चला जाता है।]

हुसैन—अब्बास, अब हमें कूफ़ावालों को अपने पहुँचने की इत्तिला देनी चाहिए।

अब्बास—बजा है।

हुसैन—कौन जा सकता है ?

अब्बास—सैदावी को भेज दूं ?

हुसैन—बहुत अच्छी बात है।

[अब्बास सैदावी को बुला लाते हैं।]

अब्बास—सैंदावी, तुम्हें हमारे पहुँचने की खबर लेकर कूफ़ा जाना पड़ेगा। यह कहने की जरूरत नहीं कि यह बड़े खतरे का काम है।

सैंदावी—या हज़रत, जब आपकी मुझ पर निगाह है, तो फिर खौफ़ किस बात का।

हुसैन—शाबाश, यह खत लो, और वहाँ किसी ऐसे सरदार को देना, जो रसूल का सच्चा बंदा हो। जाओ खुदा तुम्हें खैरियत से ले जाय।

[सैंदावी जाता है।]

हुसैन—(**दिल में**) सैंदावी, जाते हो, मगर मुझे शक है कि तुम जिंदा लौटोगे! तुमने; जिसे न दीन की हिफ़ाज़त का खयाल है, न हक़ का, जिसे दुश्मनों ने चारों तरफ़ से घेर नहीं रक्खा है, जिसको शहीद करने के लिए फौजें नही जमा की जा रही हैं, जो दुनिया में आराम से जिंदगी बसर कर सकता है; महज़ वफ़ादारी का हक़ अदा करने के लिए जान-बूझकर मौत के मुंह में क़दम रक्खा है, तो मैं मौत से क्यों डरूँ।

[गाते हैं।]

मौत का क्या उसको है, जो मुसलमाँ हो गया,
जिसकी नीयत नेक है जो सिदक़् ईमाँ हो गया;
कब दिलेरों को सताए फ़िक्र जर और खौफ़ जा,
अज्म सादिक़ उसका है जो पाक दामा हो गया;
क्यों नदामत हो मुझे दुनिया में गर जिंदा रहा,
जाय ग़म क्या है जो नजरे-तेग़ बुर्रा हो गया;
हो अदू दुनिया में रुसवा आखिरत में गम नसीब,
मुनहरिफ़ दी से हुआ औ' नंग-दौराँ हो गया।

□

पाँचवाँ दृश्य

[रात का समय। हुसैन अपने खेमे में सोए हुए हैं। वह चौंक पड़ते हैं और लेटे हुए चौकन्नी आँखों से, इधर-उधर ताकते हैं।]

हुसैन—(**दिल में**) यहाँ तो कोई नजर नही आता। मैं हूँ, शमा है, और

धड़कता हुआ दिल है। फिर मैंने आवाज किसकी सुनी ! सिर में कैसा चक्कर आ रहा है। जरूर कोई था। ख्वाव पर हक़ीक़त का धोका नहीं हो सकता। ख्वाब के आदमी शबनम के परदे में ढकी हुई तसवीरों की तरह होते हैं। ख्वाब की आवाजें जमीन के नीचे से निकलनेवाली आवाजों की तरह मालूम होती हैं। उनमें यह बात कहाँ ! देखूं, कोई बाहर तो खड़ा नहीं है। (**खेमे से बाहर निकलकर**) उफ्, कितनी गहरी तारीकी है, गोया मेरी आँखों ने कभी रोशनी देखी ही नहीं। कैसा गहरा सन्नाटा है, गोया सुनने की ताक़त ही से महरूम हूँ। गोया यह दुनिया अभी-अभी अदम के ग़ार से निकली है (**प्रकट**) कोई है ?

[अली अकबर का प्रवेश।]

अली अकबर—हाजिर हूँ अब्बाजान, क्या इरशाद है ?

हुसैन—यहाँ से अभी कोई सवार तो नहीं गुजरा है ?

अली अकबर—अगर मेरे होश-हवास बजा हैं, तो इधर कोई जानदार नही गुजरा।

हुसैन—ताज्जुब है, अभी लेटा हुआ था, और जहाँ तक मुझे याद है, मेरी पलकें तक नहीं झपकीं, पर मैंने देखा, एक आदमी मुश्की घोड़े पर सवार सामने खड़े होकर मुझसे कह रहा है कि 'ऐ हुसैन ! इराक़ जाने की जल्दी कर रहे हो, और मौत तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ी जा रही है।' बेटा, मालूम हो रहा है, मेरी मौत क़रीब है !

अली अकबर—बाबा, क्या हम हक़ पर नहीं हैं ?

हुसैन—बेशक, हम हक़ पर हैं, हक़ हमारे साथ है।

अली अकबर—अगर हम हक़ पर हैं, तो मौत का क्या डर। क्या परवाह, अगर हम मौत की तरफ जायँ या मौत हमारी तरफ़ आए।

हुसैन—बेटा, तुमने दिल खुश कर दिया। खुदा तुमको वह सबसे बड़ा इनाम दे, जो बाप बेटे को दे सकता है।

[जहीर, हबीब, अब्दुल्ला, कलबी और उसकी स्त्री का प्रवेश]

अली अकबर—कौन इधर से जा रहा है ?

ज़हीर—हम मुसाफ़िर हैं। ये खेमे क्या हजरत हुसैन के हैं ?

अली अकबर—हाँ।

ज़हीर—खुदा का शुक्र है कि हम मंजिल मक़सूद पर पहुँच गए। हम उन्हीं की जियारत के लिए क़ूफ़ा से आ रहे हैं।

हुसैन—जिसके लिए आप कूफ़ा से आ रहे हैं, वह खुद आपसे मिलने के लिए कूफ़ा जा रहा है। मैं ही हुसैन बिन अली हूँ।

ज़हीर—हमारे जहे-नसीब कि आपकी जियारत हुई। हम सब-के-सब आपके ग़ुलाम हैं। कूफ़ा में इस वक्त, दर व दीवार आपके दुश्मन हो रहे हैं। आप उधर क़स्द न फरमाएँ। हम इसीलिए चले आये हैं कि वहाँ रहकर आपकी कुछ ख़िदमत नहीं कर सकते। हमने हजरत मुसलिम के क़त्ल का खूनी नजारा देखा है, हानी को कत्ल होते देखा है, और ग़रीब तौआ की चोटियाँ कटते कटते देखी हैं। जो लोग आपकी दोस्ती का दम भरते थे, वे आज ज़ियाद के दाहने बाज़ू बने हुए हैं।

हुसैन—खुदा उन्हें नेक रास्ते पर लाए। तक़दीर मुझे कूफ़ा लिए जाती है, और अब कोई ताक़त मुझे वहाँ जाने से रोक नहीं सकती। आप लोग चलकर आराम फरमाएँ। कल का दिन मुबारक होगा, क्योंकि मैं उस मुक़ाम पर पहुँच जाऊँगा, जहाँ शहादत मेरे इंतजार में खड़ी है।

[सब जाते हैं।]

□

छठा दृश्य

[कर्बला का मैदान। एक तरफ़ फ़ेरात-नदी लहरें मार रही है। हुसैन मैदान में खड़े हैं। अब्बास और अली अकबर भी उनके साथ हैं।]

अली अकबर—दरिया के किनारे खेमे लगाए जायँ, वहां ठंडी हवा आएगी।

अब्बास—बड़ी फ़िज़ा की जगह है।

हुसैन—(आँखों में आँसू भरे हुए) भाई लहराते हुए दरिया को देखकर खुद-बखुद दिल भरा आता है। मुझे खूब याद है कि इसी जगह एक बार वालिद मरहूम की फौज उतरी थी। बाबा बहुत ग़मगीन थे। उनकी

आँखों में आँसू न थकते थे। न खाना खाते थे, न सोते थे। मैंने पूछा—"या हजरत, आप क्यों इस कदर बेताब हैं?" मुझे छाती से लिपटाकर बोले—"बेटा, तू मेरे बाद एक दिन यहाँ आएगा, उस दिन तुझे मेरे रोने का सबब मालूम होगा। आज मुझे उनकी यह बात याद आती है। उनका रोना बेसबब नहीं था। इसी जगह हमारे खून बहाए जायँगे, इसी जगह हमारी बहनें और बेटियाँ कैद की जायँगी, इसी जगह हमारे आदमी कत्ल होंगे, और हम जिल्लत उठाएँगे। खुदा की क़सम, इसी जगह मेरी गर्दन की रगें कटेंगी और मेरी दाढ़ी खून में रँगी जायगी। इसी जगह का वादा मेरे नाना से अल्लाहताला ने किया है, और उसका वादा तक़रीर की तहरीर है।

[गाते हैं।]

देगा जगह कोई मेरे मुश्ते गुबार को,
बैठेगा कौन लेके किसी बेक़रार को;
दर सैकड़ों कफ़स में हैं, फिर भी असीर हूँ,
कैसा मकाँ मिला है, ग़रीबे-दयार को;
दिल-सोज़ कौन है, जो ज़माने के ज़ुल्म से,
देखे मेरी बुझी हुई शमए-मज़ार को;
आख़िर है दास्तान शबे-ग़म कि बाद मर्ग,
करता है बंद दीदए-अख़्तर शुमार को;
आवाज़ए-चमन की उम्मीद और मेरे बाद,
चुप कर दिया फ़लक ने ज़बाने-बहार को;
राहत कहाँ नसीब कि सहराए-ग़म की धूप,
देती है आग हर शजरे शायादार को;
खुद आसमाँ को नक्शे-वफ़ा से है दुश्मनी,
तुम क्यों मिटा रहे हो निशाने-मज़ार को;
इस हादिसे से क़ब्ल कि मैं फिर कुछ न कह सकूँ,
सुन लो बयान हाले-दिले-बेक़रार को।

[जैनब खेमे से बाहर निकल आती है।]

जैनब—भैया, यह कौन-सा सहरा है कि इसे देखकर खौफ़ से कलेजा

मुँह को आ रहा है। बानू बहुत घबराई हुई हैं, और असग़र छाती से मुंह नहीं लगाता।

हुसैन—बहन ! यही कर्बला का मैदान है।

जैनब—[दोनो हाथों से सिर पीटकर] भैया, मेरी आँखों के तारे, तुम पर मेरी जान निसार हो। हमें तक़दीर ने यहाँ कहाँ लाके छोड़ा, क्यों कहीं और नहीं चलते ?

हुसैन—बहन, कहां जाऊँ, चारों तरफ से नाके बंद हैं। ज़ियाद का हुक्म है कि मेरा लश्कर यहीं उतरे। मजबूर हूँ, लड़ाई में बहस नहीं करना चाहता।

जैनब—हाय भैया ! यह बड़ी मनहूस जगह है। मुझे लड़कपन से यहाँ की ख़बर है। हाय भैया, इस जगह तुम मुझसे बिछुड़ जाओगे। मैं बैठी देखूँगी, और तुम बर्छियाँ खाओगे। मुझे मदीने भी न पहुँचा सकोगे ? रसूल की औलाद यहीं तबाह होगी, उनकी नामूस यहीं लुटेगी। हाय तकदीर !

इस दश्त में तुम मुझसे बिछुड़ जाओगे भाई,
गर ख़ाक भी छानूँ, तो न हाथ आवेगा भाई;
बहनों को मदीने में न पहुँचाओगे भाई,
मैं देखूंगी और बरछियाँ तुम खाओगे भाई;
औलाद से बानू की यह छुटने की जगह है,
नामूसे-नबी की यही लुटने की जगह है।

[बेहोश हो जाती है। लोग पानी के छीटे देते हैं।]

अली अकबर—या हज़रत, खेमे कहाँ लगाए जायँ ?

अब्बास—मेरी सलाह तो है कि दरिया के किनारें लगें।

हुसैन—नहीं, भैया, दुश्मन हमें दरिया के किनारे न उतरने देंगे। इसी मैदान में खेमे लगाओ, खुदा यहाँ भी है, और वहाँ भी। उसकी मर्जी पूरी होकर रहेगी।

[जैनब को औरतें उठाकर खेमे में ले जाती हैं।]

बानू—हाय-हाय ! बाजीजान को क्या हो गया। या खुदा, हम मुसीबत के मारे हुए हैं, हमारे हाल पर रहम कर !

हुसैन—बानू, यह मेरी बहन नहीं, माँ है। अगर इस्लाम में बुत परस्ती

हराम न होती, तो मैं इसकी इबादत करता। यह मेरे खानदान का रोशन सितारा है। मुझ-सा खुशनसीब भाई दुनिया में और कौन होगा, जिसे खुदा ने ऐसी बहन अता की। जैनब के मुँह पर पानी के छीटे देते हैं।

□

सातवाँ दृश्य

[नसीमा अपने कमरे में अकेली बैठी हुई है—समय बारह बजे रात का]

नसीमा—(दिल में) वह अब तक नहीं आए। गुलाम को उन्हें साथ लाने के लिए भेजा, वह भी वहीं का हो रहा। खुदा करे, वह आते हों। दुनिया में रहते हुए हमारे ऊपर मुल्क की हालत का असर न पड़े। मुहल्ले में आग लगी हो, तो अपना दरवाजा बंद करके बैठ रहना खतरे से नहीं बचा सकता। मैंने अपने तईं इन झगड़ों से कितना बचाया था, यहाँ तक कि अब्बाजान और अम्मा जब यजीद की बैयत न कबूल करने के जर्म में जलावतन कर दिए गए, तब भी मैं अपना दरवाजा बंद किए बैठी रही, पर कोई तदबीर कारगर न हुई। वैयत की बला फिर गले पड़ी। वहब मेरे लिए सब कुछ करने को तैयार है। यह यज़ीद की बैयत भी क़बूल कर लेता, चाहे उसके दिल को कितना ही सदमा हो। पर जो कुछ हो रहा है, उसे देखकर अब मेरा दिल भी यज़ीद की बैयत की तरफ मायल नहीं होता, उससे नफ़रत होती है। मुसलिम कितनी बेदरदी से कत्ल किए गए, हानी को जालिम ने किस बुरी तरह कत्ल कराया। यह सब देखकर अगर यजीद की बैयत कबूल कर लूं, तो शायद मेरा ज़मीर मुझे कभी मुआफ़ न करेगा। हमेशा पहलू में खलिश होती रहेगी। आह ! इस खलिश को भी सह सकती हूं, पर वहब की रूहानी कोफ्त अब नहीं सही जाती। मैंने उन पर बहुत जुल्म किए। अब उनकी मुहब्बत की जंजीर को और न खींचूंगी। जिस दिन से अब्बा और अम्मा निकाले गए हैं, मैंने वहब को कभी दिल से खुश नहीं देखा। उनकी वह जिंदादिली ग़ायब हो गई। यों वह अब भी मेरे साथ हँसते हैं, गाते हैं, पर मैं जानती हूँ, यह मेरी दिलजुई है। मैं उन्हें जब अकेले

बैठे देखती हूँ, तो वह उदास और बेचैन नजर आते हैं......वह आ गए, चलूं, दरवाजा खोल दूं।

[जाकर दरवाजा खोल देती है। वहब अंदर दाखिल होता है।]

नसीमा—तुम आ गए, वरना मैं खुद आती। तबियत बहुत घबरा रही थी। गुलाम कहाँ रह गया?

वहब—क़त्ल कर दिया गया। नसीमा, मैंने किसी को इतनी दिलेरी से जान देते नहीं देखा। इतनी लापरवाही से कोई कुत्ते के सामने लुकमा भी न फेंकता होगा। मैं तो समझता हूँ, वह कोई औलिया था।

नसीमा—हाय, मेरे वफ़ादार और ग़रीब सालिम! ख़ुदा तुझे जन्नत नसीब करे। ज़ालिमों ने उसे क्यों क़त्ल किया?

वहब—आह! मेरे ही कारण उस गरीब की जान गई। जामा मस्जिद में हज़ारों आदमी जमा थे। खबर है और तहक़ीक़ ख़बर है कि हज़रत हुसैन मक्के से बैयत लेने आ रहे हैं। ज़ालिमों के होश उड़े हुए हैं। जो पहले बच रहे थे, उनसे अब यज़ीद की खिलाफ़त का हलफ़ लिया जा रहा है। ज़ियाद ने जब मुझसे हलफ़ लेने को कहा, तो मैं राजी हो गया। इनकार करता, तो उसी वक्त क़ैदखाने में डाल दिया जाता। ज़ियाद ने खुश होकर मेरी तारीफ़ की; और यज़ीद के हाजियों की सफ़ में ऊँचे दरजे पर बिठाया, जागीर में इजाफ़ा किया, और कोई मंसब भी देना चाहते हैं। उसकी मंशा यह भी है कि सब हामियों को एक सफ़ में बिठाकर एकबारगी सबसे हलफ़ ले लिया जाय, इसीलिये मुझे देर हो रही थी। इसी असना में सालिम पहुँचा, और मुझे यजीदवालों की सफ़ में बैठे देखकर मुझसे बदजबानी करने लगा। मुझे दग़ाबाज, जमानासाज, बेशर्म, खुदा जाने, क्या-क्या कहा, और उसी जोश में यज़ीद और ज़ियाद दोनों ही की शान में बेअदबी की। मुझे ताना देता हुआ बोला, 'मैं आज तुम्हारे नमक की क़ैद में आज़ाद हो गया। मुझे क़त्ल होना मंजूर है, मगर ऐसे आदमी की ग़ुलामी मंजूर नहीं, जो ख़ुद दूसरों का ग़ुलाम है, ज़ियाद ने हुक्म दिया—इस बदमाश का ग़र्दन मार दो। और, जल्लादों ने वहीं सहन में उसको क़त्ल कर डाला। हाय! मेरी आँखों के सामने उसकी जान ली गई, और मैं उसके हक़ में जबान तक न खोल सका, उसकी तड़पती हुई लाश मेरी आँखों के सामने घसीटकर कुत्तों के

आगे डाल दी गई, और मेरे खून में जोश न आया। आफ़ियत बड़े महँगे दामों मिलती है।

नसीमा—बेशक, महँगे दाम हैं। तुमने अभी बैयत तो नहीं ली ?

वहब—अभी नहीं, बहुत देर हो गई, लोगों की तादाद बढ़ती जाती थी। आख़िर आज हलफ़ लेना मुल्तवी किया गया। कल फिर सबकी तलबी है।

नसीमा—तुम इन ज़ालिमों की बैयत हर्गिज़ न लेना।

वहब—नहीं नसीमा, अब उसका मौक़ा निकल गया।

नसीमा—मैं तुमसे मिन्नत करती हूँ, हर्गिज़ न लेना।

वहब—तुम मेरी दिलजूई के लिए अपने ऊपर जब्र कर रही हो।

नसीमा—नहीं वहब, अगर तुम दिल से भी बैयत क़बूल करनी चाहो, तो मैं खुश न हूँगी। मैं भी इंसान हूँ वहब, निरी भेड़ नहीं हूँ। मेरे दिल के जज़बात मुर्दा नहीं हुए हैं। मैं तुम्हें इन जालिमों के सामने सिर न झुकाने दूंगी। जानती हूं, जागीर ज़ब्त हो जायगी, वज़ीफ़ा बंद हो जायगा, जलावतन कर दिए जाएँगे। मैं तुम्हारे साथ ये सारी आफ़तें झेल लूंगी।

वहब—और अगर ज़ालिमों ने इतने ही पर बस न की ?

नसीमा—आह वहब, अगर यह होना है, तो खुदा के लिए इसी वक्त यहां से चले चलो। किसी सामान की ज़रूरत नहीं। इसी तरह इन्हीं पाँवों चलो। यहाँ से दूर, किसी दरख्त के साए में बैठकर दिन काट दूंगी, पर इन ज़ालिमों की खुशामद न करूँगी।

वहब—(**नसीमा को गले लगाकर**) नसीमा, मेरी जान तुझ पर फ़िदा हो। ज़ालिमों की सख्ती मेरे हक़ में अक़सीर हो गई। अब उस जुल्म से मुझे कोई शिकायत नहीं। हमारे जिस्म बारहा गले मिल चुके हैं, आज हमारी रूहें गले मिली हैं, मगर इस वक्त नाके बंद होंगे।

नसीमा—जालिमों के नौकर बहुत ईमानदार नहीं होते। मैं उसे पचास दीनार दूंगी,, और वह हमें अपने घोड़े पर सवार कराके शहर के बाहर पहुँचा देगा।

वहब—सोच लो, बागियों के साथ किसी क़िस्म की रू-रियायत नहीं हो सकती। उनकी एक ही सजा है, और वह है क़त्ल।

नसीमा—वहब, इंसान के दिल की कैफ़ियत हमेशा एक-सी नहीं रहती। केचुए से डरने वाला आदमी साँप की गर्दन पकड़ लेता है। ऐश के बंदे गुदड़ियों में मस्त हो जाते हैं। मैंने समझा था, जो खतरा है, घोंसलों से बाहर निकलने में है; अंदर बैठे रहने में आराम ही आराम है। पर अब मालूम हुआ कि सैयाद के हाथ घोंसले के अंदर भी पहुँच जाते हैं। हमारी नजात ज़माना से भागने में नहीं, उसका मुक़ाबला करने में है। तुम्हारी सोहबत ने, मुल्क की हालत ने, क़ौम के रईसों और अमीरों की पस्ती ने, मुझ पर रोशन कर दिया कि यहाँ इतमीनान के मानी ईमान-फ़रोशी और आफ़ियत के मानी हक़कुशी हैं। ईमान और हक़ की हिफ़ाजत असली आफ़ियत और इतमीनान है। शायर ने ख़ूब कहा है—

लुफ्त मरने में है बाक़ी न मज़ा जीने में,
कुछ अगर है, वो यही ख़ूने-जिगर पीने में।

वहब—मुआफ़ करो नसीमा, मैंने तुम्हें पहचानने में ग़लती की। चलो, सफ़र का सामान करें।

□

चौथा अंक

पहला दृश्य

[प्रातःकाल का समय। जियाद फ़र्श पर बैठा हुआ सोच रहा है।]

जियाद—(**स्वगत**) उस वफ़ादारी की क्या कीमत है, जो महज ज़बान तक महदूद रहे? कूफा के सभी सरदार मुसलिम बिन अक़ील से जंग करते वक्त बग़लें झाँक रहे हैं। कोई इस मुहिम को अंजाम देने का बीड़ा नही उठाता। आक़वत और नजात की आड़ में सब-के-सब पनाह ले रहे हैं। क्या अक्ल है, जो दुनिया को अक़बा की ख़याली नियामतों पर क़ुरबान कर देती है। मज़हब! तेरे नाम पर कितनी हिमाकतें सवाब समझी जाती हैं, तूने इंसान को कितना बातिन-परस्त, कितना कमहिम्मत बना दिया है!

[उमर साद का प्रवेश।]

साद—अस्सलामअलेक या अमीर, आपने क्यों याद फ़रमाया?

जियाद—तुमसे एक ख़ास मामले में सलाह लेनी है। तुम्हें मालूम है, 'रै' कितना ज़रखे़ज, आबाद और सेहतपरवर सूबा है?

साद—खूब जानता हूं हुज़ूर, वहाँ कुछ दिनों रहा हूं, सारा सूबा मेवे के बाग़ों और पहाड़ी चश्मों से गुलज़ार बना हुआ है। बाशिंदे निहायत खलीक़ और मिलनसार। बीमार आदमी वहाँ जाकर तवाना हो जाता है!

जियाद—मेरी तज़वीज है कि तुम्हें उस सूबे का आमिल बनाऊँ। मंज़ूर करोगे?

साद—(**बंदगी करके**) सिर और आँखों से। इस क़द्रदानी के लिए क़यामत तक शुक्रगुज़ार रहूंगा।

जियाद—माक़ूल सालाना मुशाहरे के अलावा तुम्हें घोड़े, नौकर, ग़ुलाम सरकार की तरफ़ से मिलेंगे।

साद—ऐन बंदानवाज़ी है। ख़ुदा आपको हमेशा खुशखुर्रम रक्खे।

जियाद—तो मैं मुंशी को हुक्म देता हूँ कि तुम्हारे नाम फ़रमान जारी कर दे, और तुम वहाँ जाकर काम सँभालो।

साद—गुलाम हमेशा आपका मशकूर रहेगा।

जियाद—मुझे यक़ीन है, तुम उतने ही कारगुज़ार और वफ़ादार साबित होगे, जैसी मुझे तुम्हारी ज़ात से उम्मीद है।

[मीर मुंशी को बुलाता है, वह साद के नाम का फ़रमान लिखता है।]

साद—(**फ़रमान लेकर**) तो मैं कल चला जाऊँ?

जियाद—नहीं-नहीं, इतना जल्द नहीं। वहाँ जाने के पहले तुम्हें अपनी वफ़ादारी का सबूत देना पड़ेगा। इतना ऊँचा मंसब उसी को दिया जा सकता है, जो हमारा एतबार हासिल कर सके। यह किसी बड़ी ख़िदमत का सिला होगा।

साद—मैं हरएक खिदमत के लिए दिलोजान से हाज़िर हूँ। जिस मुहिम को और कोई अंजाम न दे सकता हो, उस पर मुझे भेज दीजिए। ख़ुदा ने चाहा तो कामयाब होकर आऊँगा।

जियाद—बेशक-बेशक, मुझे तुम्हारी ज़ात से ऐसी ही उम्मीद है। तुम्हें मालूम है, हुसैन बिन अली कूफ़े की तरफ़ आ रहे हैं। हमको उनकी तरफ़ से बहुत अंदेशा है। तुमको उनसे जंग करने के लिए जाना होगा। उधर से हमें बेफ़िक्र करके फिर 'रै' की हुकूमत पर जाना।

साद—या अमीर, आप मुझे इस मुहिम पर जाने से मुआफ़ रक्खें, इसके सिवा आप जो हुक्म देंगे, उसकी तामील में मुझे ज़रा भी उज्र न होगा।

जियाद—क्यों, हुसैन से जंग करने में तुम्हें क्या उज्र है?

साद—आपका ग़ुलाम हूँ, लेकिन हुसैन के मुक़ाबले से मुझे मुआफ़ रक्खें, तो आपका हमेशा एहसान मानूँगा।

जियाद—बेहतर है, तुम्हारी जगह किसी और को भेजूंगा। फ़रमान वापस देकर घर बैठ जाओ। 'रै' का इलाक़ा उसी आदमी का हक़ है, जो

इस मुहिम को अंजाम दे। मौत के बग़ैर जन्नत नसीब नहीं हो सकती। जो आदमी एक पैर दीन की किश्ती में रखता है, दूसरा पैर दुनिया की किश्ती में, उसे कभी साहिल पर पहुँचना नसीब न होगा।

साद—(**दिल में**) एक तरफ़ 'रै' का इलाक़ा है, दूसरी तरफ़ नजात; एक तरफ़ दौलत और हुकूमत है, दूसरी तरफ़ लानत और अजाब। ख़ुदा! मेरी तक़दीर में क्या लिखा है। (**प्रकट**) या अमीर, मुझे एक दिन की मुहलत दीजिए। मैं कल इस मामले पर ग़ौर करके आपको जवाब दूंगा।

ज़ियाद—अच्छी बात है। सोच लो।

[दोनों चले जाते हैं।]

□

दूसरा दृश्य

[प्रातःकाल का समय। साद का मकान। साद बैठा हुआ है।]

साद—(**मन में**) यार-दोस्त, अपने-बेगाने, अजीज़, सब मुझे हुसैन के मुक़ाबले पर जाने से मना करते हैं। बीवी कहती है, अगर तेरे पास दुनिया में कुछ भी बाक़ी न रहे, तो इससे बेहतर है कि तू हुसैन का ख़ून अपनी गर्दन पर ले। आज मैंने ज़ियाद को जवाब देने का वादा किया है। सारी रात सोचते गुज़र गई, और अभी तक कुछ फ़ैसला न कर सका। अजीब दोफ़स्ले में पड़ा हुआ हूँ। अपना दिल भी हुसैन के क़त्ल पर आमादा नहीं होता। गो मैंने यज़ीद के हाथों पर बैयत की। पर हुसैन से मेरी कोई दुश्मनी नहीं है। कितना दीनदार, कितना बेलौस आदमी है। हमीं ने उन्हें यहाँ बुलाया, बार-बार ख़त और क़ासिद भेजे, और आज जब वह यहाँ हमारी मदद करने आ रहे हैं, तो हम उनकी जान लेने पर तैयार हैं। हाय ख़ुदग़रजी! तेरा बुरा हो, तेरे सामने दीन-ईमान, नेक-बद की तरफ़ से आँखें बंद हो जाती हैं। कितना गुनाहे-अजीम है, अपने रसूल के नवासे की गर्दन पर तलवार चलाना! ख़ुदा न करे, मैं इतना गुमराह हो जाऊँ। 'रै' का सूबा कितना ज़रखेज़ है। वहाँ थोड़े दिन भी रह गया, तो मालामाल हो जाऊँगा। कितनी शान से बसर होगी। तुफ़् है मुझ पर, जो अपनी शान और हुकूमत के लिए

बड़े-से-बड़े गुनाह करने का इरादा कर रहा हूँ। नहीं, मुझसे यह फ़ेल न होगा। 'रै' जन्नत ही सही, पर फ़र्ज़ंदे-रसूल का खून करके मुझे जन्नत में जाना भी मंजूर नहीं।

[ज़ियाद का प्रवेश।]

साद—अस्सलामअलेक। अमीर ज़ियाद, मैं तो ख़ुद ही हाजिर होने वाला था। आपने नाहक तकलीफ़ की।

जियाद—शहर का दौरा करने निकला था। बाग़ियों पर इस वक़्त बहुत सख्त निगाह रखने की ज़रूरत है। मुझे मालूम हुआ कि हबीब, जहीर, अब्दुल्लाह वग़ैरा छिपकर हुसैन के लश्कर में दाखिल हो गये हैं। इसकी रोकथाम न की गई, तो बाग़ी शेर हो जाएँगे। हुसैन के साथ आदमी थोड़े हैं, पर मुझे ताज्जुब होगा, अगर यहाँ आते-आते उनके साथ आधा शहर हो जाय। शेर पिंजरे में भी हो, तो भी उससे डरना चाहिए। रसूल का नाती फ़ौज का मुहताज नही रह सकता। कहो, तुमने क्या फ़ैसला किया? मैं अब ज्यादा इंतजार नहीं कर सकता।

साद—या अमीर, हुसैन के मुक़ाबले के लिए न तो अपना दिल ही गवाही देता है, और न घरवालों की सलाह होती है। आपने मुझे 'रै' की निज़ामत अता की है, इसके लिए आपको अपना मुरब्बी समझता हूँ। मगर क़त्ले-हुसैन के वास्ते मुझे न भेजिए।

जियाद—साद, दुनिया में कोई ख़ुशी वग़ैर तकलीफ़ के नहीं हासिल होती। शहद के साथ मक्खी के डंक का जहर भी है। तुम शहद का मजा उठाना चाहते हो, मगर डंक की तकलीफ़ नहीं उठाना चाहते। बिला मौत की तकलीफ़ उठाए जन्नत में जाना चाहते हो। तुम्हें मजबूर नहीं करता। इस इनाम पर हुसैन से जंग करने के लिए आदमियों की कमी नहीं है। मुझे फ़रमान वापस दे दो, और आराम से घर बैठकर रसूल और ख़ुदा की इबादत करो।

साद—या अमीर! सोचिए, इस हालत में मेरी कितनी बदनामी होगी। सारे शहर में खबर फैल गई कि मैं 'रै' का नाज़िम बनाया गया हूँ। मेरे यार-दोस्त मुझे मुबारकबाद दे चुके। अब जो मुझसे फ़रमान ले लिया जायगा, तो लोग दिल में क्या कहेंगे?

ज़ियाद—यह सवाल तो तुम्हें अपने दिल में पूछना चाहिए।

साद—या अमीर, मुझे कुछ और मुहलत दीजिए।

ज़ियाद—तुम इस तरह टालमटोल करके देर करना चाहते हो। कलाम पाक की क़सम है, अब मैं तुम्हारे साथ ज्यादा सख्ती से पेश आऊँगा। अगर शाम को हुसैन से जंग करने के लिए तैयार होकर न आए, तो तेरी जायदाद ज़ब्त कर लूँगा, तेरा घर लुटवा दूँगा, यह मकान पामाल हो जायगा, और तेरी जान की भी खैरियत नहीं। [ज़ियाद का प्रस्थान।]

साद—(**दिल में**) मालूम होता है मेरी तक़दीर में रूस्याह होना ही लिखा है। अब महज़ 'रै' की निज़ामत का सवाल है? अब अपनी जायदाद और जान का सवाल है। इस ज़ालिम ने हानी को कितनी बेरहमी से क़त्ल किया। कसीर को भी अपना अईनपरवरी की गिराँ क़ीमत देनी पड़ी। शहर-वालों ने ज़बान तक न हिलाई। वह तो महज़ हुसैन के अजीज़ थे। यह मामला उससे कहीं नाज़ुक है। ज़ियाद बरहम हो जायगा, तो जो कुछ न कर गुज़रे, वह थोड़ा है। मैं 'रै' को ईमान पर क़ुर्बान कर सकता हूँ, पर जान और जायदाद को नहीं क़ुर्बान कर सकता। काश! मुझमें हानी और कसीर की-सी हिम्मत होती।

[शिमर का प्रवेश।]

शिमर—अस्सलामअलेक। साद, किस फ़िक्र में बैठे हो, ज़ियाद को तुमने क्या जवाब दिया?

साद—दिल हुसैन के मुक़ाबले पर राजी नहीं होता।

शिमर—सरवत और दौलत हासिल करने का ऐसा सुनहरा मौक़ा फिर हाथ न आयेगा। ऐसे मौक़े ज़िंदगी में बार-बार नहीं आते।

साद—नजात कैसे होगी?

शिमर—ख़ुदा रहीम है, क़रीम है, उसकी ज़ात से कुछ बईद नहीं। गुनाह को माफ़ न करता, तो रहीम क्यों कहलाता? हम गुनाह न करें, तो तो वह माफ़ क्या करेगा?

साद—ख़ुदा ऐसे बड़े गुनाह को माफ़ न करेगा।

शिमर—अगर खुदा की जात से यह एतकाद उठ जाय, तो मैं आज मुसलमान न रहूँ। यह रोज़ा और नमाज़ या ज़कात और खैरात, किस मर्ज

की दवा है, अगर हमारे गुनाहों को भी माफ़ न करा सके।

साद—रसूले खुदा को क्या मुँह दिखाऊँगा ?

शिमर—साद, तुम समझते हो, हम अपनी मर्जी के मुख्तार हैं, यह यक़ीदा बातिल है। सब-के-सब हुक्म के बंदे हैं। उसकी मरजी के बग़ैर हम अपनी उँगली को भी नहीं हिला सकते। सबाब और अज़ाब का यहाँ सवाल ही नहीं रहता। अक्लमंद आदमी उधार के लिए नक़द को नहीं छोड़ता। ताखीर मत करो, वरना फिर हाथ मलोगे।

[शिमर चला जाता है।]

साद—(**दिल में**) शिमर ने बहुत माकूल बातें कहीं। बेशक खुदा अपने बंदों के गुनाहों को माफ़ करेगा, वरना हिसाब के दिन दोज़ख में गुनहगारों के खड़े होने की जगह भी न मिलेगी। मैं जाहिद न सही, लेकिन मुझे तो खुदा के सामने नदामत से गर्दन झुकाने की कोई वजह नहीं है। बेशक खुदा की यही मरजी है कि हसैन के मुक़ाबले पर मैं जाऊँ, वरना ज़ियाद यह तजवीज़ ही क्यों करता। जब खुदा की यही मरजी है, तो मुझे सिर झुकाने के सिवा और क्या चारा है। अब जो होना हो, सो हो—आग में कूद पड़ा, जलूँ या बचूँ।

[ग़ुलाम को बुलाकर ज़ियाद के नाम अपनी मंजूरी का ख़त लिखता है।]

ग़ुलाम—शायद हुज़ूर ने 'रै' की निजामत क़बूल कर ली ?

साद—जा, तुझे इन बातों से क्या मतलब।

ग़ुलाम—मैं पहले ही से जानता था कि आप यही फ़ैसला करेंगे।

साद—तुझे क्योंकर इसका इल्म था ?

ग़ुलाम—मैं खुद इस मंसब को न छोड़ता, चाहे इसके लिए कितना ही जुल्म करना पड़ता।

साद—(**दिल में**) ज़ालिम कैसी पते की बात कहता है।

[ग़ुलाम चला जाता है और साद गाने लगता है।]

कोई तुमसे जुदा दर्दे-जुदाई लेके बैठा है,
वह अपने घर में अब अपनी कमाई लेके बैठा है।
जिगर, दिल, जान, ईमाँ अब कहाँ तक नाम ले कोई,

वह ज़ालिम सैकड़ों चीज़ें पराई लेके बैठा है।
खुदा ही है मेरी तोबा का, जब साक़ी कहे मुझसे—
अरे, पी भी, कहाँ की पारसाई लेके बैठा है।
तेरे काटे शबे-ग़म मेरी बरसों से नहीं कटती,
तो फिर तू ऐ खुदा, नाहक़ खुदाई लेके बैठा है।
कहूँ कुछ मैं, तो मुँह फेरकर कहता है औरों से—
खुदा जाने, यह कब की आसनाई लेके बैठा है।
अमल कुछ चल गया है शौक़ पर ज़ाहिद का ऐ यारो,
कि मस्जिद में पुरानी एक चटाई लेके बैठा है।

□

तीसरा दृश्य

[केरात-नदी के किनारे साद का लश्कर पड़ा हुआ है। केरात से दो मील के फ़ासले पर कर्बला के मैदान में हुसैन का लश्कर है। केरात और हुसैन के लश्कर के बीच में साद ने एक लश्कर को नदी के पानी को रोकने के लिए पहरा बैठा दिया है। प्रातःकाल का समय। शिमर और साद खेमे में बैठे हुए हैं।]

साद—मेरा दिल अभी तक हुसैन से जंग करने को तैयार नहीं होता। चाहता हूँ, किसी तरीके से सुलह हो जाय, मगर तीन क़ासिदों में से एक भी मेरे खत का जवाब न ला सका। एक तो हज़रत हुसैन के पास जा ही न सका, दूसरा शर्म के मारे रास्ते ही से किसी तरफ़ खिसक गया, और तीसरे ने जाकर हुसैन की बैयत अख्तियार कर ली। अब और क़ासिदों को भेजते हुए डरता हूँ कि इनका भी वही हाल न हो।

शिमर—ज़ियाद को ये बातें मालूम होंगी, तो आपसे सख्त नाराज़ होगा।

साद—मुझे बार-बार यही खयाल आता है कि हुसैन यहाँ जंग के इरादे से नहीं, महज हम लोगों के बुलाने से आए हैं। उन्हें बुलाकर उनसे दग़ा करना इंसानियत के खिलाफ़ मालूम होता है।

शिमर—मुझे खौफ़ है कि आपके ताखीर से नाराज़ होकर ज़ियाद आपको वापस न बुला लें। फिर उनके गुस्से से खुदा ही बचाए। ज़ियाद ने कितनी सख्त ताक़ीद की थी कि हुसैन के लश्कर को पानी का एक बूँद भी न मिले। वहाँ उनके आदमी दरिया से पानी ले जाते हैं, कुएँ खोदते हैं। इधर से कोई रोक-टोक नहीं होती। क्या आप समझते हैं कि ज़ियाद से ये बातें छिपी होंगी।

साद—मालूम नहीं, कौन उसके पास ये सब ख़बरें भेजता रहता है?

शिमर—उसने यहाँ अपने कितने गोइंदे बिठा रक्खे हैं, जो दम-दम की ख़बरें भेज देते हैं।

[एक क़ासिद का प्रवेश।]

क़ासिद—अस्सलामअलेक बिन साद। अमीर का हुक्मनामा लाया हूँ।

[साद को ज़ियाद का ख़त देता है।]

साद—(**खत पढ़कर**) तुम बाहर बैठो, इसका जवाब दिया जायगा। (**क़ासिद चला जाता है।**) इसमें भी वही ताक़ीद है कि हुसैन को पानी मत लेने दो, जंग करने में एक लहमे की देर न करो। देखिए, लिखते हैं—

"हुसैन से जंग करने के लिए अब कोई बहाना नहीं रहा। फ़ौज की कमी की शिकायत थी, सो वह भी नहीं रही। अब मेरे पास बाईस हज़ार सवार और पैदल मौजूद हैं।"

शिमर—बेशक, उनका लिखना वाजिब है। मैं जाकर सख्त हुक्म देता हूँ कि हुसैन के लश्कर की एक चिड़िया भी दरिया के किनारे न आने पाए। आप जंग का हुक्म दे दें।

साद—आपको मालूम है, बाईस हज़ार आदमियों में कितने अज़ाब के खौफ़ से भाग गए, और रोज़ भागते जाते हैं।

शिमर—इसीलिए तो और भी ज़रूरी है कि जंग शुरू कर दी जाय, वरना रफ्ता-रफ्ता यह सारी फ़ौज बादलों की तरह ग़ायब हो जायगी। पर

मैंने सुना है, ज़ियाद ने उन सब आदमियों को गिरफ्तार कर लिया है, और बहुत जल्द वे सब फ़ौज में आ जायँगे। पर यह हुक्म भी जारी कर दिया है कि जो आदमी फौज से भागेगा, उसकी जायदाद छीन ली जायगी, और उसे ख़ानदान के साथ जलावतन कर दिया जायगा। इस हुक्म का लोगों पर अच्छा असर पड़ा है। अब उम्मीद नहीं हैं कि भागने की कोई हिम्मत करे। मुझे यह भी ख़बर मिली है कि ज़ियाद ने कई आदमियों को क़त्ल करा दिया है।

[एक और क़ासिद का प्रवेश।]

क़ासिद—अस्सलामअलेक बिन साद। हज़रत हुसैन ने यह ख़त भेजा है, और उसका जवाब तलब किया है। **(साद को ख़त देता है।)**

साद—**(ख़त पढ़कर)** बाहर जाकर बैठो। अभी जवाब मिलेगा।

शिमर—**(ख़त पर झुककर)** इसमें क्या लिखा है?

साद—**(ख़त को बंद करके)** कुछ नहीं, यही लिखा है कि मैं तुमसे मिलना चाहता हूँ।

शिमर—यह उनकी नई **चाल** है। कलाम पाक की क़सम, आप उनकी दरख्वास्त मानकर पछताएँगे। आपको फ़ौज में फिर आना नसीब न होगा।

साद—क्या तुम्हारा यह मतलब है कि हुसैन मुझसे दग़ा करेंगे? अली का बेटा दग़ा नहीं कर सकता।

शिमर—यह मेरा मतलब नहीं। यहाँ से बच निकलने की कोई तजवीज पेश करनी चाहते होंगे। उनकी ज़बान में जादू का असर है, ऐसा न हो कि वह आपको चकमा दें। क्या हर्ज है, अगर मैं भी आपके साथ चलूं?

साद—मैं समझता हूँ कि मैं अपने दीन और दुनिया की हिफ़ाजत खुद कर सकता हूँ। मुझे तुम्हारी मदद की ज़रूरत नहीं।

शिमर—आपको अख्तियार है। कम-से-कम मेरी इतनी सलाह तो मान ही लीजिएगा कि अपने थोड़े से चुने हुए आदमी लेते जाइएगा।

साद—यह मेरा ज़ाती मामला है, जैसा मुनासिब समझूंगा, करूँगा।

[क़ासिद को बुलाकर ख़त का जवाब देता है।]

शिमर—रात का वक्त लिखा है न ?

साद—इतना तो तुम्हें खुद समझ लेना चाहिए था।

शिमर—(**जाने के लिए खड़ा होकर**) मेरी बात का जरूर खयाल रखिएगा। (**दिल में**) इसके अंदाज से मालूम होता है कि हुसैन की बातों में आ जायगा। जियाद के पास खुद जाकर यह क़िस्सा कहूँ।

साद—(**दिल में**) ख़ुदा तुझसे समझे ज़ालिम ! तू जियाद से भी दो अंगुल बढ़ा हुआ है। शायद मेरा यह क़यास ग़लत नहीं है कि तू ही ज़ियाद को यहाँ से हालात की इत्तिला देता है। हुसैन दग़ा करेंगे। हुसैन दग़ा करने वालों में नहीं, दग़ा का शिकार होनेवालों में हैं।

[उठकर अंदर चला जाता है।]

□

चौथा दृश्य

[हुसैन के हरम की औरतें बैठी हुई बातें कर रही हैं। शाम का वक्त।]

सुगरा—अम्मा, बड़ी प्यास लगी है।

अली असग़र—पानी। बूआ, पानी।

हंफ़ा—कुरबान गई, बेटे कितना पानी पियोगे ? अभी लाई। (**मश्कों को जाकर देखती है, और छाती पीटती लौटती है।**) ऐ क़ुरबान गई बीबी, कही एक बूंद पानी नहीं। बच्चों को क्या पिलाऊँ ?

जैनब—क्या बिलकुल पानी गायब हो गया ?

हंफ़ा—ऐ क़ुरबान गई बीबी, सारे मटके और मशकें खाली पड़ी हुई हैं।

जैनब—ग़जब हो गया। नदी तो बंद ही थी, अब जालिम कुएँ भी नही खोदने देते।

अली असग़र—पानी ! बूआ, पानी !

शहरबानू—या ख़ुदा ! किस अज़ाब में फँसे। इन नन्हों को कैसे समझाऊँ !

हंफ़ा—बीबी, क़ुरबान जाऊँ ! मैं जाकर दरिया से पानी लाती हूँ ! कौन मुआ रोकेगा, मुँह झुलस दूँ उसका। क्या मेरे लाल प्यासों तड़पेंगे, जब दरिया में पानी भरा हुआ है ?

जैनब—तू नहीं जानती, साढ़े छ हज़ार जवान दरिया का पानी रोकने के लिए तैनात हैं ?

हंफ़ा—ऐ क़ुरबान जाऊँ बीबी, कौन मुझसे बोलेगा; झाड़ न मारूँगी। रसूल के बेटे प्यासे रहेंगे ?

[हंफ़ा एक मशक लेकर दरिया की तरफ़ जाती है, और थोड़ी देर बाद लौट आती है, सिर के बाल नुचे हुए, कपड़े फटे हुए, मशक नदारद। रोती हुई ज़मीन पर बैठ जाती है।]

जैनब—क्या हुआ हंफ़ा ? यह तेरी क्या हालत है ?

हंफ़ा—बीबी, खुदा का अजाब इन रूस्याहों पर नाज़िल हो। ज़ालिम ने मुझे रोक लिया, मेरी मशक छीन ली, और एक कुत्ते को मुझ पर छोड़ दिया। भागते-भागते किसी तरह यहाँ पहुंची हूँ। हाय ! इन मूजियों पर आसमान भी नहीं फट पड़ता। इतनी दुर्गति कभी न हुई थी।

[रोती है।]

हुसैन—(**अन्दर जाकर**) हंफ़ा, क्यों रोती है, अरे, यह तेरे कपड़े किसने फाड़े ?

जैनब—बेचारी शामत की मारी पानी लेने गई थी। बच्चे प्यास से तड़प रहे थे। ज़ालिमों ने नोमजान कर दिया।

हुसैन—हंफ़ा, मत रोओ। रसूल के क़दमों की क़सम, अभी उन ज़ालिमों का सिर तेरे पैरों पर होगा, जिनके बेरहम हाथों ने तेरी बेहुरमती की, चाहे मेरे सारे रफ़ीक़, मेरे सारे अज़ीज़ और मैं खुद क्यों न मर जाऊं। औरत की बेहुरमती का बदला खून है, चाहे वह ग़ुलाम और बेकस ही क्यों न हो। उन मलऊनों को दिखा दूंगा कि मुझे अपनी लौंडी की आबरू अपने हरम से कम प्यारी नहीं है।

[तलवार हाथ में लेकर बाहर जाते हैं पर हंफ़ा उनके पैरों को पकड़ लेती है।]

हंफ़ा—मेरे आक़ा, मेरी जान आप पर फ़िदा हो। मैं अपना बदला

दुनिया में नहीं, अक़बे में लेना चाहती हूँ, जहाँ की आग कही ज्यादा तेज़, जहाँ की सजाएँ यहाँ से कहीं ज्यादा दिल हिलानेवाली होंगी। मैं नही चाहती कि आपकी तलवार से क़त्ल होकर वह अजाब से छूट जाय।

हुसैन - हंफ़ा, यह सब उसके लिए है, जो दुनिया में अपना बदला न ले सके। अगर मेरे पास एक लाख आदमी होते, तो तेरी बेइज्जती का बदला लेने के लिए मैं उन्हें क़ुरबान कर देता, उन बहत्तर आदमियों की हक़ीक़त ही क्या है ! मेरे पैरों को छोड़ दे, ऐसा न हो कि मेरा गुस्सा आग बनकर मुझको जलाकर खाक कर दे।

हंफ़ा—(**दिल में**) काश इस वक्त वे ज़ालिम यहाँ होते और देखते कि जिसे उन्होंने कुत्तों से नुचवाया था, उसकी अली के बेटे की निगाहों में कितनी इज्जत है। नहीं, मेरे मौला, मैं दुश्मनों को इतनी अच्छी मौत नहीं देना चाहती। मैं उन्हें जहन्नुम की आग में जलाना चाहती...

[अली अकबर का प्रवेश।]

अली अकबर—अब्बाजान, साद अपनी फ़ौज से निकलकर आया है, और आपसे मिलना चाहता है।

हुसैन—हाँ, मैंने इसी वक्त उसे बुलाया था। पहले उससे हंफ़ा को सतानेवालों के खून का मुआविज़ा लेना है।

[**हुसैन** और अली अकबर बाहर जाते हैं।]

अली अकबर—या हज़रत, मैं भी आपके साथ रहूँगा।

अब्बास—मैं भी।

हुसैन—नहीं, मैंने उनसे तनहा मिलने का वादा किया है। तुम्हारे साथ रहने से मेरी बात में फ़र्क़ आएगा।

अली अकबर—वह तो अपने साथ एक सौ जवानों से ज्यादा लाया है, जो चंद क़दमों के फ़ासले पर खड़े हैं। हम आपको तनहा न जाने देंगे।

अब्बास—साद की शराफ़त पर मुझे भरोसा नहीं है।

हुसैन—मैं उसे इतना कमीना नहीं समझता कि मेरे साथ दग़ा करे। खैर, चलो, अगर उसे कोई एतराज़ न होगा, तो वहाँ मौजूद रहना। उसे भी अपने साथ दो आदमियों को रखने की आज़ादी होगी।

[तीनों आदमी शस्त्र से सुसज्जित होकर चलते हैं। फिर दोनों
फ़ौजों के बीच में हुसैन और साद खड़े हैं। हुसैन के साथ
अकबर और अब्बास हैं, साद के साथ उसका बेटा
और गुलाम।]

साद—अस्सलामअलेक। या फ़र्ज़ंदे-रसूल, आपने मुझे अपनी खिदमत में हाज़िर होने का मौक़ा दिया, इसके लिए आपका मशकूर हूँ। मुझे क्या इर्शाद है?

हुसैन—मैंने तुम्हें यह तसफ़िया करने के लिये तकलीफ़ दी है कि आखिर तुम मुझसे क्या चाहते हो? तुम्हारे वालिद रसूल पाक के रफ़ीकों में थे, और अगर बाप की तबियत का असर कुछ बेटे पर पड़ता है, तो मुझे उम्मीद है कि तुममें इंसानियत का जौहर मौजूद है। क्या नहीं जानते कि मैं कौन हूँ। मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ।

साद—आप रसूल पाक के नवासे हैं।

हुसैन—और यह जानकर भी तुम मुझसे जंग करने आए हो। क्या तुम्हें खुदा का ज़रा भी खौफ़ नहीं है? तुममें ज़रा भी इंसाफ़ नहीं है कि तुम मुझसे जंग करने आए हो, जो तुम्हारे ही भाइयों की दग़ा का शिकार बनकर यहाँ आ फँसा है, और अब यहाँ से वापस जाना चाहता है। क्यों ऐसा काम करते हो, जिसके लिए तुम्हें दुनिया में रुसवाई और अक़बा में रूस्याही हासिल हो?

साद—या हज़रत, मैं क्या करूँ! खुदा जानता है कि मैं कितनी मजबूरी की हालत में यहाँ आया हूँ।

हुसैन—साद, कोई इंसान आज तक वह काम करने पर मजबूर नहीं हुआ, जो उसे पसंद न आया हो। तुमको यक़ीन है कि मेरे क़त्ल के सिले में तुम्हारी जागीर बेढंगी 'रै की हुकूमत हाथ आएगी, दौलत हासिल होगी। लेकिन साद हराम की दौलत ने बहुत दिनों तक किसी के साथ दोस्ती नहीं की और न वह तुम्हारे लिए पुरानी आदत छोड़ेगी। हबिस को छोड़ो, और मुझे अपने घर जाने दो।

साद—फिर तो मेरी जिंदगी के दिन उँगलियों पर गिने जा सकते हैं।

हुसैन—अगर यह खौफ़ है तो मैं तुझे अपने साथ ले जा सकता हूँ।

साद—या हज़रत, ज़ालिम मेरे मकान बरबाद कर देंगे, जो शहर में अपना सानी नहीं रखते।

हुसैन—सुभानअल्लाह! तुमने वह बात मुँह से निकाली, जो तुम्हारी शान से बईद है। अगर हक़ पर क़ायम रहने की सज़ा में तुम्हारा मकान बरबाद किया जाय, तो ऐसा बड़ा नुकसान नहीं। हक़ के लिए लोगों ने इससे कहीं बड़े नुकसान उठाए हैं, यहाँ तक कि जान से भी दरेग़ नहीं किया। मैं वादा करता हूँ कि तुझे उससे अच्छा मकान बनवा दूंगा।

साद—या हज़रत, मेरे पास बड़ी ज़रखेज़ और आबाद जागीरें हैं, जो ज़ब्त कर ली जायँगी, और मेरी औलाद उनसे महरूम रह जायगी।

हुसैन—मैं हिजाज में तुम्हें उनसे ज्यादा ज़रखेज़ और आबाद जागीरें दूंगा। इसका इतमीनान रक्खो कि मेरी ज़ात से तुम्हें कोई नुकसान न पहुँचेगा।

साद—या हज़रत, आप पर मेरी जान निसार हो, मेरे साथ बाईस हज़ार सवार और पैदल हैं। ज़ियाद ने उनके सरदारों से बड़े-बड़े वादे कर रक्खे हैं, मैं अगर आपकी तरफ़ आ भी जाऊँ, तो वे आपसे ज़रूर जंग करेंगे। इसीलिये मुनासिब यही है कि आप जो शर्तें पसंद फ़रमाएँ, मैं जियाद को लिख भेजूं। मैं अपने खत में सुलह पर ज़ोर दूँगा, और मुझे यक़ीन है कि जियाद मेरी तजवीज़ मंज़ूर कर लेगा।

हुसैन—खुदा तुम्हें इसका सबाब आक़बत में देगा। मेरी पहली शर्त यह है कि मुझे मक्का लौटने दिया जाय; अगर यह न मंज़ूर हो, तो सरहदों की तरफ़ जाकर अमन से ज़िंदगी बसर करने को राज़ी हूँ; अगर यह भी मंज़ूर न हो, तो मुझे यज़ीद ही के पास जाने दिया जाय; और सबसे बडी शर्त यह है कि जब तक मैं यहाँ हूँ, मुझे दरिया से पानी लेने की पूरी आज़ादी हासिल हो। मैं यज़ीद की बैयत किसी हालत से न क़बूल करूँगा, और अगर तुमने मेरी वापसी की यह शर्त क़ायम न की, तो हम यहाँ शहीद हो जाना ही पसंद करेंगे। लेकिन अगर यह मंशा है कि मुझे क़त्ल ही कर दिया जाय, तो मैं अपनी जान को गिराँ-से-गिराँ क़ीमत पर बेचूँगा।

साद—हज़रत, आपकी शर्तें बहुत माक़ूल हैं।

हुसैन—मैं तुम्हारे जवाब का कब तक इंतजार करूँ?

साद—सुबह आफ़ताब की रोशनी के साथ मेरा क़ासिद आपकी खिदमत में हाज़िर होगा।

[दोनों आदमी अपनी-अपनी फ़ौज की तरफ़ लौटते हैं।]

□

पाँचवाँ दृश्य

[आठ बजे रात का समय। ज़ियाद की खास बैठक। शिमर और ज़ियाद बातें कर रहे हैं।]

ज़ियाद—क्या कहते हो। मैंने सख्त ताक़ीद की थी कि दरिया पर हुसैन का कोई आदमी न आने पाए।

शिमर—बजा है। मगर मैं तो हुसैन के आदमियों को दरिया से पानी लाते बराबर देखता रहा हूँ; और, शायद मेरा, दरिया की हिफ़ाज़त के लिए अपनी ज़िम्मेदारी पर, हुक्म जारी करना साद को बुरा लगा।

ज़ियाद—साद पर मुझे इतमीनान है। मुमकिन है, उसे लोगों को प्यासों मरते देखकर रहम आ गया हो, और हक़ तो यह है कि शायद मैं भी मौक़े पर इतना बेरहम नहीं हो सकता। इससे यह नहीं साबित होता कि साद की नीयत डाँवाडोल हो रही है।

शिमर—मैं साद की शिकायत करने के लिए आपकी खिदमत में नहीं हाजिर हुआ हूँ, सिर्फ़ वहाँ की हालत अर्ज़ करनी थी। हुसैन ने आज साद को मुलाक़ात करने को भी बुलाया है। देखिए, क्या बातें होती हैं।

ज़ियाद—क्या ? हुसैन से मुलाक़ातें भी कर रहा है ? तुम साबित कर सकते हो ?

शिमर—हुज़ूर, मेरे सबूत की ज़रूरत नहीं। उनका क़ासिद आता ही होगा।

ज़ियाद—क्या कई बार मुलाक़ातें हुई हैं ?

शिमर—आज की मुलाक़ात का तो मुझे इल्म है, पर शायद और भी मुलाक़ातें तनहाई में हुई हैं।

ज़ियाद—कोई और आदमी साथ नहीं रहा ?

शिमर—मैंने खुद साथ चलना चाहा था, पर मेरी अर्ज़ क़बूल न हुई।

ज़ियाद—कलाम पाक की क़सम, मैं इसे बर्दाश्त न कर सकता। मैंने उसे हुसैन से जंग करने को भेजा है, मसालहत करने के लिए नहीं। मैं उससे इसका जवाब तलब करूँगा।

शिमर—हुज़ूर ने उनके साथ जो सलूक किए हैं, और इस काम के लिए जो सिला तजवीज किया है, वह तो किसी दुश्मन को भी आपका दोस्त बना देता। मगर अपना-अपना मिजाज़ ही तो है।

[एक क़ासिद का प्रवेश।]

क़ासिद—अस्सलामअलेक या अमीर, उमर बिन साद का खत लाया हूँ।

[ज़ियाद को खत देता है, और ज़ियाद उसे पढ़ने लगता है।
क़ासिद बाहर चला जाता है।]

ज़ियाद—इस मसालहत का नतीजा तो अच्छा निकला। हुसैन वापस जाने को रज़ामंद हैं, और साद ने इसकी ताईद करते हुए लिखा है कि उनकी जानिब से किसी खतरे का अंदेशा नहीं। खलीफ़ा यज़ीद की मंशा भी यही है। साद ने खूब किया कि बग़ैर जंग के फ़तह हासिल कर ली।

शिमर—बेशक बड़ी शानदार फ़तह है।

ज़ियाद—क्यों, यह फ़तह नहीं है? तंग क्यों करते हो?

शिमर—जिसे आप फ़तह समझ रहे हैं हैं, वह फ़तह नहीं, आपकी शिकस्त है। ऐसी शिकस्त, जो आपको फिर पनपने न देगी। आग फूस में पड़कर उतनी ख़ौफ़नाक नहीं हो सकती, जितने इस मुहासिरे से निकलकर हुसैन हो जायँगे। शेर किसी शिकार के पीछे दौड़ता हुआ बस्ती में आ गया है। उसे आप घेरकर मार सकते हैं, लेकिन एक बार वह फिर जंगल में पहुँच जाय, तो कौन है, जो उसके पंजों के सामने जाने की हिम्मत कर सके। कर्बला से निकलकर हुसैन वह दरिया होंगे, तो बाँध को तोड़कर बाहर निकल आया हो, और आपकी हालत उसी टूटे हुए बाँध की-सी होगी।

जियाद—हाँ, इसमें तो कोई शक नहीं कि अगर वह निकलकर हिजाज और यमन चले जायँ, तो शायद ख़लीफ़ा यजीद की खिलाफ़त डगमगा

जाय। मगर एक शर्त यह भी तो है कि उन्हें यजीद के पास जाने दिया जाए। इसमें हमें क्या उज्र हो सकता है?

शिमर—अगर बाज कबूतर के क़रीब पहुँच जाय, तो दुनिया की कोई फ़ौज उसे बाज़ के चंगुल से नहीं बचा सकती। हुसैन अपने बाप के बेटे हैं। ख़लीफा उनकी दलीलों से पेश नहीं पा सकते। कोई अजब नहीं कि अपनी अक्ल के ज़ोर से आज का क़ैदी कल का ख़लीफ़ा हो, और खलीफ़ा को उल्टे उसकी बैयत क़बूल करनी पड़े।

जियाद—तुम्हारा यह ख़याल भी बहुत सही है। काश मुझे तुम्हारी वफ़ादारी का इतना इल्म पहले होता, तो तुम्हीं फ़ौज के सिपहसालार होते।

शिमर—काश, साद ने मेरी बातें इतनी क़द्रदानी से सुनी होतीं, तो मुझे यहाँ आने और आपको तक़लीफ़ देने की जरूरत ही न पड़ती।

जियाद—तुम सुबह चले जाओ, और साद से कहो कि फ़ौरन् जंग शुरू करे।

शिमर—हुज़ूर को जो हुक्म देना हो, खत के ज़रिये दें। मातहत के ज़रिये उसके अफ़सर को हुक्म देना अफ़सर को मातहत के ख़ून का प्यासा बनाना है।

जियाद—बेहतर, मैं ख़त ही लिख देता हूं।

[ज़ियाद ख़त लिखकर शिमर को देता है।]

शिमर—इसमें हुज़ूर ने ऐसा कोई क़लमा तो नहीं लिखा, जिसमें साद को शुवहा हो कि मेरे इशारे में लिखा गया है?

जियाद—मुतलक़ नहीं। हाँ, यह अलवत्ता लिख दिया है कि अगर तूने सिरताबी की, तो तेरी जगह शिमर लश्कर का सरदार होगा।

शिमर—हुजूर की क़द्रदानी की कहाँ तक तारीफ़ करूँ।

जियाद – इसकी ज़रूरत नहीं। अगर साद मेरे हुक्म की तामील करे, तो बेहतर, नहीं तो वह माज़ूल होगा, और तुम लश्कर के सरदार होगे। पहला काम जो तुम करोगे, वह साद का सर क़लम करके मेरे पास भेजना होगा। यही तुम्हारी बहाली की बिस्मिल्लाह होगी।

शिमर—(उठकर) आदाब बजा लाता हूँ।

[शिमर बाहर चला जाता है, और ज़ियाद मकान में आराम करने जाता है ।]

□

छठा दृश्य

[प्रातःकाल। शाम का लश्कर। हुर और साद घोड़ों पर सवार फ़ौज़ का मुआयना कर रहे हैं।]

हुर—अभी तक ज़ियाद ने आपके खत का जवाब नहीं दिया ?

साद—उसके इंतजार में रात-भर आँख नहीं लगीं। जब किसी की आहट मिलती थी, तो गुमान होता था कि क़ासिद है। मुझे तो यक़ीन है कि अमीर ज़ियाद मेरी तजवीज मंजूर कर लेंगे।

हुर—काश, ऐसा होता ! अगर जंग की नौबत आई, तो फौज के कितने ही सिपाही लड़ने से इनकार कर देंगे।

[सामने से शिमर घोड़ा दौड़ाता हुआ आता है ।]

साद—लो, क़ासिद भी आ गया। खुदा करे, अच्छी खबर लाया हो। अरे, यह तो शिमर है।

हुर—हाँ, शिमर ही है। खुदा खैर करे, जब यह खुद ज़ियाद के पास गया था, तो मुझे आपकी तजवीज के मंजूर होने में बहुत शक है।

शिमर—(**करीब आकर**) अस्सलामअलेक। मैं कल एक ज़रूरत से मकान चला गया। अमीर ज़ियाद को खबर हो गई। उसने मुझे बुलाया, और आपको यह खत दिया।

[खत साद को देता है। साद पढ़कर जेब में रख लेता है, और एक लंबी साँस लेता है।]

साद—शिमर, मैंने समझा था, तुम सुलह की खबर लाते होगे।

शिमर—आपकी समझ की ग़लती थी। आपको मालूम है कि अमीर ज़ियाद एक बार फ़ैसला करके फिर उसे नहीं बदलते। अब आपकी क्या मंशा है ?

साद—मजबूर हुक्म की तामील करूँगा।

शिमर—तो मैं फ़ौजों को तैयार होने का हुक्म देता हूँ ?

साद—जैसा मुनासिब समझो।

[शिमर फ़ौज की तरफ़ चला जाता है।]

हुर—ख़ुदा सब कुछ करे, इंसान को बातिन स्याह न बनाए।

साद—यह सब इन्हीं हज़रत की कारगुजारी है। ज़ियाद मेरी तरफ़ से कभी इतने बरगुमान न थे।

हुर—मुझे तो फ़र्ज़ंदे-रसूल से लड़ने के ख़याल ही से वहशत होती है।

साद—हुर, तुम सच कहते हो। मुझे यक़ीन है कि उनसे जो लड़ेगा, उसकी जगह जहन्नुम में है। मगर मजबूर हूँ, 'रै' की परवा न करूँ, तो भी घर की तरफ़ से बेफ़िक्र तो नहीं हो सकता। अफ़सोस, मैं हविस के हाथों तबाह हुआ। काश मेरा दिल इतना मज़बूत होता कि 'रै' की निज़ामत पर लट्टू न हो जाता, तो आज मैं फ़र्ज़ंदे-रसूल के मुक़ाबले पर न खड़ा होता। हुर, क्या इस जंग के बाद किसी तरह मग़फ़िरत हो सकती ?

हुर—फ़र्ज़ंदे-रसूल के ख़ून का दाग़ कैसे धुलेगा ?

साद—हुर, मैं इतने रोज़े रक्खूंगा कि मेरा जिस्म धुल जाय, इतनी नमाजें अदा करूँगा कि आज तक किसी ने न की होंगी। 'रै' की सारी आमदनी ख़ैरात कर दूंगा। पियादा पा हज करूँगा, और रसूल पाक की कब्र पर बैठकर रोऊँगा, गुनहगारों की ख़ताएँ मुआफ़ करूँगा, और एक चींटी को भी ईज़ा न पहुँचाऊँगा। हाय! ज़ालिम शिमर सोचने का मौक़ा भी नहीं देना चाहता। फौजें तैयार हो रही हैं। क़ीस, हज्जाज, शीश, अशअस अपने-अपने आदमियों को सफों में खड़े करने लगे। वह लो, नक्कारे पर चोट भी पड़ गई।

हुर—मैं भी जाता हूँ, अपने आदमियों को सँभालूँ।

[आहिस्ता-आहिस्ता जाता है।]

साद—ऐ ख़ुदा! बहुत बेहतर होता कि तूने मुझे शिमर की तरह स्याह बातिन बनाया होता, या हानी और क़सीर का-सा दिल दिया होता कि अपने को ग़ैर पर क़ुरबान कर देता। कमजोर इंसान भी जानता है कि मुझे क्या करना चाहिए, और क्या नहीं कर सकता। वह ग़ुलाम से भी बदतर है,

जिसका अपनी मर्जी पर कोई अधिकार नहीं। मेरे क़बीलेवालों ने भी सफ़बंदी शुरू कर दी। मुझे अब जाकर अपनी जगह पर सबसे आगे चलना चाहिए, और वही करना चाहिए, जो शिमर कराए, क्योंकि अब मैं फ़ौज का सरदार नहीं हूँ, शिमर है।

[आहिस्ता-आहिस्ता जाकर फ़ौज के सामने खड़ा हो जाता है।]

शिमर—(**उच्च स्वर से**) ऐ खिलाफ़त को ज़िंदा रखने के लिए अपने तईं क़ुरबान करनेवाले बहादुरो, ख़ुदा का नाम लेकर क़दम आगे बढ़ाओ, दुश्मन तुम्हारे सामने हैं। वह हमारे रसूल पाक का नवासा है, और उस रिश्ते से हम सब ताज़ीम से उसके आगे सिर झुकाते हैं। लेकिन जो आदमी हिर्स का इतना बंदा है कि रसूल पाक के हुक्म का, जो उन्होंने खिलाफत को अब तक क़ायम रखने के लिए दिया था, पैरों तले कुचलता है, और जो क़ौम की बैंयत की परवा न करके अपने विरासत के हक़ के लिए ख़िलाफ़त को ख़ाक में मिला देना चाहे, वह रसूल का नवासा होते हुए भी मुसलमान नहीं है। हमारी निगाहों में रसूल के हुक्म की इज्जत उसके नवासे की इज्जत से कहीं ज्यादा है। हमारा फ़र्ज है कि हमने जिस ख़लीफ़ा की बैंयत क़बूल की है, उसे ऐसे हमलों से बचाएँ, जो हिर्स को पूरा करने के लिए दाद के नाम पर किए जाते हैं। चलो, फ़र्ज के मैंदान में क़दम बढ़ाओ।

[नक्कारे पर चोब पड़ती है, और पूरा लश्कर हुसैन के पड़ाव की तरफ़ बढ़ता है। साद आगे क़दम बढ़ाता हुआ हुसैन के खेमे के क़रीब पहुँच जाता है।]

अब्बास—(**हुसैन के खेमे से निकलकर**) साद! यह दग़ा! हम तुम्हारे जवाब का इंतज़ार कर रहे हैं, और तुम हमारे ऊपर हमला कर रहे हो? क्या यही आईने-जंग है?

साद—हज़रत, कलाम पाक की क़सम, मैं दग़ा के इरादे से नहीं आया। (**जियाद का ख़त अब्बास के हाथ में देकर**) यह देखिए, और मेरे साथ इंसाफ़ कीजिए। मैं इस वक्त नाम के लिए फ़ौज का सरदार हूँ, अख्तियार शिमर के हाथों में है।

अब्बास—(**ख़त पढ़कर**) आख़िर तुम दुनिया की तरफ़ झुके। याद रक्खो, ख़ुदा की दरगाह में शिमर नहीं, तुम खतावार समझे जाओगे।

साद—या हज़रत, यह जानता हूँ, पर ज़ियाद के गुस्से का मुक़ाबला नही कर सकता। वह बिल्ला है, मैं चूहा हूँ; वह बाज़ है, मैं कबूतर हूँ। वह एक इशारे से मेरे ख़ानदान का नाम मिटा सकता है। अपनी हिफ़ाजत की फ़िक्र ने मुझे मजबूर कर दिया है, मेरे दीन और ईमान को फ़ना कर दिया है।

अब्बास—खुलासा यह है कि तुम हमारा मुसाहिरा करना चाहते हो। ठहरो, मैं जाकर भाई साहब को इत्तिला दे दूं।

[अब्बास हुसैन के खेमे की तरफ़ जाते हैं।]

शिमर—**(साद के पास आकर)** क्या अब कोई दूसरी चाल चलने की सोच रहे हैं?

साद—नहीं, हज़रत हुसैन को हमारी आमद और मंशा की इत्तिला देने गए हैं।

शिमर—यह मौक़े को हमारे हाथों से छीनने का हीला है। शायद क़बीलों से इमदाद तलब करने का क़स्द कर रहे हैं। एक दिन की देर भी उन्हें मौके का बादशाह बना सकती है।

[अब्बास खेमे से वापस आते हैं।]

अब्बास—मैंने हजरत हुसैन को तुम्हारा पैग़ाम दिया। हज़रत को इसका बेहद सदमा है कि उनकी कोई शर्त मंजूर नहीं की गई। सुलह की इससे ज्यादा कोशिश उनके इमकान में न थी। गो हम सब जंग के लिए तैयार हैं, लेकिन उन्होंने एक दिन की मुहलत माँगी है कि दुआ और नमाज में गुज़ारें। सुबह को हमें खुदा का जो हुक्म होगा, उसकी तामील करेंगे।

साद—इसका जवाब मैं अपनी फ़ौज के दूसरे सरदारों से मशविरा करके दूंगा।

[अब्बास अपने खेमों की तरफ़ जाते हैं, और हुर, हज्जाज, अशअस,
क़ीस सब साद के पास आकर खड़े हो जाते हैं।]

साद—शिमर, तुम्हारी इस मामले में क्या सलाह है?

शिमर—यह उनकी हीलेबाजी है। आइंदा आप अमीर हैं, जो जी चाहे, करें।

साद—**(दूसरे सरदारों से मुखातिब होकर)** हजरत हुसैन ने एक दिन

की मुहलत की दरख्वास्त की है, आप लोगों की क्या सलाह है ?

शिमर—इसका आप लोग खयाल रखिएगा कि यह मुहलत आफ़त के मीज़ान को पलट सकती है।

हुर—मुहलत के मंजूर करने में पसोपेश का कोई मौक़ा नहीं।

हज्जाज—हुसैन अगर काफ़िर होते, और मुहलत की दरख्वास्त करते तो भी उसको क़बूल करना लाज़िम था।

क़ैस—बहुत मुमकिन है, वह कल तक आपस में सलाह करके यज़ीद की बैयत क़बूल कर लें, तो नाहक़ खूंरेजी क्यों हो।

शिमर—और अगर शाम तक बनी, असद और दूसरे क़बीले उनकी मदद के लिए आ जायँ, तो ?

शीश—हज़रत हुसैन ने अभी तक किसी क़बीले से इमदाद नहीं तलब की है, वरना हम इतने इतमीनान से यहाँ न खड़े होते।

साद—बनी और असद ही नहीं, अगर ईराक़ के सारे क़बीले आ जायँ, तब भी हम आज उन्हें जंग के लिये मजबूर नहीं कर सकते। यह इंसानियत के खिलाफ है। मेरा यही फैसला है। आइंदा आप लोगों को अख्तियार है।

[साद गुस्से में भरा हुआ वहाँ से चला जाता है।]

शिमर—क्या आप लोगों की यही मर्जी है कि आज जंग मुल्तवी की जाय ?

हुर—यहाँ जितने असहाब मौजूद हैं, सब अपनी राएँ दे चुके, अमीरे-लश्कर भी चला गया। ऐसी हालत में मुहलत के सिवा और हो ही क्या सकता है। अगर आप अपनी ज़िम्मेदारी पर जंग करना चाहते हैं तो शौक से कीजिए।

[हुर, हज्जाज वग़ैरह भी चले जाते हैं।]

शिमर—**(दिल में)** कौन कहता है कि हुसैन के साथ दग़ा की गई ? यहाँ सब-के-सब हुसैन के दोस्त हैं। इस फ़ौज में रहने से कहीं यह बेहतर था कि सब-के-सब हुसैन की फ़ौज में होते। तब भी उनकी इतनी मदद न कर सकते। मुझे ज़रा ताज्जुब न होगा, अगर कल सब लोग हथियार रख कर हुसैन के क़दमों पर गिर पड़ें। ज़ियाद को इस मुहलत की भी इत्तिला

जो दे ही दूं।

[साद का क़ासिद मुहलत का पैग़ाम लेकर हुसैन के लश्कर की तरफ़ आता है। शिमर अपने खेमे की तरफ़ जाता है।]

□

सातवाँ दृश्य

[समय आठ बजे रात। हुसैन एक कुर्सी पर मैदान में बैठे हुए हैं। उनके दोस्त और अज़ीज़ सब फ़र्श पर बैठे हुए हैं। शमा जल रही है।]

हुसैन—शुक्र है, खुदाए-पाक का, जिसने हमें ईमान की रोशनी अता की, ताकि हम नेक को क़बूल करें, और बद से बचें। मेरे सामने इस वक्त मेरे बेटे और भतीजे, भाई और भांजे, दोस्त और रफ़ीक़ सब जमा हैं। मैं सबके लिए खुदा से दुआ करता हूँ। मुझे इसका फख्र है कि उसने मुझे ऐसे सआदतमंद अज़ीज़ और ऐसे जाँ निसार दोस्त अता किए। अपनी दोस्ती का हक़ पूरी तरह अता कर दिया, आपने साबित कर दिया कि हक़ के सामने आप जान और माल की कोई हक़ीकत नहीं समझते। इस्लाम की तारीख में आपका नाम हमेशा रोशन रहेगा। मेरा दिल ख़याल से पाशपाश हुआ जाता है कि कल मेरे बायस वे लोग, जिन्हें ज़िदा हिम्मत चाहिए, जिनका हक़ है ज़िदा रहना, जिनको अभी जिंदगी में बहुत कुछ करना बाक़ी है, शहीद हो जायँगे। मुझे सच्ची खुशी होगी, अगर तुम लोग मेरे दिल का यह बोझ हल्का कर दोगे। मैं बड़ी खुशी से हर एक को इजाज़त देता हूँ कि उसका जहाँ जी चाहे, चला जाय। मेरा किसी पर कोई हक़ नहीं है। नहीं, मैं तुमसे इल्तमास करता हूँ, इसे क़बूल करो। तुमसे किसी की दुश्मनी नहीं हुई है, जहाँ जाओगे, लोग तुम्हारी इज्ज़त करेंगे। तुम ज़िंदा शहीद हो जाओगे, जो मरकर शहादत का दर्जा पाने से इज्ज़त की बात नहीं। दुश्मन को सिर्फ़ मेरे खून की प्यास है, मैं ही उसके रास्ते का पत्थर हूँ। अगर हक़ और इंसाफ़ को सिर्फ़ मेरे खून से आसूदगी हो जाय,

तो उसके लिए और खून क्यों बहाया जाय। साद से एक दिन की मुहलत माँगने में यही मेरा ख़याल था। यह देखो, मैं शमा ठंडी किए देता हूँ, जिसमें किसी को हिजाब न हो।

[सब लोग रोने लगते हैं, और कोई अपनी जगह से नही हिलता।]

अब्बास—या हज़रत, अगर आप हमें मारकर भगाएँ, तो भी हम नहीं जा सकते। खुदा वह दिन न दिखाए कि हम आपसे जुदा हों। आपकी सफ़क़त के साए में पल-भर अब हम सोच ही नहीं सकते कि आपके बग़ैर हम क्या करेंगे, कैसे रहेंगे।

अली अकबर—अब्बाजान, यह आप क्या फरमाते हैं? हम आपके क़दमों पर निसार होने के लिए आए हैं। आपको यहाँ तनहा छोड़कर जाना तो क्या, महज़ उसके ख़याल से रूह को नफ़रत होती है।

हबीब—खुदा की क़सम, आपको उस वक़्त तक नहीं छोड़ सकते, जब तक दुश्मनों के सीने में अपनी तेज़ बर्छियाँ न चुभा लें। अगर मेरे पास तलवार भी न होती, तो मैं आपकी हिमायत पत्थरों से करता।

अब्दुल्लाह कलबी—अगर मुझे इसका यक़ीन हो जाय कि मैं आपकी हिमायत के लिए ज़िंदा जलाया जाऊँगा, और फिर ज़िंदा होकर जलाया जाऊँगा, और यह अमल सत्तर बार होता रहेगा, तो भी मैं आपसे जुदा नहीं हो सकता। आपके क़दमों पर निसार होने से जो रुतबा हासिल होगा, वह ऐसी-ऐसी बेसुमार ज़िंदगियों से भी नहीं हासिल हो सकता।

ज़हीर—हज़रत, आपने ज़बाने-मुबारक से ये बातें निकालकर मेरी जितनी दिलशिकनी की है, उसका काफ़ी इज़हार नहीं कर सकता। अगर हमारे दिल दुनिया की हबिस में मग़लूब भी हो जायँ, तो हमारे क़दम किसी दूसरी तरफ़ जाने से गुरेज़ करेंगे। क्या आप हमें दुनिया में रूहस्याह और बेग़ैरत बनाकर ज़िंदा रखना चाहते हैं?

अली असग़र—आप तो मुझे शरीक किए बग़ैर कभी कोई चीज न खाते थे, क्या जन्नत के मजे अकेले उठाइएगा? शमा जलवा दीजिए, हमें इस तरीकी में आप नजर नहीं आते।

हुसैन—आह! काश रसूले-पाक आज ज़िंदा होते और देखते कि उनकी औलाद और उनकी उम्मत हक़ पर कितने शौक से फ़िदा होती है।

ख़ुदा से मेरी यही इल्तजा है कि इस्लाम में हक़ पर शहीद होनेवालों की कभी कमी न रहे। असग़र, बेटा आओ, तुम्हारे बाप की जान तुम पर फिदा हो, हम-तुम साथ-साथ जन्नत के मेवे खायँगे। दोस्तो, आओ, नमाज़ पढ़ लें। शायद यह हमारी आख़िरी नमाज़ हो।

[सब लोग नमाज़ पढ़ने लगते हैं।]

□

आठवां दृश्य

[प्रातःकाल हुसैन के लश्कर में जंग की तैयारियाँ हो रही हैं।]

अब्बास—खेमे एक दूसरे से मिला दिए गए, और उनके चारों तरफ़ ख़ंदक़ें खोद डाली गईं, उनमें लकड़ियाँ भर दी गईं। नक्कारा बजवा दूं?

हुसैन—नहीं, अभी नहीं। मैं जंग में पहले क़दम नहीं बढ़ाना चाहता। मैं एक बार फिर सुलह की तहरीक करूँगा। अभी तक मैंने शाम के लश्कर से कोई तक़रीर नहीं की, सरदारों ही से काम निकालने की कोशिश करता रहा। अब मैं जवानों से दूबदू बातें करना चाहता हूँ। कह दो, साँड़नी तैयार करे।

अब्बास—जैसा इर्शाद।

[बाहर जाते हैं।]

हुसैन—(दुआ करते हुए) ऐ ख़ुदा! तू ही डूबती हुई किश्तियों को पार लगानेवाला है। मुझे तेरी ही पनाह है, तेरा ही भरोसा है; जिस रंज से दिल कमज़ोर हो, उसमें तेरी ही मदद माँगता हूँ। जो आफ़त किसी तरह सिर से न टले, जिसमें दोस्तों से काम न निकले, जहाँ कोई हीला न हो, वहाँ तू ही मेरा मददगार है।

[खेमे से बाहर निकलते हैं। हबीब और ज़हीर आपस में नेजेबाज़ी का अभ्यास कर रहे हैं।]

हबीब—या हज़रत, ख़ुदा से मेरी यही दुआ है कि यह नेज़ा साद के जिगर में चुभ जाय, और 'रै' की सूबेदारी का अरमान उसके ख़ून के रास्ते

निकल जाय।

ज़हीर—उसे सूबेदारी ज़रूर मिलेगी। जहन्नुम की या 'रै' की, इसका फ़ैसला मेरी तलवार करेगी।

हबीब—वाह ! वह मेरा शिकार है, उधर निगाहें न उठाइएगा। आपके लिए मैंने शिमर को छोड़ दिया।

ज़हीर—बख़ुदा, वह मेरे मुक़ाबिले आए, तो मैं उसकी नाक काटकर छोड़ दूँ। ऐसे बदनीयत आदमी के लिए जहन्नुम से ज्यादा तकलीफ़ दुनिया ही में है।

अब्बास—और मेरे लिए कौन-सा शिकार तजवीज़ किया ?

ज़हीर—आपके लिए जियाद हाजिर है।

हुसैन—और मेरे लिए ? क्या मैं ताकता ही रहूँगा ?

ज़हीर—आपको कोई शिकार न मिलेगा।

हुसैन—मेरे साथ यह ज्यादती क्यों ?

ज़हीर—इसलिए कि आप भी शिकारियों की जैल में आ जायँगे, तो जन्नत की नियामतों में भी साझा बटाएँगे। आपके लिए रसूल-पाक की कुर्बत काफ़ी है। जन्नत की नियामतों में हम आपको शरीक नहीं करना चाहते।

हुसैन—मैं ज़रा साद के लश्कर से बातें करके आ जाऊँ, तो इसका फ़ैसला हो।

हबीब—उन गुमराहों की फ़रमाइश करना बेकार है। उनके दिल इतने सख्त हो गए हैं कि उन पर कोई तक़रीर असर नहीं कर सकती।

हुसैन—ताहम कोशिश करना मेरा फ़र्ज है।

[हुसैन अपनी साड़नी पर साद की फ़ौज के
सामने खड़े हैं।]

हुसैन—ऐ लोग, कूफ़ा और शाम के दिलेर जवानों और सरदारों ! मेरी बात सुनो, जल्दी न करो। मुसलमान अपने भाई की गर्दन पर तलवार चलाने में, जितनी देर करे, ऐन सवाब है। मैं उस वक्त तक खूँरेजी नहीं करना चाहता, जब तक तुम्हें इतना न समझा लूँ, जितना मुझ पर वाजिब है। मैं खुदा और इंसान दोनों ही के नजदीक़ इस जंग की ज़िम्मेदारी से

पाक रहना चाहता हूँ, जहाँ भाई की तलवार भाई की गर्दन पर होगी। तुम्हें मालूम है, मैं यहाँ क्यों आया ? क्या मैंने इराक़ या शाम पर फ़ौजकसी की ? मेरे अजीज़, दोस्त और अहलेबैत अगर फ़ौज कहे जा सकते हों, तो बेशक मैंने फ़ौजकसी की। सुनो और इंसाफ करो, अगर तुम्हें खुदा का ख़ौफ़ और ईमान का लिहाज है कि मैं यहाँ तुम्हारे ही सरदारों के बुलाने से आया। मैंने अहद कर लिया था कि मैं दुनिया के झगड़ों से अलग रहकर ख़ुदा की इबादत में अपनी जिन्दगी के बचे हुए दिन गुज़ारूँगा। मगर तुम्हारी ही फ़रियाद ने मुझे अपने गोशे से निकाला, रसूल की उम्मत की फ़रियाद सुनकर मैं कानों में उँगली न डाल सका। अगर इस हिमायत की सज़ा क़त्ल है, तो यह सिर हाज़िर है, शौक़ से क़त्ल करो। मैं हज्जाज से पूछता हूँ—क्या तुमने मुझे ख़त नहीं लिखे थे ?

हज्जाज—मैंने आपको कोई ख़त नहीं लिखा था।

हुसैन—क़ीस, तुम्हें भी ख़त लिखने से इंकार है ?

क़ीस—मैंने कब आपसे फ़रियाद की थी ?

हुसैन—और शिमर, तुमने तो दस्तख़त किया था ?

शिमर—सरासर ग़लत है, झूठ है।

हुसैन—ख़ुदा गवाह है कि मैं अपनी जिंदगी में कभी झूठ नहीं बोला, लेकिन आज यह दाग़ भी लगा।

क़ीस—आप यजीद की बैयद क्यों नहीं कर लेते कि इस्लाम हमेशा के लिए फ़ितना और फ़साद-पाक हो जाय ?

हुसैन—क्या इसके सिवा मसालहत की और कोई सूरत नहीं है ?

शिमर—नहीं, और कोई दूसरी सूरत नहीं है।

हुसैन—तो इस शर्त पर सुलह करना मेरे लिए ग़ैरमुमकिन है। ख़ुदा की क़सम, मैं जलील होकर तुम्हारे सामने सिर न झुकाऊँगा, और न ख़ौफ़ मुझे यज़ीद की बैयत क़बूल करने पर मजबूर कर सकता है। अब तुम्हें अख़्तियार है। हम भी जंग के लिए तैयार हैं।

शिमर—पहला तीर चलाने का सबाब मेरा है।

[हुसैन पर तीर चलाता है।]

किसी तरफ़ से आवाज़ आती है—"जहन्नुम में जाने का फ़ख्र भी

पहले तुझी को होगा।"

[हुसैन ऊँटनी को अपनी फ़ौज की तरफ़ फेर देते हैं। हुर अपनी फ़ौज से निकलकर आहिस्ता-आहिस्ता हुसैन के पीछे चलते हैं।]

शिमर—वल्लाह, हुर, तुम्हारा इस तरह आहिस्ता-आहिस्ता अपने तईं तौल-तौलकर चलना मेरे दिल में शुबहा पैदा कर रहा है। मैंने तुमको कभी लड़ाई में इस तरह काँपते हुए चलते नहीं देखा।

हुर—अपने को जन्नत और जहन्नुम के लिए तौल रहा हूँ, और हक़ यह है कि मैं जन्नत के मुक़ाबले में किसी चीज को नहीं समझता, चाहे कोई मार ही क्यों न डाले। (**घोड़े को एक ऐंड़ लगाकर हुसैन के पास पहुंच जाते हैं।**) ऐ फ़र्जंदे-रसूल ! मैं भी आपके हमराह हूँ। ख़ुदावंत मुझे आप पर फिदा करे, मैं वही हूँ, जिसने आपको रास्ते में वापस करने की कोशिश की थी। ख़ुदा की क़सम, मुझे उम्मीद न थी कि ये लोग आपके साथ यह बर्ताव करेंगे, और सुलह की कोई शर्त न क़बूल करेंगे, वरना मैं आपको इधर आने ही न देता, जब तक आप मेरे सर पर न आते। अब इधर से मायूस होकर आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ हूँ कि आपकी मदद करते हुए अपने तईं आपके क़दमों पर निसार कर दूँ। क्या आपके नज़दीक मेरी तौबा क़बूल होगी।

हुसैन—ख़ुदा से मेरी दुआ है, तुम्हारी तौबा क़बूल करे।

हुर—अब मुझे मालूम हो गया कि मैं यज़ीद से अपनी बैयत वापस लेने में कोई गुनाह नहीं कर रहा हूँ।

[दोनों चले जाते हैं। तीरों की वर्षा होने लगती है।]

□

नवाँ दृश्य

[क़ूफ़ा का वक्त। कूफ़ा का एक गाँव। नसीमा ख़ज़ूर के बाग में ज़मीन पर बैठी हुई गाती है।]

[गीत]

दबे हुओं को दबाती है ऐ ज़मीने-लहद,
यह जानती है कि दम जिस्म नातवाँ न नहीं।
क़फ़स में जी नहीं लगता है आह ! फिर भी मेरा,
यह जानती हूँ कि तिनका भी आशियाँ में नहीं।
उजाड़ दे कोई या फूँक दे उसे बिजली,
यह जानती हूँ कि रहना अब आशियाँ में नहीं।
ख़ुदा अपने दिल से मेरा हाल पूछ लो सारा,
मेरी ज़बाँ से मज़ा मेरी दास्तां में नहीं।
करेंगे आज से हम ज़ब्त, चाहे जो कुछ हो,
यह क्या कि लब पै फ़ुगाँ और असर फ़ुग़ाँ में नहीं।
ख़याल करके ख़ुदा अपनी किए को रोती हूँ,
तबाहियों के सिवा कुछ मेरे मकाँ में नहीं।

[वहब का प्रवेश।]

नसीमा—बड़ी देर की। अकेले बैठे-बैठे जी उकता गया। कुछ उन लोगों की ख़बर मिली ?

वहब—हाँ नसीमा, मिली। तभी तो देर हुई। तुम्हारा ख़याल सही निकला। हज़रत हुसैन के साथ हैं।

नसीमा—क्या हज़रत हुसैन की फ़ौज आ गई ?

वहब—कैसी फ़ौज ? कुल बूढ़े, जवान और बच्चे मिलाकर बहत्तर आदमी हैं। दस-पाँच आदमी कूफ़ा से आ गए हैं। कर्बला के बेपनाह मैदान में उनके ख़ेमे पड़े हुए हैं। ज़ालिम ज़ियाद ने बीस-पच्चीस हज़ार आदमियों से उन्हें घेर रक्खा है। न कहीं जाने देता है, न कोई बात मानता है, यहाँ तक कि दरिया से पानी भी नहीं लेने देता। पाँच हज़ार जवान दरिया की हिफ़ाजत के लिए तैनात कर दिए हैं। शायद कल तक जंग शुरू हो जाय।

नसीमा—मुट्ठी-भर आदमियों के लिए बीस-पच्चीस हज़ार सिपाही ! कितना ग़ज़ब है ! ऐसा ग़ुस्सा आता है, ज़ियाद को पाऊँ, तो सिर कुचल दूं।

वहब—बस, उसकी यही ज़िद है कि यजीद की बैयत क़बूल करो।

हज़रत हुसैन कहते हैं, यह मुझसे न होगा।

नसीमा—हज़रत हुसैन नबी के बेटे हैं, क़ौल पर जान देते हैं। मैं होती तो ज़ियाद को ऐसा जुल देती कि वह भी याद करता। कहती—हाँ, मुझे बैयत क़बूल है। वहाँ से आकर बड़ी फ़ौज जमा करती, और यज़ीद के दाँत खट्टे कर देती। रसूल पाक को शरआ में ऐसी आफ़तों के मौक़े के लिए कुछ रियायत रखनी चाहिए थी। तो हज़रत की फ़ौज में बड़ी घबराहट फैली होगी।

वहब—मुतलक़ नहीं, नसीमा। सब लोग शहादत के शौक़ में मतवाले हो रहे हैं। सबसे ज्यादा तकलीफ़ पानी की है। ज़रा-ज़रा-से बच्चे प्यासे तड़प रहे हैं।

नसीमा—आह ज़ालिम ! तुझसे ख़ुदा समझे।

वहब—नसीमा, मुझे रुख़सत करो। अब दिल नहीं मानता। मैं भी हज़रत हुसैन के क़दमों पर निसार होने जाता हूँ। आओ, गले मिल लें। शायद फिर मुलाक़ात न हो।

नसीमा—हाय वहब ! क्या मुझे छोड़ जाओगे ? मैं भी चलूंगी।

वहब—नहीं नसीमा, उस लू के झोंको में यह फूल मुरझा जायगा। (**नसीमा को गले लगाकर**) फिर दिल कमज़ोर हुआ जाता है। सारी राह कंबख्त को समझाता आया था। नसीमा, तुम मुझे दुत्कार दो। ख़ुदा तूने मुहब्बत को नाहक़ पैदा किया।

नसीमा—(**रोकर**) वहब, यह फूल किस काम आएगा। कौन इसको सूंघेगा, कौन इसे दिल से लगाएगा ? मैं भी हजरत जैनब के क़दमों पर निसार हूँगी।

वहब—वह प्यास की शिद्दत, वह गरमी की तकलीफ़, वह हंगामे, कैसे ले जाऊँ।

नसीमा—जिन तकलीफ़ों को सैदानियाँ झेल सकती हैं, क्या मैं न झेल सकूंगी ? हीले मत करो वहब, मैं तुम्हें तनहा न जाने दूँगी।

वहब—नसीमा, तुम्हें निगाहों से देखते हुए मेरे क़दम मैदान की तरफ़ न उठेंगे।

नसीमा—(**वहब के कंधे पर सिर रखकर**) प्यारे ! क्यों किसी ऐसी

जगह नहीं चलते, जहाँ एक गोशे में बैठकर इस ज़िंदगी का लुत्फ़ उठाएँ। तुम चले जाओगे, खुदा न ख्वास्ता दुश्मनों को कुछ हो गया, तो मेरी जिंदगी रोते ही गुज़रेगी। क्या हमारी ज़िंदगी रोने ही के लिए है? मेरा दिल अभी दुनिया की लज्ज़तों का भूखा है। जन्नत की खुशियों की उम्मीद पर इस जिंदगी को क़ुरबान नहीं करते बनता। हज़रत हुसैन की फ़तह तो होने से रही। पच्चीस हज़ार के सामने जैसे सौ, वैसे ही एक सौ एक।

वहब—आह नसीमा। तुमने दिल के सबसे नाजुक हिस्से पर निशाना मारा। मेरी भी यही दिली तमन्ना है कि हम किसी आफ़ियत के गोशे में बैठकर ज़िंदगी की बहार लूटें। पर ज़ालिम की यह बेदर्दी देखकर खून में जोश आ जाता है, और दिल बेअख्तियार यही चाहता है कि चलकर हज़रत हुसैन की हिमायत में शहीद हो जाऊँ। जो आदमी अपनी आँखो से ज़ुल्म होते देखकर ज़ालिम का हाथ नहीं रोकता, वह भी खुदा की निगाहों में ज़ालिम का शरीक है।

नसीमा—मैं अपनी आँखें तुम पर सदके करूँ, मुझे अजाब व सवाब के मुखमसों में मत डालो। सोचो, क्या यह सितम नहीं है कि हमारी ज़िंदगी की बहार इतनी जल्द रुखसत हो जाय? अभी मेरे उरूसी कपड़े भी नहीं मैले हुए, हिना का रंग भी नहीं फीका पड़ा, तुम्हें मुझ पर ज़रा भी तरस नहीं आता? क्या ये आँखें रोने के लिए बनाई गई हैं? क्या ये हाथ दिल को दबाने के लिए बनाए गए हैं। यही मेरी जिंदगी का अंजाम है?

[वहब के गले में हाथ डाल देती है।]

वहब—(**स्वगत**)खुदा सँभालियो, अब तेरा ही भरोसा है। यह आशिक की दिल बहलानेवाली इल्तजा नहीं, माशूक़ का ईमान ग़ारत करनेवाला तक़ाज़ा है।

[साहसराय की सेना सामने से चली आ रही है।]

नसीमा—अरे! यह फ़ौज कहाँ से आ रही है? सिपाहियों का ऐसा अनोखा लिवास तो कहीं नहीं देखा। इनके माथों पर ये लाल-लाल बेल-बूटे कैसे बने हैं! क़सम है इन आँखों की, ऐसे सजीले, ऐसे हसीन जवान आज तक मेरी नजर से नहीं गुज़रे।

वहब—मैं जाकर पूछता हूँ, कौन लोग हैं। (**आगे बढ़कर एक सिपाही**

से पूछता है) ऐ जवानो! तुम फ़रिश्ते हो या इंसान? अरब में तो हमने ऐसे आदमी नहीं देखे। तुम्हारे चेहरों से जलाल बरस रहा है। इधर कहाँ जा रहे हो?

सिपाही—तुमने सुल्तान साहसराय का नाम सुना है। हम उन्हीं के सेवक हैं, और हजरत हुसैन की सहायता करने जा रहे हैं, जो इस वक्त कर्बला के मैदान में घिरे हुए हैं। तुमने यज़ीद की बैयत ली है या नहीं?

वहब—मैं उस ज़ालिम की बैयत क्यों क़बूल करने लगा था।

सिपाही—तो आश्चर्य है कि हज़रत हुसैन की फ़ौज में क्यों नहीं हो। तुम सूरत से मनचले जवान मालूम होते हो, फिर यह कायरता कैसी?

वहब—(**शरमाते हुए**) हम वहीं जा रहे हैं।

सिपाही—तो फिर आओ, साथ चलें।

वहब—मेरे साथ मस्तूरात भी हैं। तुम लोग बढ़ो, हम भी आते हैं।

[फ़ौज चली जाती हैं।]

नसीमा—यह साहसराय कौन है?

वहब—यह तो नहीं कह सकता, पर इतना कह सकता हूँ कि ऐसा हक़परस्त, दिलेर, इंसाफ़ पर निसार होनेवाला आदमी दुनिया में न होगा। बेकसों की हिमायत में कभी उसे पीछे क़दम हटाते नहीं देखा। मालूम नहीं, किस मज़हब का आदमी है, पर जिस मजहब और जिस क़ौम में ऐसी पाक रूहें पैदा हों, वह दुनिया के लिए बरकत है।

नसीमा—इनके भी बाल-बच्चे होंगे।

वहब—बहुत बड़ा ख़ानदान है। सात तो भाई ही हैं।

नसीमा—और मुसलमान न होते हुए भी ये लोग हजरत हुसैन की इमदाद के लिए जा रहे हैं?

वहब—हां, और क्या!

नसीमा—तो हमारे लिए कितनी शर्म की बात है कि हम यों पहलूतिही करें।

वहब—प्यारी नसीमा, चले चलेंगे। दो-चार दिन तो जिंदगी की बहार लूट लें।

नसीमा—नहीं वहब, एक लहमे की भी देर मत करो। खुदा हमें जन्नत में फिर मिलाएगा, और तब हम अब्द तक ज़िंदगी की बहार लूटेंगे।

वहब—नसीमा आज और सब्र करो।

नसीमा—एक लहमा भी नहीं। वहब, मुझे अब इम्तहान में न डालो। साँड़नी लाओ, फ़ौरन चलो।

❑

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

[समय नौ बजे दिन। दोनों फ़ौजें लड़ाई के लिए तैयार हैं।]

हुर—या हज़रत, मुझे मैदान में जाने की इजाज़त मिले। अब शहादत का शौक़ रोके नहीं रुकता।

हुसैन—वाह, अभी आए हो और अभी चले जाओगे। यह मेहमाननेवाज़ी का दस्तूर नहीं कि हम तुम्हें आते-ही-आते रुख़सत कर दें।

हुर—या फ़र्जंदे-रसूल, मैं आपका मेहमान नहीं, ग़ुलाम हूँ। आपके क़दमों पर निसार होने के लिए आया हूँ।

हुसैन—(**हुर के गले मिलकर आँखों में आँसू भरे हुए**) अगर तुम्हारी इसी में ख़ुशी है, तो जाओ ख़ुदा को सौंपा—

दुनिया के शहीदों में तेरा नाम हो भाई,
उक़बा में तुझे राहतोआराम हो भाई।

[हुर मैदान की तरफ़ चलते हैं, हुसैन ख़ेमे के दरवाज़े तक उन्हें पहुँचाने आते हैं। ख़ेमे से निकलते हुए हुर हुसैन के क़दमों को बोसा देते हैं, और चले जाते हैं।]

हुर—(**मैदान में जाकर**)
ग़ुलाम हज़रते शब्बीर रन में आता है,
वही जो दी का है बंदा, वह मेरा आक़ा है।
वह आये ठोक के ख़म, जिसकी मौत आई है,
उसी का पीने को ख़ूँ मेरी तेग आई है।

[सफ़वान उधर से झूमता हुआ आता है।]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[दोपहर का समय। रेगिस्तान में हुसैन के काफ़िले का पड़ाव। बगूले उड़ रहे हैं। हुसैन असग़र को गोद में लिए अपने ख़ेमे के द्वार पर खड़े हैं।]

हुसैन — (मन में) उफ़्, यह गर्मी ! निगाहें जलती हैं। पत्थर की चट्टानों से चिनगारियाँ निकल रही हैं। झीलें, कुएँ, सब सूखे पड़े हुए हैं, गोया उन्हें गर्मी ने जला दिया हो। हवा से बदन झुलसा जाता है। बच्चों के चेहरे कैसे सँवला गए हैं। यह सफ़ेदी, यह रेगिस्तान, इसकी कहीं हद भी है या नहीं ! जिन लोगों ने प्यास के मारे हौक-हौककर पानी पी लिया है, उनके कलेजे में दर्द हो रहा है। अब तक कूफ़ा से कोई क़ासिद नहीं आया। खुदा जाने मुसलिम का क्या हाल हुआ। क़रीने से ऐसा मालूम होता है कि ईराक़वालों ने उनसे दग़ा की, और उनको शहीद कर दिया, वरना यह ख़ामोशी क्यों ? अगर वह जन्नत को सिधारे हैं, तो मेरे लिए भी दूसरा रास्ता नहीं है। शहादत मेरा इंतजार कर रही है। कोई मुझसे मिलने आ रहा है।

[फ़र्ज़ूक़ का प्रवेश।]

फ़र्ज़ूक—अस्सलामअलेक या हज़रत हुसैन, मैंने बहुत चाहा कि मक्के ही में आपकी ज़ियारत करूँ, लेकिन अफ़सोस, मेरी कोशिश बेकार हुई।

हुसैन—अगर ईराक़ से आए हो, तो वहाँ की क्या ख़बर है ?

फ़र्ज़ूक—या हज़रत ! वहाँ की खबरें वे ही हैं, जो आपको मालूम हैं। लोगों के दिल आपके साथ हैं, क्योंकि आप हक़ पर हैं। और, उनकी तलवारें यजीद के साथ हैं, क्योंकि उसके पास दौलत है।

हुसैन—और मेरे भाई मुसलिम की भी कुछ खबर लाए हो ?

फ़र्ज़ूक़—उनकी रूह जन्नत में हैं, और सिर किले की दीवार पर।

मातम है कई दिन से मुसलमानों के घर में,
खंदक में है लाश उनकी व सिर किले की दर में।

हुसैन—**(सीने पर हाथ धरकर)** आह ! मुसलिम, वही हुआ, जिसका मुझे खौफ़ था। अब तक तुम्हें कफ़न भी नसीब नहीं हुआ। क्या तुम्हारी नेकनियती का यही सिला था ? आह ! तुम इतने दिनों तक मेरे साथ रहे, पर मैंने तुम्हारी कद्र न जानी। मैंने तुम्हारे ऊपर जुल्म किया, मैंने जान-बूझकर तुम्हारी जान ली। मेरे अजीज और दोस्त, सब-के-सब मुझे कूफ़ावालों से होशियार कर रहे थे, पर मैंने किसी की न सुनी, और तुम्हें हाथ से खोया। मैं उनके बेटों को और उनकी बीवी को कौन मुँह दिखाऊँगा।

[मुसलिम की लड़की फ़ातिमा आती है।]

हुसैन—आओ बेटी, बैठो, मेरी गोद में चले आओ। कुछ खाया कि नही ?

फ़ातिमा—बुआ ने शहद और रोटी दी थी। चचाजान, हम लोग कै दिन में अब्बा के पास पहुँचेंगे ? पाँच-छः दिन तो हो गए।

हुसैन—**(दिल में)** आह ! कलेजा मुँह को आता है। इस सवाल का क्या जवाब दूँ। कैसे कह दूँ कि अब तेरे अब्बा जन्नत में मिलेंगे। **(प्रकट)** बेटी, खुदा की जब मरजी होगी।

अली असगर—आह ! तुम अब्बाजान की गोद में बैठ गई। उतरिए चटपट।

फ़ातिमा—तुम मेरे अब्बाजान की गोद में बैठोगे, तो मैं अभी उतार दूंगी।

हुसैन—बेटी, मैं ही तुम्हारा अब्बाजान हूँ। तुम बैठी रहो। इसे बकने दो।

फ़ातिमा—आप मेरी तरफ़ देखकर आँखों में आँसू क्यों भरे हुए हैं। आप मेरा इतना प्यार क्यों कर रहे हैं ? आप यह क्यों कहते हैं कि मैं ही अब्बाजान हूं ? ऐसी बातें तो यतीमों से की जाती हैं।

हुसैन—**(रोकर)** बेटी, तेरे अब्बा को खुदा ने बुला लिया।

अब्दुल्लाह—तू उन सरदारने-फ़ौज से क्या लड़ेगा, जिनकी ज़िंदगी ज़ियाद की ग़ुलामी में गुज़री। तुझे उन रईसों को ललकारते हुए शर्म भी नहीं आती। तुझ जैसों के लिए मैं ही काफ़ी हूं।

[यसार तलवार लेकर झपटता है। अब्दुल्लाह एक ही वार में उसका काम तमाम कर देते हैं। तब सालिम उन पर टूट पड़ता है। अब्दुल्लाह की पाँचों उंगलियाँ कट जाती हैं, तलवार ज़मीन पर गिर पड़ती है। वह बाएं हाथ में नेजा ले लेते हैं, और सालिम के सीने में नेजा चुभा देते हैं। वह भी गिर पड़ता है। ज़ियाद की फ़ौज से निकल कर लोग अब्दुल्लाह को घेर लेते हैं। इधर से क़मर लकड़ी लेकर दौडती है।]

क़मर—मेरी जान तुम पर फ़िदा हो, रसूल के नवासे के लिए लड़ते-लड़ते जान दे दो। मैं भी तुम्हारी मदद को आई।

अब्दुल्लाह—नहीं-नही, क़मर मेरे लिए तुम्हारी दुआ काफ़ी है; इधर मत आओ।

क़मर—मैं इन शैतानों को लकड़ी से मारकर गिरा दूंगी। एक के लिए दो भेजे, जब दोनों जहन्नुम पहुंच गए, तो सारी फ़ौज निकल पड़ी। यह कौन-सी जंग है?

अब्दुल्लाह—मैं एक ही हाथ से इन सबको मार गिराऊंगा। तुम खेमे में जाकर बैठो।

क़मर—मैं जब तक ज़िंदा हूँ, तुम्हारा साथ न छोड़ूंगी, तुम्हारे साथ ही रसूल पाक की ख़िदमत में हाज़िर हूँगी।

हुसैन—(**क़मर से**) ऐ नेक ख़ातून, तुझ पर अल्लाहताला रहम करे। तुम वहाँ जाओगी, तो यहाँ मस्तूरात की ख़बर कौन लेगा? औरतों को जिहाद करना मना है। लौट जाओ, और देखो तुम्हारा जाँबाज शौहर एक हाथ से कितने आदमियों का मुक़ाबला कर रहा है। आफ़री है तुम पर मेरे शेर! तुमने अपने रसूल की जो ख़िदमत की है, उसे हम कभी न भूलेंगे। खुदा तुम्हें उसकी सजा देगा। आह! ज़ालिमों ने तीर मारकर ग़रीब को गिरा दिया! खुदा उसे जन्नत दे।

क़मर—या हज़रत इसका ग़म नहीं। वह आप पर निसार हो गए,

इससे बेहतर और कौन-सी मौत हो सकती थी। काश, मैं भी उनके साथ चली जाती। मेरे जाँबाज़ ! सच्चे दिलावर, जा, और जन्नत में आराम कर। तू वह था, जिसने कभी सायल को नहीं फेरा, जिसकी नीयत कभी ख़राब और निगाह कभी बुरी नहीं हुई। जा, और जन्नत में आराम कर।

हुसैन—क़मर सब्र करो कि इसके सिवा कोई चारा नहीं है।

क़मर—मुझे उनके मरने का ग़म नहीं है। मैं तो खुश हूँ कि उन्होंने हक़ पर जान दी। इस वक्त अगर मेरे सौ बेटे होते, तो मैं इसी तरह उन्हें भी आपके क़दमों पर निसार कर देती। काश, वहब इतना जनपरस्त न होता...

[वहब का प्रवेश।]

वहब—अस्सलामअलेक या हज़रत हुसैन।

क़मर—(**वहब को गले लगाकर**) ज़रा देर पहले ही क्यों न आ गए बेटा कि अपने बाप का आख़िरी दीदार कर लेते। नसीमा कहाँ है?

वहब—यहीं खेमों के पीछे खड़ी है।

क़मर—मैं अभी तुम्हारा ही ज़िक्र कर रही थी। क्यों बेटा, अपने बाप का नाम रोशन न करोगे? मेरा तुम्हारे ऊपर बड़ा हक है। तुम मेरे जिगर का खून पीकर पले हो। मेरा दूध हलाल न करोगे। मेरी तमन्ना है कि हुसैन पर अपनी जान निसार करो, ताकि दुनिया में क़मर का नाम क़मर की तरह चमके, जिसका शौहर और बेटा, दोनों ही हक़ पर शहीद हुए।

वहब—अम्माजान, मेरी भी दिली तमन्ना यह थी और है। मैं अपने बाप के नाम को दाग़ नहीं लगाना चाहता, मगर नसीमा को क्या करूँ? उसकी मुसीबतों का खयाल हिम्मत को पस्त कर देता है। जाता हूँ, अगर उसने इजाज़त दे दी तो मेरे लिये उससे बढ़कर खुशी नहीं हो सकती।

क़मर—बेटा, तुम उसकी आदत से वाक़िफ़ होकर फिर उसी से पूछने जाते हो। इसके मानी इसके सिवा और कुछ नहीं है कि तुम खुद मैदान में जाते हुए डरते हो।

[वहब नसीमा के पास जाता है।]

नसीमा—काश जरा देर क़ब्ल आ जाते, तो अब्बाजान की आखिरी दुआएँ मिल जातीं।

वहब—हमारी बदनसीबी !

नसीमा—मैं जानती हूँ, तुम हमेशा के लिये खैरबाद कहने आए हो। जाओ प्यारे, और एक सपूत बेटे की तरह अपने वालिद का नाम रोशन करो। काश औरतों पर जिहाद हराम न होता, तो मैं भी तुम्हारे ही साथ अपने को हक़ की हिमायत में निसार कर देती। जब से मैंने फ़र्जंदे-रसूल की पाक-सूरत देखी है, मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि मेरा दिल रोशन हो गया है, और उस रोशनी में जिंदगी की तमन्नाएँ और ख्वाहिशें नजर से मिटती जाती हैं। जाओ प्यारे, जाओ, और हक पर क़ुरबान हो जाओ। नसीमा जब तक जियेगी, तुम्हारी मज़ार पर फातिहा और दरूद पढ़ेगी। जाओ, जन्नत में मुझे भूल न जाना। मैंने हवस के दाम में फँसकर तुम्हें फ़र्ज के रास्ते से हटा दिया था। रसूल पाक से कहना, मेरा गुनाह मुआफ़ करें। जाओ, इन आँसुओं का खयाल न करो, वरना ये आँसू तुम्हारे जोश को बुझा देंगे। मैं अभी बहुत दिन तक रोऊँगी, तुम इसका ग़म न करना। जाओ, तुम्हें खुदा को सौंपा...आह ! दिल फटा जाता है। कैसे सब्र करूँ ?

[वहब आँसू पोंछता हुआ बाहर जाता है।]

क़मर—(**अंदर आकर**)बेटी, तुझे गले से लगा लूँ, और तुझ पर अपनी जान फ़िदा, तूने खानदान की आबरू रख ली।

नसीमा—अम्माजान, रसूल पाक ने अगर कोई बेइंसाफी की, तो वह यही है कि औरतों पर जिहाद हराम कर दिया, वरना इस वक्त मैं वहब के पहलू में होती। देखिए, दुश्मन उन पर चारों तरफ़ से कितनी बेदर्दी से नेजे और तीर फेंक रहे हैं। किसी की हिम्मत नहीं है कि उनके सामने खम ठोककर आए। आह ! देखिए, उनके हाथ कितनी तेजी से चल रहे हैं। जिस पर उनका एक हाथ पड़ जाता है, वह फिर नहीं उठता। दुश्मन भागे जाते हैं। हा बुजदिलो, नामर्दो ! वह इधर चले आ रहे हैं, बदन खून से तर है, सिर पर भी ज़ख्म लगे हैं।

[वहब आकर खेमे के सामने खड़ा हो जाता है।]

वहब—अम्माजान, मुझसे राजी हुईं ?

क़मर—बेटा, तुझ पर हज़ार जान से निसार हूँ। तुमने बाप का नाम

रोशन कर दिया, लेकिन मैं चाहती हूँ कि जब तक तेरे हाथों में ताक़त है तब तक दुश्मनों को आराम न लेने दे।

वहब—(**स्वगत**) आह ! हक़ पर जान देना भी उतना आसान नहीं है, जितना लोग खयाल करते हैं। (**प्रकट**) अम्मा, यही मेरा भी इरादा है, लेकिन नसीमा के आँसुओं की याद मुझे खींच लाई। (**कमर चली जाती है।**) नसीमा, तुम्हें आखिरी बार देखने की तमन्ना मैदान से खींच लाई। सनम का पुजारी सनम ही पर क़ुर्बान हो सकता है, दीन और ईमान, हक़ और इंसाफ़, ये सब उसकी नज़रों में खिलौने की तरह लगते हैं। मुहब्बत दुनिया की सबसे मज़बूत बेड़ी है, सबसे सख्त जंजीर। (**चौंककर**) कोई पहलवान मैदान में आकर ललकार रहा है। हाय ! लानत हो उन पर, जो हक़ को पामाल करके हज़ारों को नामुराद मरने पर मजबूर करते हैं। नसीमा, हमेशा के लिये रुखसत ? मेरी तरफ़ एक बार मुहब्बत की निगाहों से देख लो, उनमें मुहब्बत का ऐसा जाम हो कि उसका नशा मेरे सिर से क़यामत तक न उतरे।

नसीमा—मेरी जान आह ! दिल निकला जाता है...

[वहब मैदान की तरफ़ चला जाता है।]

नसीमा—खुदा !काश मुझे मौत आ जाती कि यह दिलखराश नज्जारा आँखों से न देख पड़ता। मेरा जवान दिलेर जाँबाज शौहर मौत के मुँह में जा रहा है, और मैं बैठी देख रही हूँ। ज़मीन, तू क्यों नही फट जाती कि मैं उसमें समा जाऊँ, बिजली आसमान से गिरकर क्यों मेरा खातमा नहीं कर देती ! वह देव उन पर तलवार लिये झपटा। या खुदा, मुझ नामुराद पर रहम कर। दूर हो जालिम, सीधा जहन्नुम को चला जा। अब कोई आगे नही आता है। वह मलऊन शिमर अपनी जमैयत लिए उनकी तरफ़ दौड़ा आता है। हाय ! जालिमों ने घेर लिया। खुदा, तू यह बेइंसाफ़ी देख रहा है, और इन मूज़ियों पर अपना क़हर नहीं नाजिल करता। एक के लिये एक फ़ौज भेज देना कौन-सा आईने-जंग है। हाय ! हाय खुदा, ग़जब हो गया। अब नहीं देखा जाता।

[छाती पीटकर रोने लगती है। शिमर वहब का सिर काटकर फेंक देता है, क़मर दौड़कर सिर को गोद में उठा लेती है,

और आँखों से लगाती है।]

क़मर—मेरे सपूत बेटे, मुबारक है यह घड़ी कि मैं तुझे अपनी आँखों से हक़ पर शहीद होते देख रही हूँ। आज तू मेरे क़र्ज़ से अदा हो गया, आज मेरी मुराद पूरी हुई, आज मेरी ज़िंदगी सफल हो गई, मैं अपनी सारी तकलीफ़ का सिला पा गई। ख़ुदा तुझे शहीदों के पहलू में जगह दे। नसीमा, मेरी जान, आज तूने सच्चा सोहाग पाया है, जो क़यामत तक तुझे सुहागिन बनाए रक्खेगा। अब हूरें तेरे तलुओं-तले आँखें बिछाएँगी, और फ़रिश्ते तेरे क़दमों की खाक का सुरमा बनाएँगे।

[वहब का सिर नसीमा की गोद में रख देती है, नसीमा सिर को गोद में रक्खे हुए बैन करके रोती है।]

काजल बना-बनाके तेरी ख़ाके-दर को मैं
रोशन करूँगी अपनी सवादे-नज़र को मैं।
आँसू भी खश्क हो गए, अल्लाह रे सोज़े-ग़म,
क्योंकर बुझाऊँ आतिशे-दाग़े-जिगर को मैं।
तेरे सिवा है कौन, जो बेकस की ले ख़बर,
आती न तेरे दर पर, तो जाती किधर को मैं।
तलवार कह रही है ज़वानाने-क़ौम से—
मुद्दत से ढूढ़ती हूँ तुम्हारी क़मर को मैं।
बाज़ आई मैं दुआ ही से, यारब कि कब तलक
करती फिरूँ तलाश जहाँ में असर को मैं।
गर तेरी ख़ाके-दर से न मिलता यह इफ्तखार
करती न यों बुलंद कभी अपने सिर को मैं।

हाय प्यारे! तुम कितने बेवफ़ा हो, मुझे अकेले छोड़कर चले जाते हो! लो, मैं भी आती हूँ। इतनी जल्दी नहीं, ज़रा ठहरो।

[साहसराय का प्रवेश।]

साहसराय—सती, तुम्हें नमस्कार करता हूँ।

नसीमा—साहव, आप खूब आए। आपका शुक्रिया, तहेदिल से शुक्रिया। आपने ही मुझे आज इस दरजे पर पहुँचाया। आपके वतन में

औरतें अपने शौहरों के बाद ज़िंदा नहीं रहतीं। वे बड़ी खुशनसीब होती हैं।

साहसराय—सती, हमलोगों को आशीर्वाद दो।

नसीमा—(**हँसकर**) यह दरजा! अल्लाह रे मैं, यह वहब की बदौलत, उसकी शहादत के तुफ़ैल। खुदा, तुझसे मेरी दुआ है, मेरी क़ौम में कभी शहीदों की कमी न रहे, कभी वह दिन न आए कि हक़ को जाँबाज़ों की ज़रूरत हो, और उस पर सिर कटानेवाले न मिलें। इस्लाम, मेरा प्यारा इस्लाम शहीदों से सदा मालामाल रहे!

[अपने दामन से एक सलाई निकालकर वहब के खून में डुबाती है।]

क्यों साहसराय, तुम्हारे यहाँ सती के जिस्म से आग निकलती है, और वह उसमें जल जाती है। क्या बिला आग के जान नहीं निकलती?

साहसराय—नसीमा, तू देवी है। ऐसी देवियों के दर्शन दुर्लभ होते हैं। आकाश से देवता तुझ पर पुष्प-वर्षा कर रहे हैं।

[नसीमा आँखों में सलाई फेर लेती है, और एक आह के साथ उसकी जान निकल जाती है।]

❑

तृतीय दृश्य

[दोपहर का समय। हजरत हुसैन अब्बास के साथ खेमे के दरवाज़े पर खड़े मैदाने-जंग की तरफ़ ताक रहे हैं।]

हुसैन—कैसे-कैसे जाँबाज़ दोस्त रुखसत हो गए और होते जा रहे हैं। प्यास से कलेजे मुँह को आ रहे हैं, और ये ज़ालिम नमाज़ तक की मुहलत नहीं देते। आह! ज़हीर का-सा दीनदार उठ गया, मुसलिम बिन ऊसजा इस आलमेजईफ़ी में भी कितने जोश से लड़े। किस-किसका नाम गिनाऊँ?

अब्बास—या हजरत, मुझे अंदेशा हो रहा है कि शिमर कोई नया सितम ढाने की तैयारियां कर रहा है। यह देखिए, वह सिपाहियों की एक बड़ी जमैयत लिए इधर चला आता है।

हबीब—(जोर से) शिमर ! ख़बरदार ! अगर इधर एक क़दम भी बढ़ाया तो तेरी लाश पर कुत्ते रोएंगे। तुझे शर्म नहीं आती जालिम कि अहलेबैत के खेमे पर हमला करना चाहता है।

शिमर—हम इस हमले से जंग का फ़ैसला कर देना चाहते हैं। जवानो, तीर बरसाओ।

हुसैन—अफ़सोस, घोड़े मरे जा रहे हैं। घुटने टेककर बैठ जाओ, और तीरों का जबाब दो। ख़ुदा ही हमारा वाली और हाफ़िज़ है।

शिमर—बढ़ो-बढ़ो, एक आन में फ़ैसला हुआ जाता है।

सिपाही—देखते नहीं हो, हमारी सफ़ें ख़ाली होती जाती हैं ! यह तीर है या ख़ुदा का ग़ज़ब। हम आदमियों से लड़ने आए हैं, देवों से नहीं।

शिमर—लकड़ियाँ जलाओ। फ़ौरन् इन खेमों पर आग के अँगारे फेंको, जलते हुए कुंदे फेंको, जलाकर ख़ाक स्याह कर दो।

[आग की बारिश होने लगती है। औरतें खेमे से चिल्लाती हुई बाहर निकल आती हैं।]

जैनब—तुफ़् है तुझ पर ज़ालिम, मर्दों से नहीं, औरतों पर अपनी दिलेरी दिखाता है।

हुसैन—साद ! यह क्या सितम है ?तुम लोगों का दुश्मन मैं हूँ। मुझसे लड़ो। खेमों में औरतों और बच्चों के सिवा कोई मर्द नहीं है। वे गरीब निकलकर भाग न सकीं, तो हम उधर चले जायेंगे, तुमसे लड़ न सकेंगे। अफ़सोस हैं कि इतनी जमैयत के होते हुए भी तुम वह विदअतें कर रहे हो।

शिमर—फेंको अंगारे। मुझे दोज़ख में जलना नसीब हो, अगर मैं इन सब खेमों को जला न डालूं।

शीस—शिमर, यह तुम्हारी हरक़त आईने जंग के ख़िलाफ़ है। हिसाब के दिन तुम्हीं इसके ज़िम्मेदार होगे।

क़ीस—रोको अपने आदमियों को।

शिमर—मैं अपने फ़ैल का मुख्तार हूँ। आग बरसाओ, लगा दो आग।

क़ीस—साद, ख़ुदा को क्या मुंह दिखाओगे ?

हबीब—दोस्त, टूट पड़ो शिमर पर, बाज़ की तरह टूट पड़ो। नामूसे-हुसैन पर निसार हो जाओ। एकबारगी नेज़ों का वार करो।

[हबीब और उसके साथ दस आदमी नेज़े लेकर शिमर पर टूट पड़ते हैं। शिमर भागता है, और उसकी फ़ौज भी भाग जाती है।]

हुसैन—हबीब, तुमने आज अहलेबैत की आबरू रख ली। ख़ुदा तुम्हें इसकी जज़ा दे।

हबीब—या मौला, दुश्मन दो-चार लहमों के लिए हट गया है, नमाज़ का वक्त आ गया है, हमारी तमन्ना है कि आपके साथ आख़िरी नमाज़ पढ़ लें। शायद फिर यह मौक़ा न मिले।

हुसैन—ख़ुदा तुम पर रहम करे। अजान दो। ऐ साद, क्या तू इस्लाम की शरियत को भी भूल गया ? क्या इतनी मुहलत न देगा कि नमाज पढ़कर जंग की जाय ?

शिमर—ख़ुदा पाक की क़सम, हर्गिज नहीं। तुम बेनमाज क़त्ल किए जाओगे। शरियत बाग़ियों के लिए नहीं है।

हबीब—या मौला, आप नमाज़ अदा फ़रमायें। इस मूजी को बकने दें। इसकी इतनी मजाल नहीं है कि नमाज़ में मुख़िल हो।

[लोग नमाज़ पढ़ने लगते हैं। साहसराय और उनके सातों भाई हुसैन की पुश्त पर खड़े शिमर के तीरों से उनको बचाते रहते हैं। नमाज ख़त्म हो जाती है।]

हुसैन—दोस्तो ! मेरे प्यारे ग़मगुसारो ! यह नमाज इस्लाम की तारीख़ में यादगार रहेगी। अगर ख़ुदा के इन दिलेर बंदों ने, हमारे पुश्त पर खड़े होकर, हमें दुश्मन के तीरों से न बचाया होता, तो हमारी नमाज़ हर्गिज न पूरी होती। ऐ हक़परस्तो ! हम तुम्हें सलाम करते हैं। अगर्चे तुम मोमिन नहीं हो, लेकिन जिस मजहब के पैरो ऐसे हक़परवर, ऐसे इंसाफ पर जान देनेवाले, ज़िंदगी को इस तरह नाचीज समझनेवाले मजलूमों की हिमायत में सिर कटानेवाले हो, वह सच्चा और मिनजानिब ख़ुदा है। वह मजहब दुनिया में हमेशा कायम रहे, और नूरे-इस्लाम के साथ उसकी रोशनी भी

चारों तरफ़ फ़ैले।

साहसराय—भगवन् ! आपने हमारे प्रति जो शुभेच्छाएँ प्रकट की हैं, उनके लिए हम आपके कृतज्ञ हैं। मेरी भी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि जब कभी इस्लाम को हमारे रक्त की आवश्यकता हो, तो हमारी जाति में अपना वक्ष खोल देनेवालों की कमी न रहे। अब मुझें आज्ञा हो कि चलकर अपने प्रायश्चित की क्रिया पूरी करूं।

हुसैन—नहीं ! मेरे दोस्तो, जब तक हम बाक़ी हैं, अपने मेहमानों को मैदान में न जाने देंगे।

साहसराय—हज़रत, हम आपके मेहमान नहीं, सेवक हैं। सत्य और न्याय पर मरना ही हमारे जीवन का मुख्य उद्देश्य है। यह हमारा कर्तव्यमात्र है, किसी पर एहसान नहीं।

हुसैन—आह ! किस मुँह से कहूं कि जाइए। खुदा करे इस मैदान में हमारे और आपके खून से जिस इमारत की बुनियाद पड़ी है, वह जमाने की नज़र से हमेशा महफ़ूज रहे, वह कभी वीरान न हो, उसमें से हमेशा नग़मे की सदाएं बुलंद हों, और आफ़ताब कीकिरणें हमेशा उस पर चमकती रहें।

[सातों भाई गाते हुए मैदान में जाते हैं।]

जय भारत, जय भारत, जय मम प्राणपते !
भाल विशाल चमत्कृत सित हिमगिरि राजे,
परसत बाल प्रभाकर हेम-प्रभा ब्राजै।
जय भारत......
ऋषि-मुनि पुण्य तपोनिधि तेज-पुंजधारी,
सब विधि अधम अविद्या भव-भय-तमहारी।
जय भारत......
जय जय देव चतुर्मुख अखिल भेद ज्ञाता,
सुविमल शांति सुधा-निधि मुद-मंगलदाता।
जय भारत......
जय जय विश्व-विदांवर जय विश्रुत नामी,
जय जय धर्म-धुरंधर जय श्रुति पथगामी।
जय भारत......

अजित अजेय आलौकिक अतुलित बलधामा,
पूरन प्रेम-पयोनिधि शुभ गुन—गन-ग्रामा।
जय भारत......

हे प्रिय पूज्य परम मन नमो-नमो देवा,
विनवत अधम-पापि जन ग्रहन करहु सेवा।
जय भारत......

अब्बास—ग़ज़ब के जाँबाजें हैं। अब मुझ पर यह हक़ीक़त खुली कि इस्लाम के दायरे के बाहर भी इस्लाम है। ये सचमुच मुसलमान हैं और रसूल पाक ऐसे आदमियों की शफ़ाअत न करें, मुमकिन नहीं।

हुसैन—कितनी दिलेरी से लड़ रहे हैं !

अब्बास—फ़ौज में बेख़ौफ़ घुसे जाते हैं। ऐसी बेजिगरी से किसी को मौत के मुँह में जाते नहीं देखा।

अली अकबर—ऐसे पांच सौ आदमी भी हमारे साथ होते, तो मैदान हमारा था।

हुसैन—आह ! वह साहसराय घोड़े से गिरे। मक्कार शिमर ने पीछे से वार किया। इस्लाम को बदनाम करनेवाला, मूज़ी !

अब्बास—वह दूसरा भाई भी गिरा।

हुसैन—इनके रिवाज़ के मुताबिक़ लाशों को जलाना होगा। चिता तैयार कराओ।

अली अकबर=तीसरा भाई भी मारा गया।

अब्बास—ज़ालिमों ने चारों तरफ़ से घेर लिया, मगर किस ग़जब के तीरंदाज़ हैं। तीर से शोला-सा निकलता है।

अली अकबर—अल्लाह, उनके तीरों से आग निकल रही है। कोहराम मच गया, सारी जमैयत परेशान होकर भागी जा रही है।

अब्बास—चारो सूरमा दुश्मन के ख़ेमों की तरफ़ जा रहे हैं। फ़ौज काई की तरह फटती जाती है। वह ख़ेमों से शोला निकलने लगे।

अली अकबर—या ख़ुदा, चारों देखते-देखते ग़ायब हो गए।

हुसैन—शायद उनके सामने कोई ख़ंदक खोदी गई है।

अब्बास—जी हाँ, यही मेरा भी ख़याल है।

हुसैन—चिताएँ तैयार कराओ। अगर फ़रेब न किया जाता, तो ये सारी फ़ौज को ख़ाक कर देते। तीर हैं या मौजज़ा।

अब्बास—ख़ुदा के ऐसे बंदे भी हैं, जो बिला ग़रज़ हक़ पर सिर कटाते हैं।

हुसैन—ये उस पाक मुल्क के रहनेवाले हैं, जहाँ सबसे पहले तौहीद की सदा उठी थी। ख़ुदा से मेरी दुआ है कि इन्हें शहीदों में ऊँचा रुतबा दे। वह चिता में शोले उठे! ऐ ख़ुदा, यह सोज़ इस्लाम के दिल से कभी न मिटे, इस क़ौम के लिए हमारे दिलेर हमेशा अपना खून बहाते रहें। यह बीज, जो आज आग में बोया गया है, क़यामत तक फलता रहे।

□

चौथा दृश्य

[जैनब अपने खेमे में बैठी हुई है। शाम का वक्त।]

जैनब—(**स्वगत**) अब्बास और अली अकबर के सिवा अब भैया के कोई रफ़ीक़ बाकी नहीं रहे। सब लोग उन पर निसार हो गए। हाय, क़ासिम-सा जवान, मुसलिम के बेटे, अब्बास के भाई, भैया इमाम हसन के चारों बेटे, सब दाग़ दिए गए। देखते-देखते हरा-भरा बाग वीरान हो गया, गुलजार बस्ती उजड़ गई। सभी माताओं के कलेजे ठंडे हुए। बापों के दिल बाग़-बाग़ हुए। एक मैं ही बदनसीब नामुराद रह गई। ख़ुदा ने मुझे भी दो बेटे दिए हैं, पर जब वे काम ही न आएँ, तो उनको देखकर जिगर क्या ठंडा हो। इससे तो यही बेहतर होता कि मैं बाँझ ही रहती। तब यह बेवफ़ाई का दाग़ तो माथे पर न लगता। हुसैन ने इन लड़कों को अपने लड़के की तरह समझा, लड़कों की तरह पाला; पर वे इस मुसीबत में, तरीकी में, साए की तरह साथ छोड़ देते हैं, दग़ा कर रहे हैं। हाँ, यह दग़ा नहीं तो और क्या है? आख़िर भैया अपने दिल में क्या समझ रहे होंगे। कहीं यह ख़याल न करते हों कि मैंने ही उन्हें मैदान में जाने से मना कर दिया है। यह ख़याल न पैदा हो कि मैं उनके साथ अपनी ग़रज़ निकालने के लिए ज़मानासाज़ी कर रही थी। आह! उन्हें क्योंकर अपना दिल खोलकर दिखा दूँ कि वह

उनके लिए कितना बेक़रार है, पर अपने लड़कों पर क़ाबू नहीं। जाओ, जैसे तुमने मेरे मुँह में कालिख लगाई है, मैं भी तुम्हें दूध न बख्शूँगी। ये इतने कम-हिम्मत कैसे हो गए? जिनका नाना रण में तूफान पैदा कर देता था, जिनके बाप की ललकार सुनकर दुश्मनों के कलेजे दहल जाते थे, वे ही लड़के इतने बोदे, पस्तहिम्मत हों। यह मेरी तक़दीर की खराबी है, और क्या! जब रण में जाना ही नहीं, तो वे हथियार सजकर क्यों मुझे जलाते हैं? भैया को कौन मुँह दिखाऊँगी, उनके सामने आँखें कैसे उठाऊँगी।

[दोनों लड़कों का प्रवेश।]

औम—अम्माजान, आप हमारा फ़ैसला कर दीजिए। मैं पहले रण में जाता हूँ, पर यह मुझे नहीं जाने देता, कहता है पहले मैं जाऊँगा। सुबह से यही बहस छिड़ी हुई है, किसी तरह छोड़ता ही नहीं। बताओ, बड़े भाई के होते हुए छोटा भाई शहीद हो, यह कहाँ का इंसाफ़ है?

मुहम्मद—अम्माजान! यह कहाँ का इंसाफ़ है कि बड़ा भाई तो मरने जाय, और छोटा भाई बैठे उसकी लाश पर मातम करे। अम्मा, आप चाहे ख़ुश हों या नाराज़, यह तो मुझसे न होगा। शायद इनका यह ख़याल हो कि मैं जंग के क़ाबिल नहीं हूं। छोटा हूँ, क्या जवाब दूँ, लेकिन ख़ुदा चाहेगा, तो—

एक हमले में गर हम न उलट दें सफ़े-लश्कर,
फिर दूध न अपना हमें तुम बख्शियो मादर!
शह के क़दमे-पाक पै सिर देके फिरेंगे,
या रण से सिरे-शिम्रोउमर लेके फिरेंगे।

अम्माजान, आप न मेरी ख़ातिर कीजिए न इनकी, इंसाफ़ से फ़रमाइए, पहले किसको जाने का हक़ है?

जैनब—अच्छा, तुम लोगों के रण में जाने का यह मतलब था! मैं कुछ और समझ रही थी। प्यारो, तुम्हारी मा ने तुम्हारी दिलेरी पर शक किया, इसे माफ़ करो। मालूम नहीं, मुझे क्या हो गया था कि मेरे दिल में तुम्हारी तरफ़ से इसे बसबसे पैदा हुए। लो, मैं झगड़ा चुकाए देती हूँ। तुम दोनों ख़ुदा का नाम लेकर साथ-साथ सिधारो, और दिखा दो कि तुम किसी से शब्बीर की उल्फ़त में कम नहीं हो। मेरी और मेरे ख़ानदान की आबरू

तुम्हारे हाथ है।

शेरों के लिए नंग है तलवार से डरना,
मैदान में तन-तनके सिपर सीनों को करना।
हर ज़ख्म पै दम उलफ़ते-शब्बीर का भरना।
क़ुरबान गई जीने से, बेहतर है वह मरना।
दुनिया में भला इज्जते-इस्लाम तो रह जाय,
तुम जीते रहो, या न रहो, नाम तो रह जाय।
नाना की तरह कौन बग़ा करता है देखूं?
सिर कौन हज़ारों से जुदा करता है देखूं।
हक़ कौन बहुत मा का अदा करता है देखूं?
एक-एक सफ़े-जंग में क्या करता है देखूं।
दिखलाइयो हाथों से सफ़ाई का तमाशा,
मैं परदे से देखूंगी लड़ाई का तमाशा।

यह तो मैं जानती हूँ कि तुम नाम करोगे, पर कमसिन बहुत हो, इसलिए समझाती हूं। जाओ, तुम्हें खुदा को सौंपा।

[दोनों मैदान की तरफ जाकर लड़ते हैं, और जैनब परदे की आड़ से देखती है। शहरबानू का प्रवेश।]

शहरबानू—है-है, बहन, यह तुमने क्या सितम किया? इन नन्हें-नन्हें बच्चों को रण में झोंक दिया। अभी तो अली अकबर बैठा ही हुआ है, अब्बास मौजूद ही है, ऐसी क्या जल्दी पड़ी थी?

जैनब—वे किसी के रोके रुकते थे? कल ही से हथियार-सजे मुंतजिर बैठे थे। रात-भर तलवारें साफ़ की गई हैं। और, यहाँ आए ही किसलिए थे। जिंदगी बाक़ी है, तो दोनों फिर आयेंगे। मर जाने का ग़म नहीं, आखिर किस दिन काम आते। जिहाद में छोटे-बड़े की तमीज़ नहीं रहती। मैं रसूल पाक को कौन मुंह दिखाती।

शहरबानू—देखो, हाय-हाय! दोनों को दुश्मनों ने किस तरह घेर रक्खा है। कोई जाकर बेचारों को फेर भी नहीं लेता। शब्बीर भी बैठे तमाशा देख रहे हैं, यह नहीं कि किसी को भेज दें। हैं तो ज़रा-ज़रा से, पर कैसे मछलियों की तरह चमकते फिरते हैं! ख़ैर, अच्छा हुआ, अब्बास दौड़े जा

रहे हैं।

[अब्बास का मैदान की तरफ़ दौड़े हुए आना।]

जैनब—(ख़ेमे से निकालकर) अब्बास, तुम्हें रसूल पाक की क़सम है, जो उन्हें लौटाने जाओ। हाँ, उनका दिल बढ़ाते जाओ। क्या मुझे शहादत के सवाब में कुछ भी देने का इरादा नहीं है? भैया तो इतने खुदग़रज कभी न थे!

[दोनों भाई मारे जाते हैं। हुसैन और अब्बास उनकी लाश उठाने जाते हैं, और जैनब एक आह भरकर बेहोश हो जाती है।]

□

पाँचवाँ दृश्य

[बारह बजे रात का समय। लड़ाई ज़रा देर के लिए बंद है। दुश्मन की फ़ौज ग़ाफ़िल है। दरिया का किनारा। अब्बास हाथों में मशक लिए दरिया के किनारे खड़े हैं।

अब्बास—(दिल में) हम दरिया के इतने क़रीब हैं। इतनी ही दूर पर यह दरिया मौजें मार रहा है, पर हम पानी के एक-एक बूंद को तरसते हैं। दो दिन से किसी के मुंह में पानी का क़तरा नहीं गया। बच्चे वग़ैरह पानी के लिए बिलबिला रहे हैं। औरतों के लब खुश्क हुए जाते हैं। खुद हजरत हुसैन का बुरा हाल हो रहा है। मगर कोई अपनी तकलीफ किसी से नहीं कहता। बेचारी सकीना तड़प रही थी। काश ये जालिम इसी तरह गाफिल पड़े रहते, और मैं मशक लिए हुए बचकर निकल जाता! जी चाहता है, दरिया-का-दरिया पी जाऊँ, पर ग़ैरत गवारा नहीं करती कि घर के सब आदमी तो प्यासों मर रहे हों, और मैं यहाँ अपनी प्यास बुझाऊँ। घोड़े ने भी पानी में मुंह नहीं डाला। वफ़ादार जानवर! तू हैवान होकर इतना ग़ैरतमंद है, मैं इंसान होकर बेग़ैरत हो जाऊँ।

[दरिया से पानी लेकर घाट पर चढ़ते हैं।]

एक सिपाही—यह कौन पानी लिए जाता है?

[अब्बास खामोश रहता है।]

कई आदमी—क्या कोई पानी ले रहा है? कौन है? खड़ा रह।

(कई सिपाही अब्बास को घेर लेते हैं।]

एक सिपाही—यह तो हुसैन के लश्कर का आदमी है। क्यों जी, तुम्हारा क्या नाम है?

अब्बाश—मैं हज़रत हुसैन का भाई अब्बास हूँ।

कई आदमी—छीन लो मशक़।

अब्बास—इतना आसान न समझो। एक-एक बूँद पानी के लिए एक-एक सिर देना पड़ेगा। पानी इतना मँहगा कभी न बिका होगा।

[अब्बास तलवार खींचकर दुश्मनों पर झपट पड़ते हैं, और उनके घेरे से निकल जाने की कोशिश करते हैं।]

[शिमर दौड़ा हुआ आता है।]

शिमर—ख़बरदार, ख़बरदार! चारो तरफ़ से घेर लो। मशक़ में नेजे मारो, मशक में।

अब्बास—अरे जालिम बेदर्द! तू मुसलमान होकर नबी की औलाद पर इतनी सख्तियाँ कर रहा है। बच्चे प्यासों तड़प रहे हैं, हज़रत हुसैन का बुरा हाल हो रहा है, और तुझे ज़रा भी दर्द नहीं आता।

शिमर—ख़लीफा से बग़ावत करनेवाला मुसलमान, मुसलमान नहीं, और न उसके साथ कोई रियायत की जा सकती हैं। दिलेरो! बस जंग का इसी दम ख़ातमा है। अब्बास को लिया, फिर वहाँ हुसैन के सिवा और कोई बाकी न रहेगा।

[सिपाही अब्बास पर नेज़े चलाते हैं, और अब्बास नेज़ों को तलवार से काट देते हैं।]

[साद का प्रवेश।]

साद—ठहरो-ठहरो! दुश्मन को दोस्त बना लेने में जितना फ़ायदा है, उतना क़त्ल करने में नहीं। अब्बास, मैं आपसे कुछ अर्ज़ करना चाहता हूं। एक दम के लिए तलवार रोक दीजिए। तनी हुई तलवार मसालहत की ज़बान बंद कर देती है।

अब्बास—मसालहत की गुफ्तगू अगर करनी है, तो हज़रत हुसैन के

पास क्यों नहीं जाते। हालाँकि अब वह कुछ न सुनेंगे। दो भाँजे, दो भतीजे मारे जा चुके, कितने ही अह्बाब शहीद हो चुके, वह खुद जिंदगी से बेज़ार हैं, मरने पर कमर बाँध चुके हैं।

साद—तो ऐसी हालत में आपको अपनी जान की और भी क़द्र करनी चाहिए। दुनिया में अली की कोई निशानी तो रहे। ख़ानदान का नाम तो न मिटे।

अब्बास—भाई के बाद जीना बेकार है।

साद— माबैन लहद साथ बिरादर नहीं जाता,
भाई कोई भाई के लिये मर नहीं जाता।

अब्बास—भाई के लिए जी से गुज़र जाता है भाई
जाता है बिरादर भी जिधर जाता है भाई
क्या भाई हो तेगों में तो डर जाता है भाई
आँच आती है भाई पै तो मर जाता है भाई।

साद—आपसे तो ख़लीफ़ा को कोई दुश्मनी नहीं, आप उनकी बैयत क़बूल कर लें, तो आपनी हर तरह भलाई होगी। आप जो रुतबा चाहेंगे, वह आपको मिल जाएगा, और आप हज़रत अली के जाँनशीन समझे जायँगे।

अब्बास—जब हुसैन जैसे सुलहपसंद आदमी ने; जिसने कभी गुस्से को पास नहीं आने दिया, जिसने जंग पर कभी सबकत नहीं की, जिसने आज भी मुझसे ताक़ीद कर दी कि राह न मिले, तो दरिया पर न जाना; तुम्हारी बात नहीं मानी, तो मैं, जो इन औसाफ़ में से एक भी नहीं रखता, क्योंकर तुम्हारी बातें मानूँगा।

साद—तुम्हें अख्तियार है।

शिमर—टूट पड़ो, टूट पड़ो।

[एक सिपाही पीछे से आकर एक तलवार मारता है। जिससे अब्बास का दाहना हाथ कट जाता है। अब्बास बाएँ हाथ में तलवार ले लेते हैं।]

शिमर—अभी एक हाथ बाकी है, जो उसे गिरा दे, उसे एक लाख दीनार इनाम मिलेगा।

[चारो तरफ़ से ज़ख्मी सिपाहियों की आहें सुनाई दे रही हैं। अब्बास सफ़ों को चीरते, सिपाहियों को गिराते हुसैन के

ख़ेमे के सामने पहुंच जाते हैं। इतने में एक सिपाही तलवार से उनका बायाँ हाथ भी गिरा देता है। शिमर उनकी छाती में भाला चुभा देता है। अब्बास मशक को दाँतों से पकड़ लेते हैं। तब सिर पर एक गुर्ज़ पड़ता है, और अब्बास घोड़े से गिर पड़ते हैं।]

अब्बास—(**चिल्लाकर**) भैया, तुम्हारा गुलाम अब जाता है, उसका आख़िरी सलाम क़बूल करो।

[हुसैन ख़ेमे से बाहर निकल दोड़ते हुए आते हैं और अब्बास के पास पहुँचकर उन्हें गोद में उठा लेते हैं।]

हुसैन—आह! मेरे प्यारे भाई, मेरे क़ूबते-बाज़ू, तुम्हारी मौत ने कमर तोड़ दी। हाय! अब कोई सहारा न रहा। तुम्हें अपने पहलू में देखते हुए मुझे वह भरोसा होता था, जो बच्चे को अपनी मा की गोद में होता है। तुम मेरे पुश्तेपनाह थे। हाय! अब किसे देखकर दिल को ढाढ़स होगा। आह! अगर तुम्हें इतनी जल्द रुख़सत होना था, तो पहले मुझी को क्यों न मर जाने दिया? आह! अब तक मैंने तुम्हें इस तरह बचाया था, जैसे कोई आँधी में चिराग को बचाता है, पर क़ज़ा से कुछ बस न चला। हाय! मैं ख़ुद क्यों न पानी लेने गया। हाय! अब ख़ैर, भैया इतनी तस्कीन है कि फिर हमसे तुमसे ज़ल्द मुलाआत होगी, और फिर हम क़यामत तक न जुदा होंगे।

□

छठा दृश्य

[दोपहर का समय। हुसैन अपने ख़ेमे में खड़े हैं। ज़ैनब, कुलसूम, सकीना, शहरबानू, सब उन्हें घेरे हुए हैं।]

हुसैन—जैनब, अब्बास के बाद अली अकबर दिल को तस्कीन देता था। अब किसे देखकर दिल को ढाढ़स दूँ? हाय! मेरा जवान बेटा प्यासों तड़प-तड़पकर मर गया! किस शान से मैदान की तरफ़ गया था। कितना हँसमुख, कितना हिम्मत का धनी! जैनब, मैंने उसे कभी उदास नहीं देखा, हमेशा मुस्कराता रहता था। ऐ आँखों! अगर रोईं तो तुम्हें

निकालकर फेंक दूंगा। खुदा की मर्ज़ी में रोना कैसा! मालूम होता है, सारी क़ुदरत मुझे तबाह करने पर तुली हुई है। यह धूप कि उसकी तरफ़ ताकने ही से आँखें जलने लगती हैं! यह जलता हुआ बालू, ये लू के झुलसानेवाले झोंके, और यह प्यास! यों ज़िंदा जलना तीरों और भालों के ज़ख्मों से कहीं ज्यादा सख्त है।

[अली असग़र आता है, और बेहोश होकर गिर पड़ता है।]

शहरबानू—हाय, मेरे बच्चे को क्या हुआ!

हुसैन—(**असग़र को गोद में उठाकर**) आह! यह फूल पानी के बग़ैर मुरझाया जा रहा है। ख़ुदा, इस रंज में अगर मेरी ज़बान से तेरी शान में कोई बेअदबी हो जाय, तो माफ़ कीजिए, मैं अपने होश में नहीं हूँ। एक कटोरे पानी के लिए इस वक्त मैं जन्नत से हाथ धोने को तैयार हूँ।

[असग़र को गोद में लिए ख़ेमे से बाहर आकर]

ऐ ज़ालिम क़ौम, अगर तुम्हारे ख़याल में मैं गुनहगार हूँ, तो इस बच्चे ने तो कोई ख़ता नहीं की है। इसे एक घूँट पानी पिला दो। मैं तुम्हारे नबी का नवासा हूँ, अगर इसमें तुम्हें शक है, तो काबा का बेकस मुसाफ़िर तो हूँ। इसमें भी अगर तुम्हें ताम्मुल हो, तो मुसलमान तो हूँ। यह भी नहीं, तो अल्लाह का एक नाचीज़ बंदा तो हूँ। क्या मेरे मरते हुए बच्चे पर तुम्हें इतना रहम भी नहीं आता?

मैं यह नहीं कहता हूँ कि पानी मुझे ला दो,
तुम आन के चिल्लू से इसे आब पिला दो।
मरता है यह, मरते हुए बच्चे को जिला दो,
लिल्लाह, कलेजे की मेरी आग बुझा दो।
जब मुँह मेरा तकता है यह हसरत की नजर से,
ऐ जालिमो, उठता है धुआं मेरे जिगर से।

[शिमर एक तीर मारता है, जो असग़र के गले को छेदता हुआ हुसैन के बाज़ू में चुभ जाता है। हुसैन जल्दी से तीर को निकालते हैं, और तीर निकलते ही असग़र की जान निकल जाती है। हुसैन असग़र को लिए फिर ख़ेमे में आते हैं।]

शहरबानू—हाय, मेरा फूल-सा बच्चा !

हुसैन—हमेशा के लिए इसकी प्यास बुझ गई। (**खून से चिल्लू भरकर आसमान की तरफ़ उछालते हुए**) इन सब आफ़तों का गवाह ख़ुदा है। अब कौन है, जो ज़ालिमों से इस ख़ून का बदला ले।

[सज्जाद चारपाई से उठकर लड़खड़ाते हुए मैदान की तरफ़ चलते हैं।]

जैनब—अरे बेटा, तुम में तो खड़े होने की भी ताब नहीं, महीनों से आँखें नहीं खोलीं, तुम कहाँ जाते हो ?

सज्जाद—बिस्तर पर मरने से मैदान में मरना अच्छा है। जब सब जन्नत पहुँच चुके, तो मैं यहाँ क्यों पड़ा रहूँ ?

हुसैन—बेटा, खुदा के लिये बाप के ऊपर रहम करो, वापस आओ। रसूल की तुम्हीं एक निशानी हो। तुम्हारे ही ऊपर औरतों की हिफ़ाजत का भार है। आह ! और कौन है, जो इस फ़र्ज को अदा करे। तुम्हीं मेरे जाँनसीन हो, इन सबको तुम्हारे हवाले करता हूँ। ख़ुदा हाफ़िज़ ! ऐ जैनब, ऐ कुलसूम, ऐ सकीना, तुम लोगों पर मेरा सलाम हो कि यह आख़िरी मुलाक़ात है।

[जैनब रोती हुई हुसैन से लिपट जाती है।]

सकीना—अब किसका मुँह देखकर जिऊँगी।

हुसैन—जैनब !

मरकर भी न भूलूँगा मैं एहसान तुम्हारे
भेटों को भला कौन बहन भाई पै वारे।
प्यार न किया उनको, जो थे जान से प्यारे
बस, मा की मुहब्बत के ये अंदाज हैं सारे।
फ़ाके में हमें बर्छियाँ खाने की रज़ा दो
बस, अब यही उल्फ़त है कि जाने की रज़ा दो।
हमशीर का ग़म है किसी भाई को गवारा
मजबूर है लेकिन असद अल्लाह का प्यारा।
रंज और मुसीबत मे कलेजा है दो पारा
किससे कहूँ, जैसा मुझे सदमा है तुम्हारा।
इस घर की तबाही के लिए रोता है शब्बीर
तुम छूटती नहीं मा से जुदा होता है शब्बीर।

[हाथ उठाकर दुआ करते हैं।]

या रब, है यह सादात का घर तेरे हवाले
राँड़ हैं कई ख़स्ता ज़िगर तेरे हवाले।
बेकस का है बीमार पिसर तेरे हवाले
सब हैं मेरे दरिया के गुहर तेरे हवाले।

[मैदान की तरफ़ जाते हैं।]

शिमर—(**फ़ौज से**) ख़बरदार ! ख़बरदार ! हुसैन आए। सब-के-सब सँभल जाओ। समझ लो, अब मैदान तुम्हारा है।

हुसैन—[फ़ौज के सामने खड़े होकर]

बेटा हूँ अली का व नेवासा रसूल का।
मा ऐसी कि सब जिसकी शफ़ाअत के हैं मुहताज,
बाप ऐसा, सनमखानों को जिसने किया ताराज,
बेटा हूँ अली का व नेवासा रसूल का।
लड़ने को अगर हैदर सफ़दर न निकलते,
बुत घर से खुदा के कभी बाहर न निकलते,
बेटा हूँ अली का व नेवासा रसूल का।
किस जंग में सीने को सिपर करके न आए,
किस फ़ौज की सफ़ ज़ेर व ज़बर करके न आए,
बेटा हूँ अली का व नेवासा रसूल का।
हम पाक न करते तो जहाँ पाक न होता,
कुछ ख़ाक की दुनिया में सिवा ख़ाक न होता,
बेटा हूँ अली का व नेवासा रसूल का।
यह शोर अजाँ का सहरोशाम कहाँ था,
हम अर्श पै जब थे तो यह इस्लाम कहाँ था,
बेटा हूँ अली का व नेवासा रसूल का।
लाज़िम है कि सादात की इमदाद करो तुम,
ऐ ज़ालिमों ! इस घर को न बरबाद करो तुम,
बेटा हूँ अली का व नेवासा रसूल का।

[फ़ौज पर टूट पड़ते हैं।]

शिमर—अरे नामर्दो, क्यों भागे जाते हो। कोई शेर नहीं जो सबको खा जायगा।

एक सिपाही—ज़रा सामने आकर देखो तो मालूम हो। पीछे खड़े-खड़े मुँह के आगे खंदक क्या है।

दूसरा—अरे, फिर इधर आ रहे हैं! खुदा बचाना!

तीसरा—उन पर तलवार चलाने को तो हाथ ही नहीं उठते। उनकी सूरत देखते ही कलेजा थर्रा जाता है।

चौथा—मैं तो हवा में तीर छोड़ता हूँ। कौन जाने कहीं मेरे ही तीर से शहीद हो जायँ, तो आक़बत में कौन मुँह दिखाऊँगा।

पाँचवा—मैं भी हवा ही में छोड़ता हूँ।

शिमर—तुफ़ है तुम पर। डूब मरो नामर्दो। घेरकर नेज़ों से क्यों नहीं वार करते?

साद—(**शिमर से**) हमारे लिये उन्हें घेरना उतना ही मुश्किल है, जितना चूहों के लिये बिल्ली का। उनके सामने कौन है, जिसके क़दम रुकें? वह यो ही क़त्ल करते-करते ख़ुद प्यास और थकान से बेदम हो जायँगे।

शिमर—(**तीर चलाकर**) क्यों भागते हो? क्यों अपने मुँह में कालिख लगाते हो? दुनिया क्या कहेगी इसकी भी तुम्हें शर्म नहीं?

क़ीस—सारी फ़ौज दहल गई, उसको खड़ा रखना मुश्किल है।

शीस—अली के सिवा और किसी का यह दम-ख़म नही देखा।

शिमर—(**तीर चलाकर**) सफ़ों को ख़ूब फैला दो ताकि दौड़ते-दौड़ते गिर पड़ें।

हुसैन—साद और शिमर, मैं तुम्हें फिर मौक़ा देता हूँ, मुझे लौट जाने दो। क्यों इन ग़रीबों की जान के दुश्मन हो रहे हो? तुम्हारा मैदान ख़ाली हो गया। तुम्हीं सामने आ जाओ, जंग का फ़ैसला हो जाय।

साद—शिमर, जाते हो?

शिमर—क्यों न जाऊँगा, यहाँ ज़ान देने नहीं आया हूँ!

साद—मैं जाऊँ भी, तो लड़ नहीं सकता।

[हुसैन दरिया की तरफ़ जाते हैं।]

शिमर—अब और भी ग़जब हो गया। पानी पीकर लौटे, तो खुदा जाने क्या करेंगे। हज्जाज को ताकीद करनी चाहिए कि दरिया का रास्ता न दे।

[हज्जाज को बुलाकर]

शिमर—हज्जाज; हुसैन को हर्गिज दरिया की तरफ़ न जाने देना।

हज्जाज—(**स्वगत**) यह अज़ाब क्यों अपने सिर लूँ। मुझे भी तो रसूल से क़यामत में काम पड़ेगा। (**प्रकट**) जी हाँ, आदमियों को जमा कर रहा हूँ।

[हुसैन घोड़े की बाग ढीली कर देते हैं, पर वह पानी की तरफ गर्दन नहीं बढ़ाता, मुँह फेरकर हुसैन की रकाब को खींचता है।]

हुसैन—आह ! मेरे प्यारे बेज़बान दोस्त ! तू हैवान होकर आक़ा का इतना लिहाज़ करता है, ये इंसान होकर अपने रसूल के बेटे के ख़ून के प्यासे हो रहे हैं। मैं तब तक पानी न पीऊँगा, जब तक तू न पिएगा। (**पानी पीना चाहते हैं**)

हज्जाज—हुसैन, तुम यहाँ पानी पी रहे हो, और लश्कर खेमों में घुसा जाता है।

हुसैन—तू सच कहता है ?

हज्जाज—यकीन न आए तो जाकर देख आओ।

हुसैन—(**स्वगत**) इस बेकली की हालत में कोई मुझसे दग़ा नहीं कर सकता। मरते हुए आदमी से दग़ा करके कोई क्यों अपनी इज्जत से हाथ धोएगा।

[घोड़े को फेर देते हैं और दौड़ते हुए खेमे की तरफ़ आते हैं।]

आह ! इंसान उससे कहीं ज्यादा कमीना और कोरबातिन है, जितना मैं समझता था। इस आख़िरी वक्त में मुझसे दग़ा की, और महज़ इसलिये कि मैं पानी न पी सकूँ।

[फिर मैदान में आकर लश्कर पर टूट पड़ते हैं, सिपाही इधर-उधर भागने लगते हैं।]

शिमर—(**तीर चलाकर**) तुम मेरे ही हाथों मरोगे।

[तीर हुसैन के मुँह में लगता है, और वह घोड़े से गिर पड़ते हैं।

फिर सँभलकर उठते हैं, और तलवार चलाने लगते हैं।]

साद—शिमर, तुम्हारे सिपाही हुसैन के खेमों की तरफ़ जा रहे हैं, यह मुनासिब नहीं।

शिमर—औरतों की हिफ़ाज़त करना हमारा काम नहीं है।

हुसैन—(**दाढ़ी से खून पोंछते हुए**) साद, अगर तुम्हें दीन का खौफ़ नहीं है, तो इंसान तो हो, तुम्हारे भी तो बाल-बच्चे हैं। इन बदमाशों को मेरे खेमों में आने से क्यों नहीं रोकते?

साद—आपके खेमों में कोई न जा सकेगा, जब तक मैं जिंदा हूँ।

[खेमों के सामने आकर खड़ा हो जाता है।]

जैनब—(**बाहर निकलकर**) क्यों साद! हुसैन इस बेकसी से मारे जायँ, और तुम खड़े देखते रहो? माल और दुनिया तुम्हें इतनी प्यारी है!

[साद मुंह फेरकर रोने लगता है।]

शिमर—तुफ़् है तुम पर ऐ जवानो! एक प्यादा भी तुमसे नहीं मारा जाता! तुम अब नाहक़ डरते हो। हुसैन में अब जान नहीं है, उनके हाथ नहीं उठते, पैर थर्रा रहे हैं, आँखें झपकी जाती हैं, फिर भी तुम उनको शेर समझ रहे हो।

हुसैन—(**दिल में**) मालूम नहीं, मैंने कितने आदमियों को मारा, और अब भी मार सकता हूं, पर हैं तो ये मेरे नाना ही की उम्मत। हैं तो सब मुसलमान, फिर इन्हें मारूँ, तो किसलिए? अब कौन है, जिसके लिए जिंदा रहूं? हाय, अकबर! किससे कहें, जो ख़ूने-जिगर हमने पिया है, बाद ऐसे पिसर के भी कहीं बाप जिया है।

हाय अब्बास!

ग़श आता है हमें प्यास के मारे,
उलफ़त हमें ले आई है फिर पास तुम्हारे।
इन सूखे हुए होठों से होठों को मिला के,
कुछ मशक में पानी हो तो भाई पिला दो।
लेटे हुए हो रेत में क्यों मुंह को छिपाए?
ग़ाफ़िल हो बिरादर तुम्हें किस तरह जगाएँ।
खुश हूंगा मैं आगे जो अलम लेके बढोगे,

क्या भाई के पीछे न नमाज़ आज पढ़ोगे।

लड़ते-लड़ते शाम हो गई, हाथ नहीं उठते। आखिरी नमाज़ पढ़ लूँ। काश, नमाज़ पढ़ते हुए सिर कट जाता तो कितना अच्छा होता!

[हुसैन नमाज़ में झुक जाते हैं, अशअस पीछे से आकर उनके कंधे पर तलवार मारता है। क़ीस दूसरे कंधे पर तलवार चलाता है। हुसैन उठते हैं, फिर गिर पड़ते हैं, फ़ौज में सन्नाटा छा जाता है। सब-के-सब आकर उन्हें घेर लेते हैं।]

शिमर—ख़लीफा यज़ीद ने हुसैन का सिर माँगा था। कौन यह फ़ख्र हासिल करना चाहता है?

[एक सिपाही आगे बढ़कर तलवार चलाता है। मुसलिम की छोटी लड़की दौड़ी हुई खेमे से आती है, और हुसैन की पीठ पर हाथ रख देती है।)

नसीमा—ओ ख़बीस, क्या तू मेरे चाचा को क़त्ल करेगा?

[तलवार नसीमा के दोनों हाथों पर पड़ती है, और हाथ कट जाते हैं।]

[शीस तलदार लेकर आगे बढ़ता है, हुसैन का मुँह देखते ही तलवार उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है।]

शिमर—क्यों, तलवार क्यों डाल दी?

शीस—उन्होंने जब आँखें खोलकर मुझे देखा, तो मालूम हुआ कि रसूल की आंखें हैं। मेरे होश उड़ गए।

क़ीस—मैं जाता हूं।

[तलवार लेकर जाता है, तलवार हाथ से गिर पड़ती है, और उल्टे क़दम काँपता हुआ लौट आता है।]

शिमर—क्यों, तुम्हें क्या हो गया?

क़ीस—यह हुसैन नहीं, खुद रसूल पाक हैं। रोब से मेरे होश ग़ायब हो गए। या खुदा, जहन्नुम की आग में न डालियो।

शिमर—इनकी मौत मेरे हाथों लिखी हुई है। तुम सब दिल के कच्चे हो।

[तलवार लेकर हुसैन के सीने पर चढ़ बैठता है।]

[हुसैन आँखें खोलते हैं और उसकी तरफ ताकते हैं।]

शिमर—मैं उन बुज़दिलों में नहीं हूं, जो तुम्हारी निगाहों से दहल उठे थे।

हुसैन—तू कौन है ?

शिमर—मेरा नाम शिमर है।

हुसैन—मुझे पहचानता है ?

शिमर—खूब पहचानता हूं। तुम अली और फ़ातिमा के बेटे और मुहम्मद के नवासे हो।

हुसैन—यह जानकर भी तू मुझे क़त्ल करता है ?

शिमर—मुझे जन्नत से जागीरें ज्यादा प्यारी हैं।

[तलवार मारता है, हुसैन का सिर जुदा हो जाता है।]

साद—(रोता हुआ) शिमर, जियाद से कह देना, मुझे 'रैं' की जागीर से माफ़ करें। शायद अब भी नजात हो जाय।

[अपने सीने में नेज़ा चुभा लेता है, और बेजान होकर गिर पड़ता है। फ़ौज के कितने ही सिपाही हाथों से मुंह छिपाकर रोने लगते हैं। खेमों से रोने की आवाजें आने लगती हैं।]

□ □ □